पुस्तक-भवन-सीरीज़—४

राय बहादुर स्वर्गीय बंकिम बाबू रचित

सीताराम

(ऐतिहासिक शिक्षाप्रद उपन्यास)

अनुवादक

मुरारिदास अग्रवाल

प्रकाशक

पुस्तक-भवन

बनारस सिटी.

Sri Pratap Singh
Public Library

प्रथमावृत्ति] सन् १९२६ ई० [मूल्य १।।)

परिचय

सीताराम एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। किन्तु स्वर्गीय बंकिम बाबूने इस उपन्यासकी रचना गीताके निम्न श्लोकोंके आधारपर की है। जिन्हें ऐतिहासिक बातें जाननी हों वे वेस्टलैंड (Westland) साहब कृत "यशोहरका वृत्तान्त" और स्टुअर्ट (Stewart) साहब कृत "बंगालका इतिहास" पढ़ें।

अर्जुन उवाच—

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।

तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥

अर्जुनने कहा—हे जनार्दन ! यदि तुम्हारा यही मत है कि कर्मकी अपेक्षा (साम्य) बुद्धि ही श्रेष्ठ है तो, हे केशव ! मुझे (युद्धके) घोर कर्ममें क्यों लगाते हो ?

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।

तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥

(देखनेमें) व्यामिश्र अर्थात् सन्दिग्ध भाषण करके तुम मेरी बुद्धिको भ्रममें डाल रहे हो। इसलिए तुम ऐसी एक ही बात निश्चित करके मुझे बतलाओ, जिससे मुझे श्रेय अर्थात् कल्याण प्राप्त हो।

श्रीभगवानुवाच—

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।

ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे निष्पाप अर्जुन ! पहले (अर्थात् दोदू सरे अध्यायमें) मैंने यह बतलाया है कि, इस लोकमें प्रकारकी निष्ठायें हैं—अर्थात् ज्ञानयोगसे सांख्योंकी और कर्म-योगसे योगियों की ।

न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥

(परन्तु) कर्मोंका प्रारम्भ न करनेसे ही पुरुषको नैष्कर्म्य प्राप्ति नहीं हो जाती और कर्मों का संन्यास (त्याग) कर दे-नेसे ही सिद्धि नहीं मिलती ।

न हि कश्चित्क्षणमपि जतष्ठातु त्यिकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

क्योंकि कोई मनुष्य (कुछ न कुछ) कर्म किये बिना क्षण भर भी नहीं रह सकता । प्रकृतिके गुण प्रत्येक परतन्त्र मनुष्य-को (सदा कुछ न कुछ) कर्म करनेमें लगाया ही करते हैं ।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥

जो मूढ़ (हाथ पैर आदि) कर्मेन्द्रियोंको रोककर मनसे इन्द्रियों के विषयोंका चिन्तन किया करता है, उसे मिथ्या चारी अर्थात् दाम्भिक कहते हैं ।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥

परन्तु हे अर्जुन! उसकी योग्यता विशेष अर्थात् श्रेष्ठ है कि जो मनसे इन्द्रियोंका आकलन करके, (केवल) कर्मेन्द्रियों-द्वारा अनासक्त बुद्धिसे 'कर्मयोग' का आरम्भ करता है।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥ ८॥

(अपने धर्म के अनुसार) नियत अर्थात् नियमित कर्मको तू कर, क्योंकि कर्म न करनेकी अपेक्षा, कर्म करना कहीं अधिक अच्छा है। इसके अतिरिक्त (यह समझ ले कि यदि) तू कर्म न करेगा, तो (भोजन भी न मिलनेसे) तेरा शरीर-निर्वाह तक न हो सकेगा।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौंतेय मुक्तसङ्गः समाचर॥९॥

यज्ञके लिए जो कर्म किये जाते हैं, उनके अतिरिक्त, अन्य कर्मोंसे यह लोक बँधा हुआ है। तदर्थ अर्थात् यज्ञार्थ (किये जानेवाले) कर्म (भी) तू आसक्ति या फलाशा छोड़कर करता जा। [गीता अ० ३-श्लोक १ से ६]

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥६२॥

विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषका इन विषयोंमें संग बढ़ता जाता है। फिर इस सङ्गसे वासना उत्पन्न होती है, कि हमको काम (अर्थात् वह विषय) चाहिए और (इस कामकी

तृप्ति होनेमें विघ्न होनेसे) उस कामसे ही क्रोधकी उत्पत्ति होती है।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥

क्रोधसे संमोह अर्थात् अविवेक होता है, संमोहसे स्मृति-भ्रम, स्मृतिभ्रंशसे बुद्धिनाश और बुद्धिनाशसे (पुरुषका) सर्वस्व नाश होजाता है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिंद्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥६४॥

परन्तु अपना आत्मा अर्थात् अन्तःकरण जिसके काबूमें है, वह (पुरुष) प्रीति और द्वेषसे छूटी हुई अपनी स्वाधीन इन्द्रियोंसे विषयोंमें बर्ताव करके भी (चित्तसे) प्रसन्न रहता है। [गीता अ० २—श्लोक ६२ से ६४]

सीताराम

प्रथम खंड

उदय—गृहिणी

पहला परिच्छेद

पूर्वकालमें पूर्वी बंगालमें भूषणा नामकी एक नगरी थी। अब उसका नाम भूषणो है। जिस समय कलिकाता (कलकत्ता) नामके छोटेसे गाँवके रहनेवाले रातको अपनी झोपड़ियोंसे बाघ-के डरसे बाहर नहीं निकल सकते थे, उस समय उस भूषणा नगरीमें एक फौजदार रहते थे। फौजदार उस सयम स्थानीय गवर्नर समझे जाते थे। आजकलके स्थानीय गवर्नरसे उनका वेतन कहीं ज्यादा होता था। इसलिये भूषणा भी उस समय स्थानीय राजधानी थी। आजसे प्रायः एकसौ अस्सी वर्ष पहले एकदिन पिछली रातको भूषणा नगरकी एक सकरी गलीमें बीच रास्तेपर एक मुसलमान फकीर सोया था। वह इस प्रकारसे गली छेककर सो रहा था कि रास्ता बिलकुल रुक गया था। उसी समय वहाँ एक पथिक आया। पथिक

बड़ी तेजीसे आरहा था परन्तु, यह देखकर कि एक फकीर राह रोके हुए सोया है, वह उदास होकर वहीं खड़ा होगया।

पथिक हिन्दू है। वह जातिका उत्तराढ़ी कायस्थ है। उसका नाम गङ्गारामदास है। उसकी अभी युवावस्था है। गङ्गाराम विपत्तिग्रस्त है। घरमें उसकी माता मर रही है, उसका अंतिम समय उपस्थित है। इसीलिये गङ्गाराम वैद्यकोबुलाने जारहा था। पर इस समय उसके सामनेका रास्ता बन्द है।

उस समय मुसलमान फकीरोंका बड़ा सम्मान था। स्वयं अकबरशाह भी—यद्यपि वह इस्लाम धर्ममें अधिक श्रद्धा नहीं रखते थे, तथापि—एक मुसलमान फकीरके आज्ञाकारी सेवक थे। हिन्दू लोग भी फकीरोंका आदर करते थे, जो लोग उन्हें नहीं मानते थे, वह भी उनसे डरते थे। गङ्गारामको सहसा फकीरको लाँघकर जानेका साहस नहीं हुआ। उसने कहा—सलाम शाहसाहब! मुझे जरा मेहरवानी करके रास्ता दे देंवे। शाहसाहब हिले भी नहीं, और न कुछ उत्तर ही दिया। गङ्गारामने हाथ जोड़कर कहा—खुदा तुम्हारे ऊपर खुश होंगे, मुझ पर बड़ी मुसीबत है। मेहरवानी करके मुझे जरा रास्ता दे देवें।

शाहसाहब फिर भी न हटे। गङ्गारामने हाथ जोड़कर बहुत विनती की, बहुत कुछ रोया-गाया, पर फकीर वहाँसे किसी प्रकार भी न हटा और न उसने कुछ उत्तर ही दिया। लाचार होकर गङ्गारामको उसे लाँघकर जाना पड़ा। लाँघते समय गङ्गारामका पैर उस फकीरकी देहमें लग गया; जान पड़ता है इसमें भी फकीरकी ही कुछ शरारत थी। गङ्गाराम उस समय बहुत ही व्यग्र था, वह बिना कुछ कहे वैद्यके घर चला गया। फकीर भी उठा और काजीके घरकी ओर चल पड़ा।

गङ्गाराम वैद्यको लेकर अपने घर आया। वैद्यने उसकी मांको

देखा, नाड़ीपर हाथ रखा, दो-एक श्लोक सुनाया, औषधिके बारेमें भी कुछ कहा, अन्तमें तुलसी-सोनेकी व्यवस्था करके अपने घरकी राह ली। तुलसी-वृक्षके निकट भगवानका नाम लेते गङ्गारामकी माँ परलोक सिधारी। तब गङ्गाराम माताका सत्कार करनेके लिये महल्लेवालोंको बुला लाया। उसके दस-पाँच स्वजातियोंने मिलकर यथा विधि गङ्गारामकी माका अंतिम सत्कार किया।

माताकी क्रिया करके तीसरे पहर जब अपनी श्रीनामकी बहिन और पड़ोसियोंके साथ गङ्गाराम घर लौट रहा था, उसी समय, ढाल-तलवार बाँधे हुए दो सिपाहियोंने आकर उसे पकड़ लिया। सिपाही जातिके डोम थे, गङ्गाराम उनसे छू जानेके कारण बड़ा दुखी हुआ। उसने डरते हुए देखा कि उन सिपाहियोंके साथ वह शाहसाहब भी हैं। गङ्गारामने पूछा—कहाँ जाना होगा? मुझको क्यों पकड़ते हो?—मैंने क्या किया है?

शाहसाहब—काफिर! बदबख्त! बेतमीज! चल।

सिपाहियोंने भी कहा—चल!

एक सिपाहीने धक्का देकर गङ्गारामको गिरा दिया दूसरे ने उसे दो चार लात भी जमाया। एक गङ्गारामको बाँधने लगा, दूसरा उसकी बहिनको पकड़ने चला। पर वह एक साँसमें वहाँसे भाग गयी। गङ्गारामके साथ जो सब उसके पड़ोसी आदि आये थे वे सब कौन किधर भागे कोई देख न सका। सिपाही गङ्गारामको बाँधकर मारते हुए उसे काजीके पास ले गये। फकीरसाहब भी दाढ़ी हिलाते-हिलाते हिन्दुओं की बुरी चालपर, फार्सी और अर्बी शब्दोंसे भरी हुई वक्तृता देते हुए उसके साथ साथ गये।

गङ्गाराम काजी साहबके पास लाया गया। उसका विचार आरम्भ हुआ। फरियादी शाहसाहब—गवाह भी शाहसाहब और विचारकर्त्ता भी शाहसाहब ही थे। काजी साहब फकीर-को देखते ही अपना आसन छोड़कर खड़े हो गये; और जब फकीरकी वक्तृता समाप्त हुई तब कुरान और अपना चश्मा और शाहसाहबकी लम्बी और सुफेद दाढ़ी-मूछोंकी भलीभाँत समालोचना करके, अन्तमें आज्ञा दी कि इसको जीतेही कब्रमें दफ़न कर दो। जिन लोगोंने यह हुकुम सुना, वे थरथरा उठे। गङ्गारामने कहा—जो होना था, सो तो होगया; तब अब मैं अपने मनकी कसर क्यों न निकाल लूँ?

यह कहकर गंगारामने शाहसाहबके मुँहपर एक लात कसकर जमाया! तोबा! तोबा! कहते हुये शाहसाहब मुँहपर हाथ रखे हुये जमीनपर गिर पड़े। इस उम्रमें भी उनके जो चार दाँत बचे थे। गंगारामके चरण स्पर्शसे उनकी भी मुक्ति हो गयी। इतने ही में सिपाहियोंने आकर गंगारामको पकड़ लिया, और काजीसाहबके हुकुमसे उसके हाथोंमें हथकड़ी और पैरोंमें बेड़ी डालदी और जिन सब बातोंके अर्थ नहीं होते, ऐसे शब्दोंका प्रयोग करते हुये उसको गाली, घूसा, थप्पड़ और लात मारते-मारते कैदखानेमें ले गये। उसदिन सन्ध्या होगयी; इसलिये दूसरेदिन उसको जीता कब्रमें डालने का प्रबन्ध हुआ।

दूसरा परिच्छेद

जहाँ पेड़के नीचे सिर खोले जमीनपर पड़ी गंगारामकी बहिन रो रही थी, वहाँ यह समाचार पहुँचा। उसकी बहिनने जब सुना कि मेरा भाई कल जीतेही कब्रमें गाड़ा जायगा तब वह उठ बैठी और आँखें पोंछकर उसने अपने खुलेहुए बालोंको बाँधा।

गंगारामकी बहिन श्रीकी अवस्था लगभग पचीस वर्षकी होगी। वह गंगारामकी छोटी बहिन है। गंगाराम, गंगारामकी माँ और श्रीके सिवा इस परिवारमें और कोई न था। गंगारामकी माँ इधर बहुत दिनोंसे बीमार थी, इसलिये घरकी मालकिन श्रीही थी। श्री सधवा है, परन्तु दुर्भाग्यसे वह अबतक स्वामि-सहवास से वंचित है।

उसके घरमें एक शालिग्राम थे, तनिकसा नैवेद्य भोग लगाकर रोज उनकी पूजा होती थी। श्री और उसकी मा जानती थी कि वही साक्षात नारायण हैं। श्रीने बाल बाँधकर शालिग्रामके मन्दिरके द्वारपर जाकर मनही मन उनको बार-बार प्रणाम किया, फिर हाथ जोड़कर कहने लगी-हे नारायण! हे परमेश्वर! हे दीनवन्धु! हे अनाथ-नाथ! मैं आज जिस साहसका काम करने जा रही हूँ, तुम उसमें मेरी सहायता करो। मैं स्त्री पापिष्ठा हूँ। मेरे द्वारा क्या हो सकता है। पर भगवन्! तुम शरणागतकी लाज रखना!

यह कहकर श्री वहांसे-अपने घरसे-बाहर हुई। पचकौड़ीकी मा नामकी वृद्धा उसकी पड़ोसिन थी। उस पड़ोसिनके साथ इनलोगोंकी बहुत घनिष्ठता थी। वह श्रीके माका बहुतसा काम-काज कर दिया करती थी। इस समय श्रीने उसके यहाँ जाकर उससे धीरे-धीरे कुछ कहा। फिर दोनों रास्तेमें निकल-

कर, अन्धेरी गली कूँची पारकर बहुत दूर निकल गयीं। इस समय उस शहरमें पक्के मकान बहुत नहीं है, परन्तु उस समय पक्के मकान अधिक थे, बीच-बीचमें बड़े-बड़े महल भी पड़ते थे। यह दोनों स्त्रियाँ ऐसेही एक बड़े महलके सामने आकर खड़ी हो गयीं। उस महलके सामने एक तालाब था और उसका घाट पक्का बँधा था। पक्के घाटपर थोड़ेसे द्वारपाल बैठे थे। उनमेंसे कोई भाँग घोटरहा था, कोई कजरी गा रहा था, और कोई अपने देशकी बातचीत कर रहा था। उन्हींमेंसे एक द्वार-पालको पाँचकौड़ीकी माने बुलाकर कहा—पांड़ेजी! जरा भंडारीजीको बुलादो। द्वारवानने कहा—हम पांड़े नहीं, हम मिसिर होते हैं।

पाँचकौड़ीकी मा—मैं क्या यह नहीं जानती, बेटा! पांड़े भला क्या बाभनकी गिनती में हैं? सच्चे ब्राह्मणतो मिसिरही होते हैं।

तब मिश्रजीने प्रसन्न होकर उससे पूछा—तुम भंडारीको लेकर क्या करोगी?

पाँचकौड़ीकी मा—करूँगी क्या? मेरे यहाँ थोड़ीसी लौकी, कोहड़ाकी तरकारी फली है, वही उनसे कह जाऊँगी कि—कल जाकर वह उसे तोड़ लावें।

द्वारवान—अच्छा यह हम उनसे कह देंगे। तुम अपने घर जाओ।

पाँच कौड़ीकी मा—मिसिरजी! तुम्हारे कहनेसे उन्हें मेरे घरका पता न चलेगा,—अच्छा बतलाओ, किसके यहाँ तरकारी फली है?

द्वारवान—अच्छा तो तुम अपना नाम बताती जाओ।

पाँचकौड़ीकी मा—जा, बद्किस्मत! तुझे भी मैं एक लौकी देती, पर तेरे भाग्यमें नहीं है।

द्वारवान—अच्छा, तुम खड़ी रहो। हम भंडारीको बुलाते हैं। तब मिश्रजी गुन-गुनाते हुए महलके भीतर गये और जीवन भंडारीसे जाकर कहा कि एक तरकारीवाली आई है। मुझको कुछ मिलेगा, तुमको भी कुछ मिल सकता है। जल्दी आओ।

जीवन भंडारीकी उम्र कुछ अधिक है, बहुतसी तालियाँ, उसकी करधनी में लटक रही हैं। उसका चेहरा बड़ा सूखा है। कुछ लाभकी आशासे वह शीघ्र ही बाहर आया। देखा कि दो स्त्रियाँ खड़ी हैं। उन्हें देखकर उसने पूछा कि—किसने बुलाया है जी?

पाँचकौड़ीकी माने कहा—मेरे घर कुछ तरकारियाँ फली हैं, इसीलिये तुम्हें बुलाया है। कुछ तुम लेना, कुछ दरवानजीको देना, बाकी सरकारी कोठी में पहुँचा देना।

जीवन भंडारी—तो तुम्हारा घर कहाँ है, बताती जाओ? कल आऊँगा।

पाँचकौड़ीकी मा—और एक दुःखी अनाथ लड़की आई हुई, है वह क्या कहती है, एकबार सुनलो।

श्री गले तक घूँघट काढ़े दीवारसे सटकर खड़ी थी। जीवन-भंडारीने उसकी ओर देखकर रुखाई से कहा—भीख-बीखकी बात मैं हुजूरसे कुछ न कहूँगा।

तब पाँचकौड़ीकी माने धीरेसे भंडारीसे कहा—भीख जो कुछ मिलेगी उसमेंसे आधा हिस्सा तुम्हारा होगा।

तब भंडारीजीने प्रसन्न होकर कहा—क्या कहती हो मा? भिखारियोंके लिये मेरे प्रभुका द्वार सदा खुला रहता है। श्रीने

अपनी भिक्षाका अभिप्राय उससे कहा, इसलिये भंडारी जी उसको अपने मालिकके पास ले गये।

भंडारीजी श्रीको पहुँचाकर अपने मालिककी आज्ञासे बाहर चले गये। श्री वहाँ आकर दर्वाजेपर खड़ी हो गयी। वह घूँघट काढ़े काँप रही थी। मालिकने पूछा—तुम कौन हो?

श्री—मैं श्री हूँ।

श्री! तुम क्या मुझे चीन्हती नहीं हो? क्या अनजानमें मेरे पास आई हो? मैं सीतराम राव हूँ।

तब श्रीने अपना घूँघट खोल दिया। सीतारामने देखा, उसका मुख आँसुओंसे भींगा हुआ ऐसा जान पड़ता है जैसे बर्षा-जलसे भींगा कमलका फूल। वह अनुपम सुन्दरी थी। सीताराम ने कहा—श्री! तुम इतनी सुन्दरी हो!

श्री—मैं बड़ी दुखी हूँ। इस समय मेरी हँसी उड़ाना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। श्री रोने लगी।

सीतारामने कहा—इतने दिनों बाद क्यों आई हो? और आई हो, तो इतना रोती क्यों हो?

श्री तब भी रो रही थी। वह कुछ कह न सकी। सीताराम ने कहा—मेरे पास आओ।

तब श्रीने धीरेसे कहा—मैं बिछौना न छूऊँगी—मुझे अशौच है।

सीताराम—यह क्या?

गद्गद स्वरसे आँखोंमें आँसू भरकर श्रीने कहा—आज मेरी मा मर गयी है।

सीताराम—क्या इसी विपत्तिमें पड़कर तुम आज मेरे पास आई हो?

श्री—नहीं, मैं अपनी माताकी क्रिया-कर्म यथासाध्य

करलूँगी। उसके लिये तुम्हें कष्ट न दूँगी। परन्तु मुझपर एक भारी विपत्ति आ पड़ी है।

सीताराम—और क्या विपत्ति है?

श्री—मेरे भाईकी जान जाया चाहती है। काजीसाहबने उसको जीते ही जी कब्र में दफन करनेकी आज्ञा दी है। वह इस समय कैदखानेमें है।

सीताराम—यह क्या! उसने क्या किया?

तब श्रीने जो कुछ सुना था और जो कुछ देखा था, उसे धीरे-धीरे रो-रो कर कह सुनाया। सुनकर सीतारामने एक लम्बी साँस ली और कहा—अब उपाय क्या है?

श्री—अब उपाय तुम्हीं हो। इसीसे इतने वर्ष बाद मैं यहाँ आई हूँ।

सीताराम—मैं क्या कर सकता हूँ?

श्री—तुम क्या कर सकते हो? तुम यदि नहीं कर सकते तो कौन करेगा? मैं जानती हूँ, तुम सब कर सकते हो।

सीताराम—दिल्लीके बादशाहका यह काजी नौकर है। दिल्लीके बादशाहसे भला विरोध कौन कर सकता है?

श्री—तब क्या कोई उपाय नहीं है?

सीतारामने बहुत देर तक सोच विचार करके कहा—उपाय है। तुम्हारे भाईको मैं बचा सकता हूँ। परन्तु मुझे मरना पड़ेगा।

श्री—देखो! देवता हैं, धर्म है, नारायण हैं, कुछ झूठा नहीं है। तुम यदि दीन-दुखियोंकी रक्षा करोगे तो तुम्हारा अमङ्गल—कभी नहीं हो सकता। हिन्दूकी यदि हिन्दू रक्षा न करेगा तो फिर उनकी रक्षा कौन करेगा?

सीतारामने बहुत देर तक सोचा। अन्त में कहा—तुम

सच कहती हो, हिन्दूकी रक्षा यदि हिन्दू न करेगा तो कौन करेगा? मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि गङ्गारामके लिये मैं यथाशक्ति यत्न करूँगा।

तब श्री प्रसन्न होकर घूँघट काढ़कर वहाँसे चली गयी।

सीतारामने द्वार बन्द करके नौकरसे कहा कि जब तक मैं द्वार न खोलूँ तब तक कोई न बुलावे। मन ही मन एक बार फिर उन्होंने सोचा कि श्री, ऐसी श्री! मैं तो नहीं जानता था कि वह ऐसी सुन्दरी है। पहले श्रीका काम करूँगा, फिर दूसरी बात सोचूँगा। उन्होंने फिर सोचा, हिन्दूकी रक्षा यदि हिन्दू न करेगा तो कौन करेगा?

तीसरा परिच्छेद

सीतारामके एक गुरु थे। वह महाचार्य्य अध्यापक पुराने चालके ब्राह्मण हैं। रेशमी रामनामी ओढ़े हैं उनका सिर मुड़ा है, केवच मूँछ अब तक बची है। सिरमें बाल न होनेके कारण चन्दनकी बहार बहुत बढ़ गयी है, खूब लम्बे-लम्बे तिलक और ब्राह्मणपनका निशान सब कुछ है। इनका नाम चन्द्रचूड़ तर्कालङ्कार है। वह सीतारामके परम हितैषी हैं। सीताराम जब जहाँ रहते हैं, वह भी तब वहीं रहते हैं। इस समय वह भी भूषणामें रहते थे। हम लोगोंने आजकल भी दो एक ऐसे ब्राह्मण अध्यापकोंको देखा है, जो पाठशालामें व्याकरण-साहित्य पढ़ानेमें जैसे प्रवीण हैं वैसे ही गाँवोंमें दंगा-फसाद करनेमें भी मजबूत हैं। चन्द्रचूड़ भ इसी श्रेणीके थे।

कुछ देर बाद घरसे निकलकर सीताराम अपने गुरुके घर पहुँचे। चन्द्रचूड़के साथ एकान्तमें सीतारामकी बहुत सी

बातें हुईं। बातें क्या-क्या हुईं, इसके लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। पर उन बातोंका फल यह हुआ कि सीताराम और चन्द्रचूड़ दोनोंने ही रातको निकलकर शहरके बहुतसे लोगोंसे भेंटकी। सीतारामने सवेरी रातको अपने घर आकर अपने परिवार और टिकनेवालोंको मधुमति पार भेज दिया।

चौथा परिच्छेद

एक बहुत बड़ी खुली जगहमें शहरके बाहर गङ्गारामके लिये कब्र खोदी गयी थी। वहाँ कैदीके आनेके पहले ही लोग जुटने लगे। बड़े तड़के—तब भी पेड़ोंसे अन्धकार हटा नहीं था। अन्धकारके आश्रयसे तारागण भी हटे नहीं थे—इसी समय दलके दल लोग जीते मनुष्यका कब्र देखनेके लिये आने लगे। एक मनुष्यकी मृत्यु हो रही है, पर जीवितोंके लिये एक उत्सव सा हो रहा था। जब सूर्योदय हुआ तब मैदान प्रायः भर गया था, तिसपर भी नगरके सब गली रास्तोंसे चींटीकी तरह मनुष्य चले आरहे थे। अंतमें उस विस्तृत स्थानमें भी स्थानकी कमी हो गयी। दर्शकगण पेड़ों पर कहीं बन्दरोंकी तरह बैठे हैं—पूँछकी कमीसे जरा निरस जान पड़[illegible] कहीं चमगीदड़की तरह झूल रहे हैं। मैदानके पीछे[illegible] जो कई एक पक्के मकान दिखाई पड़ते थे, उनकी [illegible] मनुष्योंसे भर गयीं थीं। उनमें भी स्थान नहीं है। [illegible] ही अधिक थे, उस पर भी बाँसकी सीढ़ी लगाकर [illegible] पर जा बैठे हैं। मैदानके भीतर काले सिरोंका स[illegible] पड़ता है—धक्का धुक्की हो रही है। वहाँ लोग[illegible] जमघट बाँध रहे हैं, कोई कोई हट रहे हैं, को[illegible]

कोई फिर रहे हैं और कोई फिर वहाँ आकर जुट जाते हैं। शोर इतना अधिक है कि कानका पर्दा फट जाता है। कैदी अबतक नहीं आया है, यह देखकर दर्शक अधीर हो रहे हैं। अधीर होकर वे आपसमें गाली-गलौज मार-पीट और तरह-तरहके उपद्रव करने लगे। हिन्दू मुसलमानोंको गाली देने लगे, और मुसलमान हिन्दूको। कोई कहता है कि अल्लाह! तो कोई कहता है कि हरि बोल! कोई कहता है कि वह आरहा है, देखो। जो लोग वृक्षोंपर चढ़े हुए हैं, वे बेकार होनेके कारण पेड़की पत्ती, फूल और छोटी-छोटी डालियाँ तोड़कर नीचे-वालोंपर फेंकने लगे। कोई-कोई इतनेपर सन्तुष्ट न होकर नीचे वालोंपर थूकने लगे। इसलिये जहाँ-जहाँ वृक्ष थे, वहाँ-वहाँ उसके नीचे चलनेवालों और डालियोंपर बैठनेवालोंमें भयानक झगड़ा होने लगा। केवल एक पेड़के नीचे ऐसा झगड़ा नहीं हुआ। समुद्रके छोटेसे टापूकी तरह वह मनुष्यों-से शून्य था। दो चार मनुष्य हैं सही, परन्तु वे उपद्रव नहीं कर रहे हैं, वे चुप हैं। केवल दूसरे आदमी जब उस पेड़के नीचे खड़े होनेके लिये आते हैं तो वे उन्हें धक्का देकर वहाँसे हटा देते हैं। वे लोग बड़े मजबूत जवान हैं। उनके हाथोंमें बड़ी-बड़ी लाठियाँ हैं जिसे देखकर लोग चुप-चाप आपही वहाँसे हट जाते हैं। उसी पेड़के नीचे खड़ी होकर एक स्त्री वृक्षकी डाली पकड़कर सिर ऊँचा किये वृक्षपर चढ़े हुए एक व्यक्तिसे बातचीत कर रही है। उसकी आँखें रोनेसे फूल गयी हैं, बाल बिखरे हुए हैं। जान पड़ता है वह समस्त रात्रि रोती रही है। परन्तु इस समय वह रोती नहीं है। जो [illegible]पर चढ़े हैं, उनसे वह स्त्री कह रही है—महाराज! अभी [illegible] दिखाई नहीं पड़ता।

वृक्षपर चढ़े हुए मनुष्यने उत्तर दिया, नहीं।

तब जान पड़ता है नारायणने रक्षा की है।

पाठक समझ गये होंगे, कि यह स्त्री श्री है। वृक्षपर स्वयं चन्द्रचूड़ तर्कालंकारजी हैं। वृक्षकी शाखा उनके लिये उपयुक्त स्थान नहीं है, परन्तु तर्कालंकार समझते हैं कि मैं धर्मकी रक्षा कर रहा हूँ। धर्मके लिये सब कुछ किया जा सकता है।

श्रीके बातोंका उत्तर देते हुए चन्द्रचूड़ने कहा—नारायण अवश्य रक्षा करेंगे, मुझे विश्वास है, तुम घबड़ाओ मत। परन्तु अबतक रक्षाका उपाय नहीं हुआ है। बहुतसे लाल पगड़ी वाले आ रहे हैं।

श्री—वे लाल पगड़ीवाले कौन हैं?

चन्द्रचूड़—जान पड़ता है फौजदारके सिपाही हैं।

वास्तवमें दो सौ फौजदारके सिपाही अस्त्र शस्त्र लिये श्रेणी बद्ध हो गंगारामको घेरकर ला रहे थे। उन्हें देखकर असंख्य जनतामें एक दम सन्नाटा छा गया। चन्द्रचूड़ उस समय जो कुछ देखते थे वह श्रीसे ज्योंका त्यों कहते जाते थे। श्रीने पूछा—कितने सिपाही हैं?

चन्द्रचूड़—दो सौ होंगे।

श्री—हम दीन दुःखी असहाय हैं। हमें मारनेके लिये इतने सिपाहियोंकी क्या आवश्यकता थी?

चन्द्रचूड़—जान पड़ता है भीड़ अधिक देखकर फौजदार-ने इतने सिपाहियोंको भेजा है।

श्री—अब क्या हो रहा है?

चन्द्रचूड़—सिपाही आकर पाँती बाँध करके पास खड़े हो गये हैं। बीचमें गंगाराम है, पीछे स्वयं काजी और वह फकीर है।

श्री—भइया क्या कर रहे हैं ?

चन्द्रचूड़—दुष्टोंने उसके हाथमें हथकड़ी और पैरमें बेड़ी पहरा दिया है।

श्री—क्या वह रो रहे हैं ?

चन्द्रचूड़—नहीं। वह चुप चाप खड़े हैं। उनका मुख बड़ा गम्भीर और सुन्दर दिखाई पड़ता है।

श्री—मैं एक बार उन्हें देखना चाहती हूँ क्योंकि फिर मैं उन्हें इस जन्म में देख न सकूँगी।

चन्द्रचूड़—देखने का सुविधा है। क्या तुम नीचे की डालपर चढ़ सकती हो ?

श्री—मैं स्त्री हूँ, पेड़पर चढ़ना नहीं जानती।

चन्द्रचूड़—यह क्या लज्जा का समय है ?

पेड़के तनेसे दो हाथ ऊँचे पर एक सीधी डाल थी। वह डाल ऊँचे न जाकर, सीधी नीचे ही नीचे बढ़ गयी थी। थोड़ी दूर जाकर वह डाल दो भागमें बट गयी थी। वहाँ दो डालोंपर दो पैर रखकर पासकी एक दूसरी डाल पकड़कर खड़े होनेका बड़ा सुभीता था। चन्द्रचूड़ने श्रीको वह दिखा दिया। श्रीने लज्जा त्यागकर उसपर चढ़नेकी चेष्टा की—श्मशानमें लज्जा नहीं रहती।

पहले दो एक बार चेष्टा करनेपर भी वह चढ़ न सकी—तब वह रोने लगी। उसके उपरान्त न जाने किस उपायसे वह नीचेकी डालीपर चढ़कर उस जोड़ुआँ दोनों डालियोंपर पैर रख दूसरी एक डाल पकड़कर खड़ी हो गयी।

ऐसा करनेसे बड़ा गड़बड़ मचा। जहाँ श्री खड़ी हुई थी उसके सामने पत्तोंका आवरण नहीं था—श्री उस असंख्य जनताके सामने मुँह करके खड़ी हो गयी। सबने देखा

सहसा एक अतुल रूपवती स्त्री वृक्षकी डाल पकड़कर हरे पत्तोंमें विराज रही है। देवी प्रतिमाकी तरह उसके चारो ओर वृक्ष शाखाओंकी पत्तियाँ लटक रही थीं और उसके बालोंपर भी पड़ रही थीं। उसके बाहुपर और वक्षस्थलके बालोंको कुछ कुछ ढाँककर पत्तियाँ लटक रही थी। एक डालसे उसके दोनों चरण ढक गये थे, किसीको दिखाई नहीं पड़ता था कि यह मूर्त्तिमति वनदेवी किसके सहारे पर खड़ी है। देखकर पासकी जनतामें आँधीसे उछलते हुए समुद्र-की तरह शब्द हुआ।

श्री यह सब कुछ न जान सकी। उसको अपनी देहकी ओर भी कुछ ध्यान नहीं था। वह आँखें खोलकर एक टक गंगारामके ओर देख रही थी। उसके दोनों आँखोंसे अश्रु धारा बह रही थी। इसी समय चन्द्रचूड़ने पुकार कर कहा— इधर देखो, इधर देखो, घोड़ेपर कौन आ रहा है?

श्रीने दूसरी ओर आँखें उठाकर देखा कि घोड़े पर कौन आ रहा है। उसका वेष वीरतापूर्ण जान पड़ता था, परन्तु वह निरस्त्र था। उसका घोड़ा बड़ा तेजस्वी था परन्तु भीड़ ठेल कर आगे बढ़ने नहीं पाता था। घोड़ा नाच रहा था, हिल रहा था; गर्दन टेढ़ी कर रहा था, पर तौ भी जल्द आगे बढ़ने नहीं पाता था। श्रीने चीन्हा घोड़ेपर सीताराम राय थे।

इधर गंगारामको सिपाही लोग कब्रमें डाल रहे थे। उसी समय दोनों हाथ उठाकर सीतारामने उन्हें मना किया। सिपाही रुक गये। शाहसाहबने कहा—क्या देखते हो! काफिरको जल्द मिट्टी दो।

काजीसाहबने सोचा—काजीसाहबको उस समय वहां आनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी, परन्तु भीड़का समाचार

सुनकर वे शौकसे वहां आये थे। जब वह आये हैं तब वही प्रधान कार्यकर्त्ता हैं। उन्होंने कहा—सीताराम जब मना कर रहे हैं, तब उसमें कुछ वजह जरूर है। सीतारामके आने तक ठहर जाओ।

शाहसाहब इस बातसे नाराज़ हुए, परन्तु लाचार होकर सीतारामके आने तक उन्हें ठहरना पड़ा। गंगारामके मनमें आशाका संचार हो गया।

सीताराम, काजीसाहबके पास पहुँचे। घोड़ेसे उतर, झुककर शाहसाहबको विनय-पूर्वक सलाम किया। बादको काजीसाहबको भी उसी तरह सलाम किया। काजीसाहबने पूछा—क्यों राय साहब! आपका मिजाज शरीफ?

सीताराम—अलहम्दुलिल्ला! मिजाजेमुबारकका हाल सुनकर यह नाचीज अपनेको खुश किस्मत समझेगा।

काजी—खुदाने नफ़रको जैसे रखा है। इस वक्त तो यही जवाब है कि, बाल सफेद होगये हैं, कज़ाके दिन आनेसे ही खैरियत है। अब आप अपने दौलतखानेकी खैरियत कहिये?

सीताराम-हुजूरके इकबालसे गरीबखानेकी सब खैरियत है।

काजी—इस वक्त यहाँ क्या समझकर तशरीफ लाये हैं?

सीताराम—यह गङ्गाराम-बदबख़्त-बेतमीज़ मेरा हमज़ात है। इसीसे तकलीफमें पड़कर हुजूरके पास हाजिर हुआ हूँ, जान बखशिस फर्माइये।

काजी—यह क्या? क्या ऐसा भी हो सकता है?

सीताराम—मेहरवान और कदरदान सब कर सकते हैं।

काजी—खुदा मालिक है, मुझसे इस मामलेमें कुछ न हो सकेगा।

सीताराम—हजार अशर्फी जुर्माना दूँगा। जान बखशिस फर्माइये।

काजीसाहबने फकीरकी ओर देखा। फकीरने सिर हिला दिया। काजीने कहा—यह सब कुछ नहीं होगा। काफिरको कब्र में डालो।

सीताराम—दो हजार अशर्फी दूँगा। मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ। मेरे खातिरसे उसे कुबूल कीजिये।

काजीने फकीरकी ओर फिर देखा—उसने मना किया। सीतारामकी वह बात भी उड़ गयी। सीतारामने चार हज़ार अशर्फी देना चाहा पर वह भी अस्वीकार हुयी। पाँच हजार—वह भी नहीं। आठ हजार—दस हजार, वह भी नहीं। सीतारामके पास और अधिक नहीं है। अन्तमें सीताराम घुटने टेक, हाथ जोड़, कातर स्वरसे कहने लगे—मेरे पास और नहीं है। पर और जो कुछ है वह भी देता हूँ। अपना तालुकमुल्क, जमीन जवाहिरात धन-दौलत जो कुछ है सब देता हूँ। सब ले लीजिये, पर उसको छोड़ दीजिये।

काजीसाहबने पूछा—वह तुम्हारा कौन है, कि उसके लिये सब कुछ दे रहे हो?

सीताराम—वह मेरा जो हो, मैं उसका प्राण बचाना स्वीकार कर चुका हूँ—इसलिये मैं अपना सर्वस्व भी दे करके उसका प्राण बचाऊँगा। यही हमारा हिन्दू-धर्म है।

काजी—हिन्दू-धर्ममें जो कुछ भी हो, पर मुसलमान धर्म उससे बड़ा है। इस आदमीने एक मुसलमान फकीरकी बेइज्जतीकी है, इसलिये इसकी जान जरूर ली जायगी, इसमें शक नहीं। काफिरको मार डालनेके सिवा और कोई सजा नहीं दी जा सकती है।

तब सीताराम, घुटनोंके बल बैठ, काजी साहबका दामन (आलख़ालिक) थामकर, विनीत स्वरसे कहने लगे,—

काफिरकी जान ! मैं भी काफिर हूँ। मेरी जान लेनेसे क्या बदला नहीं चुक सकता ? मैं इस कब्रमें उतरता हूँ, मुझे दफन कर दीजिये। मैं भगवानका नाम लेते-लेते वैकुण्ठ चला जाऊँगा—इसलिये मेरी जान लेकर इस गरीबकी जान बख्स दीजिये । दोहाई है काजीसाहब ! तुम्हारे जो खुदा हैं, मेरे भी वही वैकुण्ठनाथ हैं। धर्म कीजिये। मैं अपना प्राण देता हूँ—उसके बदलेमें इस तुच्छ व्यक्तिको छोड़ दीजिये।

ये बातें समीपके हिन्दू-दर्शक सुनकर जय-जयकार कर उठे। ताली बजाकर कहने लगे—धन्य हो राव जी ! धन्य हो रायमहाशय !! काजी साहब आपकी जय हो !!! गरीबको छोड़ दीजिये।

जो लोग इन बातोंको नहीं सुन सके थे वे भी जय शब्द सुनकर जय-जयकार करने लगे। बड़ा कोलाहल मच गया। काजीसाहब भी विस्मित होकर सीतारामसे पूछने लगे—ये लोग क्या कह रहे हैं रायसाहब ! यह आपका कौन है जो इसके लिये आप अपनी जान देना चाहते हैं ?

सीताराम—यह मेरे भाईसे, पुत्रसे, भी बढ़कर है। क्योंकि यह मेरे शरण आया है। हिन्दू-शास्त्रकी यही रीति है कि सर्वस्व, अपना प्राण तक भी, देकर शरणागतकी रक्षा करो। राजा औसीनरने अपने शरीरका सब मांस देकर भी एक कबूतरकी रक्षाकी थी। इसलिये मेरी जान लेकर इसको छोड़ दीजिये। काजीसाहब सीतारामपर कुछ खुश हुए। शाहसाहबको एकान्तमें ले जाकर धीरे-धीरे उनसे बात करने लगे।

यह शख्स दस हजार अशर्फी देना चाहता है। वह लेनेसे सरकारी खजाना कुछ बढ़ जायगा। दस हजार अशर्फी लेकर इस कमबख़्तको छोड़ दूँ तो कैसा हो ?

शाहसाहब ! मैं तो चाहता हूँ कि इन दोनोंको ही इसी कब्रमें दफन कर दूँ। आप क्या कहते हैं ?

काजी—तोबा ! तोबा ! मैं यह न कर सकूँगा। सीतारामने कोई कसूर नहीं किया है—खासकर यह शख्स इज्ज़तदार और नेकचलन है।

अब तक गङ्गारामने कुछ नहीं कहा था, वह जानता था कि उसका छुटकारा नहीं होगा। परन्तु शाहसाहब के साथ काजी साहबकी निरालेमें बात हो रही है, यह देखकर उसने हाथ जोड़कर काजी साहब से कहा—

हुजूरके मर्जी मुबारकमें मेरी निस्बत क्या तसफीया होगा, यह तो मैं नहीं जानता, मगर इस गरीबकी एक बात आपको सुननी होगी। एकके कसूरसे दूसरेकी जान लेना यह कहाँका इन्साफ़ है ? सीतारामके प्राण लेकर मैं अपनी जान बचाना नहीं चाहता। मैं यह हथकड़ी अपने सिरपर मारकर अपना सिर फोड़ लूँगा।

तब भीड़से किसीने पुकारकर कहा—हथकड़ी माथेमें मार कर ही मर जा। मुसलमानके हाथ मरनेसे बच जायगा।

यह कहनेवाले स्वयं चन्द्रचूड़जी थे। एक जमादारने उनकी बात सुनकर कहा—पकड़ो उसको। परन्तु चन्द्रचूड़ तर्कालंकारको पकड़ना सहज नहीं था। यह हो न सका। इधर हथकड़ी सिरपर मारनेकी बात सुनकर फकीरको कुछ भय हुआ कि कहीं जीते मनुष्यको दफन करनेका सुख जाता तो न रहेगा। उन्होंने काजी साहबसे कहा—अब इसे हथकड़ी पहरे रहनेकी क्या जरूरत है ? हथकड़ी खोलनेका हुक्म दीजिये।

काजीसाहबने ऐसा ही हुक्म दिया। लोहारने आकर गंगारामकी हथकड़ी खोल दिया। लोहारके वहाँ आनेकी

आवश्यकता न थी, पर सरकारी बेड़ी और हथकड़ी सब उसीके अधिकारमें रहती थी इसीलिये वह वहाँ आया था। इसके सिवा कुछ छिपी बातें भी इसके भीतर थीं। रातको इस लोहारने चन्द्रचूड़जीसे कुछ रुपये पाये थे।

तब फकीरने कहा—अब देर क्यों? उसको दफन करनेका हुक्म दीजिये।

यह सुनकर लोहारने कहा—पैरकी बेड़ी क्या पड़ी रहेगी? सरकारी बेड़ीका नुकसान क्यों किया जाय? आज कल बढ़िया लोहा जल्दी मिलता नहीं। और बदमाशोंकी संख्या इतनी बढ़ गयी है कि मैं अब बेड़ी नहीं जुटा सकता। यह सुनकर काजीसाहबने बेड़ी खोलनेका भी हुक्म दिया। वह खोल दी गयी।

बेड़ी खुल जानेपर गंगारामने खड़े होकर एकबार इधर-उधर देखा। इसके बाद उसने एक अद्भुत काम किया। पास ही सीताराम खड़े थे, घोड़ेकी चाबुक हाथमें थी। अचानक उनके हाथसे चाबुक खींचकर गंगाराम एक छलांगमें सीतारामके घोड़ेपर चढ़ गया और घोड़े को कसकर एक एँड़ लगाई। तेज घोड़ा एँड़ लगते ही गरम हो एक छलांगमें कब्र पार होकर, सिपाहियोंके ऊपरसे होता हुआ भीड़में जा पहुँचा।

जितनी देरमें एक बार बिजली चमकती है, उतनी ही देर में यह काम हो गया। यह देखकर उस भीड़में बड़े जोरसे जयध्वनि होने लगी। सिपाही 'पकड़ो-पकड़ो' कह कर पीछे दौड़े। परन्तु उसमें एक भारी अड़चन आ पड़ी। तेज घोड़ेको देखकर उसके सामनेसे लोग मारे डरके हटने लगे, इसलिये गंगारामको रास्ता मिलने लगा परन्तु सिपाहियोंको रास्ता

नहीं मिला। उनके सामने लोग जमकर खड़े हो गये, तब वे हथियार चलाकर रास्ता करनेका उपाय करने लगे।

उसी समय उनलोगों ने विस्मित होकर देखा कि साक्षात् यम की तरह बहुत से बलवान्-अस्त्रधारी पुरुष एक-एक करके भीड़ से निकल कर पंक्ति बाँध उनके सामने रास्ता रोककर खड़े होगये हैं। तब और भी सिपाही आ गये। यह देखकर और भी ढाल तलवारवाले हिन्दू आकर उनके सामने खड़े होगये। दोनों दलोंमें भारी दंगा मच गया।

यह देखकर काजीसाहबने क्रोध पूर्वक सीतारामसे पूछा—यह क्या मामला है।

सीताराम—मुझे तो कुछ नहीं मालूम।

काजी—तुम्हें कुछ नहीं मालूम? मैं तो समझता हूँ, यह तुम्हारी ही शरारत है।

सीताराम—यदि ऐसा करना होता तो मैं आपके पास खाली हाथ आकर जान बख्शनेकी सिफ़ारिश न करता।

काजी०—मैं अब तुम्हारी सिपारिश मंजूर करूँगा। इस कब्रमें अब तुम्हींको दफन करूँगा।

यह कहकर काजीसाहबने लोहारको हुक्म दिया कि इसके हाथ पैरमें भी हथकड़ी-बेड़ी पहना दो। और एक आदमीको उन्होंने फौजदार साहबके पास भेजा कि फौजदार साहबसे जाकर कहो कि वह और फौज लेकर खुद यहाँ आवें। फौजदारके पास आदमी गया। लोहारने आकर सीतारामको पकड़ा। वृक्षपर चढ़ी हुई वह वनदेवी श्रीने भी यह देखा।

इधर गंगाराम बड़ी कठिनाईसे भीड़ पार करके बाहर आया। कठिनाई यह हुई कि उसने भागते हुये देखा कि भीड़ में एक बड़ी गड़बड़ी मच गयी है। बड़ा शोर हो रहा था।

लोग सामने दौड़ रहे थे। उसका घोड़ा यह सब देखकर भड़क गया। घोड़े पर चढ़ना गंगाराम भली प्रकार नहीं जानता था। घोड़ा सम्भालनेमें ही वह ऐसा घबड़ा गया कि इधर-उधर देखनेका भी उसे अवसर नहीं मिला कि कौन कहाँ हैं। केवल 'मार-मार' का शब्द उसे सुनाई पड़ा।

भीड़से किसी प्रकार निकल कर गंगारामने घोड़ेको छोड़ दिया और एक वटवृक्षपर चढ़कर देखने लगा कि क्या हो रहा है। उसने देखा कि वहाँ भारी गड़बड़ी मची है। वह विशाल जनता दो हिस्सोंमें बट गयी है। एक ओर सब मुसलमान हैं और दूसरी ओर सब हिन्दू। मुसलमानोंके आगे थोड़े से सिपाही हैं, और हिन्दुओंके आगे थोड़े से ढाल-तलवारवाले वीर पुरुष। हिन्दुओंमें चुने-चुने जवान हैं, और उनकी संख्या भी अधिक है। मुसलमान उनके सामनेसे हट रहे हैं, बहुतसे भाग भी रहे हैं। हिन्दू "मार-मार" करते हुए उनका पीछा कर रहे हैं। इस "मार-मार" शब्दसे आकाश मैदान और जंगल गूँज रहा था, जो युद्ध नहीं कर रहे थे वह भी "मार-मार" का शब्द कर रहे थे। "मार-मार" शब्द कहते हुए हिन्दू चारो ओरसे दौड़े चले आते थे। गंगारामने विस्मित होकर सुना कि जो "मार-मार" शब्द कर रहे हैं, वे बीच-बीचमें कह रहे हैं, जय कालीमाईकी! कालीमाई आई हैं! माताकी आज्ञा है। "मारो! मारो!! मारो!!!" जय काली माई की जय! गंगारामने सोचा, यह क्या बात है? कुछ देर बाद गंगारामने देखा कि विशाल वृक्षपर हरे पत्तोंसे घिरी देवी दो शाखाओंपर अपने दोनों चरणोंको रख कर, बाँयें हाथसे एक कोमल शाखा पकड़े हैं, और दाहिने हाथसे अंचल हिलाती हुई पुकार रही हैं, "मारो! मारो!!

शत्रुओं को मारो !!!" अंचल हिल रहा है, खुले हुए बाल हवाके झोंकेसे उड़ रहे हैं—पैरोंके बोझसे दोनों शाखायें कुछ कुछ झोंका खा रही हैं। उसके साथ ही उनकी मूर्ति भी हिल रही है। जान पड़ता है मानो सिंहवाहिनी दुर्गा सिंहपर चढ़ कर रणभूमिमें नाच रही हैं। मानो माता असुरोंको मारने के लिये मत्त होकर कह रही हैं; "मारो ! मारो !! शत्रुओं को मारो !!!" श्रीको इस समय लज्जा नहीं है, ज्ञान और भय नहीं है, वह केवल कह रही है "मारो! शत्रुओं को मारो !!" देवताओं के शत्रु, मनुष्योंके शत्रु, हिन्दुओं के शत्रु, और हमारे शत्रुओं को मारो ! उसकी दोनों बाहें कैसी सुन्दर जान पड़ती हैं ? हिलते हुए ओंठ, कंपित नासिका, बिजली की भाँति कटाक्ष, पसीनेसे भींगी हुई ललाट और बालों की शोभा कैसी अपूर्व है ! सब हिन्दू उसकी ओर देख रहे हैं, और "जय माता दुर्गा की जय !" कहकर रण-भूमिमें दौड़ रहे हैं। गंगारामने पहले सोचा था कि वास्तवमें स्वयं दुर्गा ही रणक्षेत्रमें अवतीर्ण हुईं हैं—पर उसके बाद उसने आश्चर्य और भयके साथ पहिचाना कि वह श्री है।

इसी देवीके उत्साहसे हिन्दुओंकी विजय हुई है। देवीके बलसे बलिष्ट हिन्दुओंके वेगको मुसलमान सहन न कर सके। वे चिल्लाते हुये भागने लगे। थोड़ी ही देरमें रणभूमि मुसलमानोंसे खाली हो गयी। तब गंगारामने देखा कि एक भारी लंबा जवान सीतारामको कँधेपर लेकर, देवीकी ओर जा रहा है। और बहुत से लोग भी उसे चारो ओरसे घेरे हुये चले जा रहे हैं। उसने यह भी देखा कि पीछे-पीछे और एक मनुष्य ढाल-तलवार बाँधे शाहसाहबका कटा हुआ सिर बर्छी-के नोकपर उठाये हुए उनके साथ-साथ जा रहा है। इसी

समय श्री सहसा मूर्छित होकर वृक्षसे पृथ्वीपर गिर पड़ी। गंगाराम भी वृक्षसे नीचे उतर आया।

पाचवाँ परिच्छेद

उसी समय एक गड़बड़ी और मची। तोप, बन्दूक, गोला बारूद लेकर सेनाके सहित फौजदार विद्रोहियोंका दमन करनेके लिये आ रहे हैं। गोला बारूदके सामने भला ढाल-तलवार क्या कर सकती है? क्षण भरमें ही वे सब जवान् वहाँसे गायब हो गये। जो शस्त्रहीन वीर पुरुष उनके आश्रयमें रहकर 'युद्ध विजयकर रहे हैं' यह कहकर कोलाहल कर रहे थे वे कहने लगे, हम तो पहले ही मना करते थे। यह कहकर वे पीछेकी ओर एक बार भी बिना देखे ही एक साँसमें अपने घरकी ओर भागे। जो लोग इस दंगेमें किसी भी ओर नहीं थे, वे "चोरी गयी हुई गायके अपराधमें कपिलाके बन्धनकी सम्भावना देखकर" सीताराम और गंगारामको तरह तरहकी गाली देते हुए रोते चिल्लाते अपने घरकी ओर दौड़े। क्षण भरमें ही वह भीड़ गायब हो गयी। मैदान जैसा सुनसान पहले था वैसाही फिर हो गया। मनुष्योंमें केवल उस वृक्षके नीचे चन्द्रचूड़, सीताराम, गंगाराम और मूर्छित श्री ही बच गयी थी।

सीतारामने गंगारामसे कहा—तुमने उस घोड़े को क्या किया? क्या बेच खाया!

गंगारामने हँसकर कहा—जी नहीं। घोड़ेको खेतमें छोड़ दिया है, अभी पकड़ लाता हूँ।

सीताराम—पकड़कर उसपर एक बार फिर चढ़कर भाग जाओ।

गंगाराम—आप लोगोंको छोड़कर ?

सीताराम—अपनी बहिन के लिये चिन्ता न करो।

गंगाराम—आपको छोड़कर कदापि न जाऊँगा।

सीताराम—तुम बड़ी नदी पार होकर चले जाओ। श्याम पुर जानते हो न ?

गंगाराम—जानता क्यों नहीं ?

सीताराम—वहीं बहुत जल्द चले जाओ। वहाँ मेरे साथ भेंट होगी, नहीं तो आज तुम्हारे प्राण न बचेंगे।

गंगाराम—मैं आपको छोड़ कर कहीं न जाऊँगा।

सीतारामने उसकी ओर भौंहें टेढ़ी करके देखा।

गंगाराम सीतारामकी टेढ़ी भृकुटी देखकर चुप हो गया और उनके धमकानेसे कुछ डरकर घोड़ा खोजने चला गया।

चन्द्रचूड़ भी सीतारामका संकेत पाकर उसके पीछे गये। इधर श्री चैतन्य हुई। वह धीरे-धीरे उठकर बैठ गयी, घूँघट काढ़ लिया। इसके बाद इधर उधर देखकर खड़ी हो गयी।

छठाँ परिच्छेद

सीतारामने कहा—श्री ! अब तुम कहाँ जाओगी ?

श्री—मेरे लिये स्थान कहाँ है ?

सीताराम—क्यों, तुम्हारे माताका घर ?

श्री—वहाँ अब कौन है ? अब वहाँ मेरी रक्षा कौन करेगा ?

सीताराम—तब तुम कहाँ जाना चाहती हो ?

श्री—कहीं नहीं।

सीताराम—तब क्या यहीं रहोगी ? यह तो मैदान है, यहाँ तुम्हारी कुशल नहीं है।

श्री—क्यों, यहाँ मेरा कोई कर क्या सकता है ?

सीताराम—तुम बलवेमें थीं—फौजदार तुमको फाँसी दे सकता है, मार सकता है या इसी प्रकारका और कोई भी दण्ड दे सकता है।

श्री—अच्छी बात है।

सीताराम—मैं श्यामपुर जा रहा हूँ। तुम्हारा भाई भी वहाँ जायगा। वहाँ उसका घर-द्वार हो सकता है। तुम भी वहीं जाओ। वहाँ पर जहाँ तुम्हारी इच्छा हो रहना।

श्री—वहाँ किसके साथ जाऊँ ?

सीताराम—मैं किसीको तुम्हारे साथ कर दूँगा।

श्री—ऐसे किस आदमीको साथ कर दोगे जो इन विकट सिपाहियों के हाथसे मेरी रक्षा कर सके ?

सीताराम कुछ देर तक सोचते रहे। अन्तमें उन्होंने कहा—चलो, मैं ही तुमको साथ ले चलता हूँ।

श्री एकाएक उठ बैठी। वह सिर ऊँचा करके एकटक सीतारामके मुखकी ओर थोड़ी देरतक देखती रही। अन्तमें उसने कहा—इतने दिन बाद, यह बात क्यों कह रहे हो ?

सीताराम—यह बात समझाना बड़ा कठिन है।

श्री—बिना इस बातको समझे मैं तुम्हारे साथ न जाऊँगी। जब कि तुमने मुझे त्याग दिया, तब भला मैं तुम्हारे साथ क्यों जाऊँ ? जाऊँ क्यों नहीं, परन्तु तुम, दयावश मेरे प्राण बचानेके लिये केवल एक दिन मुझे सङ्ग ले चलोगे, ऐसी दया मैं नहीं चाहती। मैं तुम्हारी विवाहिता स्त्री हूँ, तुम्हारे सर्वस्व की अधिकारिणी हूँ, मैं तुम्हारी केवल दया क्यों लूँ ? जिसका किसी पर कुछ अधिकार नहीं होता, वही उससे दया चाहता है। नहीं प्रभु, तुम जाओ, मैं तुम्हारे साथ न जाऊँगी। इतने

दिनों तक तुम्हारे बिना मेरा समय कटा है, वैसे ही अब भी कट जायगा।

सीताराम—आओ, मैं उस बातको तुम्हें समझा दूँ।

श्री—क्या समझाओगे? मैं तुम्हारी सबसे पहली सहधर्मिणी हूँ। तुम्हारी और भी दो स्त्रियाँ हैं, परन्तु मैं तुम्हारी पहिली सहधर्मिणी हूँ। मैं कुलटा भी नहीं हूँ और न जाति भ्रष्टा हूँ। तिसपर भी बिना अपराध विवाहके कई दिन बादसे ही तुमने मुझे त्याग दिया है। कभी यह भी नहीं बतलाया कि मुझे किस अपराधसे तुमने त्यागा। पूछनेपर भी कुछ नहीं बतलाया। बहुत दिनसे मैं सोच रही थी कि तुम्हारे इस अपराधके कारण मैं प्राण-त्याग करूँगी;—तुम्हारे पापका प्रायश्चित करके मैं तुम्हें पापसे छुड़ाऊँगी। वह अपराध जब तक तुमसे मालूम न होगा, तबतक मैं यहाँसे न जाऊँगी।

सीताराम—वह सब बातें बताऊँगा। परन्तु एक बात पहले स्वीकार कर लो—मेरी बातें सुनकर तुम मुझे छोड़कर चली न जाना।

श्री—मैं क्या तुम्हें त्याग कर सकती हूँ?

सीताराम—स्वीकार करो कि नहीं करोगी।

श्री—ऐसी कौनसी बात है? उसे बिना सुने मैं स्वीकार कैसे कर सकती हूँ?

सीताराम—देखो सिपाहियों के बन्दूकका शब्द सुनाई पड़ रहा है। जो लोग भाग रहे हैं, सिपाही उनका पीछा कर रहे हैं। इसी समय यदि आओ तो कदाचित मैं तुम्हें नगरके बाहर ले जा सकूँगा। एक क्षण भी विलम्ब करनेसे सब काम नष्ट हो जायगा। तब श्री उठकर सीतारामके साथ चली।

सातवाँ परिच्छेद

सीताराम निर्विघ्न नगर पारकर नदी किनारे पहुँचे। भागते समय उन्हें अनेक विघ्न हुए थे। इसीलिये उन्हें कुछ देर हो गयी। इस समय रात होगयी थी। सीताराम तारों-के प्रकाशमें नदीके रेतपर बैठकर श्रीको भी पास ही बैठनेकी आज्ञा दी। श्री बैठ गयी, तब वह उससे कहने लगे—

अब जो तुम सुनना चाहती थी, उसे सुनो। किन्तु वह न सुननेसे ही अच्छा होता।

तुम्हारे साथ जब मेरे विवाहकी बात-चीत पक्की हो गयी, तब मेरे पिताने तुम्हारी जन्मपत्री देखना चाहा, परन्तु तुम्हारी जन्मपत्री नहीं थी, इसलिये मेरे पिता तुम्हारे साथ मेरा विवाह करनेपर राजी नहीं हुए। परन्तु तुम्हारा रूप देखकर मेरी माने हठ किया कि तुम्हारे ही साथ वह मेरा विवाह करेंगी। विवाहके महीने भर ही बाद मेरे यहाँ एक विख्यात ज्योतिषी आये। हम सबकी जन्मपत्री देखी। उनकी विद्या देखकर मेरे पिता बड़े प्रसन्न हुए। वह ज्योतिषी खोई हुई जन्मपत्री भी तैयार करना जानते थे। मेरे पिताने उनसे तुम्हारी जन्मपत्री बनानेके लिये कहा।

ज्योतिषी जन्मपत्री तैयार कर लाये। पढ़कर मेरे पिताको सुनाया, उसी दिनसे तुम्हारा परित्याग किया गया।

श्री—क्यों ?

सीताराम—तुम्हारी कुण्डलीमें बलवान् चन्द्रमा अपने घर अर्थात् कर्क राशिमें रहकर शनीके तीसरे अंशमें गया है।*

---

* चन्द्रागारे खाग्नि भावे कुजस्व, स्वेच्छावृत्तिर्यस्य शिल्पे प्रवीणा।

श्री—ऐसा होनेसे क्या होता है ?

सीताराम—जिसके ग्रह ऐसे होते हैं, वह स्त्री अपने प्रिय-की प्राण-घातिनी होती है * अर्थात् अपने प्रिय जनका वध करनेवाली होती है। स्त्रियोंके प्रिय पति ही होते हैं। तुम्हारे कुण्डलीका यह फल जानकर ही तुम्हारा त्याग किया गया है।

यह कहकर सीताराम कुछ देर चुप रहे। इसके बाद कहने लगे—ज्योतिषीने पितासे कहा था—"आप इस पुत्र-वधुको परित्याग करें और अपने पुत्रका दूसरा विवाह कर दें। क्योंकि देखिये यद्यपि स्त्रियोंके लिये साधारणतः पति ही प्रिय होते हैं, परन्तु जो पति अपने स्त्रीका अप्रिय होता है, वहाँ यह फल पतिके प्रति होकर उसके किसी दूसरे प्रिय जनको मिलता है। स्त्री पुरुषमें यदि भेंट भी न हो तो उस स्त्रीका प्रेम पति-पर न होगा और पतिपर प्रेम न होनेसे उसके नाशकी सम्भा-वना न होगी। इसलिये जिससे आपके पुत्रवधूके साथ आपके पुत्रको कभी सहवास न हो या प्रीति न उत्पन्न हो, ऐसी ही व्यवस्था करें।"

पिताने ज्योतिषीके इस परामर्शको अच्छा समझकर उसी दिन तुमको नैहर (पित्रालय) भेज दिया और मुझे आज्ञा दी कि मैं तुम्हें ग्रहण न करूँ। इसीलिये तुम्हारा मैंने अबतक परित्याग किया।

श्री खड़ी होगयी। वह कुछ कहना ही चाहती थी कि सीतारामने उसका हाथ पकड़कर उसे बैठा लिया और कहा—अभी मुझे कुछ और कहना है। जब मेरे पिता मौजूद थे—तब मैं उनके अधीन था, वे जो कहते थे वही होता था।

---

* वाच्यं पत्युः सद्गुणाभार्गवस्य साध्वी मंदस्य प्रियप्राणहंत्री।

श्री—वह स्वर्गमें चले गये हैं इसलिये क्या अब तुम उनके अधीन नहीं हो?

सीताराम—पिताकी आज्ञाका पालन सदा करना चाहिये। चाहे वह इस लोकमें रहें अथवा स्वर्गमें। परन्तु पिता यदि अधर्म करनेके लिये कहें, तो क्या उसका भी पालन करना उचित है? माता-पिता या गुरुकी आज्ञासे अधर्म नहीं किया जा सकता" क्योंकि, जो माता-पिताके और गुरुके भी गुरु हैं, अधर्म करनेसे उनकी विधिका उल्लंघन होता है। बिना अपराध स्त्रीका त्याग घोर अधर्म है—इसलिये मैं पिताकी आज्ञा-पालन करके अधर्म कर रहा हूँ-शीघ्रही मैं तुमसे यह बात कहलाने को था, परन्तु—

श्री फिर खड़ी हो गयी; उसने कहा—मुझे परित्याग करके भी तुमने मेरे प्रति जो इतना दया की है और मेरे भाईका प्राण बचाया है, इसके लिये मैं तुम्हारा गुण गाती हूँ। अब कभी मैं तुम्हें अपना मुख न दिखाऊँगी। तुम भी मेरा नाम कभी न सुनोगे। ज्योतिषी चाहे जो कहें, स्वामीसे बढ़कर स्त्रियोंके लिये और कोई प्रिय नहीं है। स्त्री चाहे स्वामीके साथ रहे या न रहे, पर उसके लिये संसार में स्वामी ही सबसे अधिक प्रिय हैं। तुम मेरे चिर प्रिय हो, यह बात अब मैं छिपाना उचित नहीं समझती। मैं अब तुमसे बहुत दूर रहूँगी।

यह कहकर श्रीने फिर उस ओर देखा भी नहीं और वहाँसे चली गयी। वह अन्धारमें न जाने कहाँ विलीन हो गयी, उसे सीताराम देख न सके।

आठवाँ परिच्छेद

यह बात सीतारामको क्या आज ही याद हुई है? नहीं। कल श्रीको देख कर ही याद हुई थी। कल क्या पहले ही पहल याद हुई थी? हाँ, इसमें क्या सन्देह! सीतारामके साथ श्रीका इतना परिचय अबतक बहुत कम परिचय था। विवाहके बाद कई दिनों तक उन्होंने उसे देखा था पर वह देखना देखने की गिनतीमें नहीं था—श्री तब बालिका थी। उसके बाद सीतारामने दो विवाह और किये थे। तपाये हुए सोनेकी तरह सुन्दर वर्णवाली नन्दासे भी विवाह करके शायद सीताराम के मनसे श्रीका दुख दूर नहीं हुआ था—इसीसे उनके पिताने फिर हिमराशि-प्रतिफलित कौमुदी-रूपिणी रमाके साथ उनका विवाह कर दिया था। आज उनमेंसे एक वसंतकालके निकुंजकी शोभा बढ़ानेवाली अपूर्ण श्रोतस्विनी है और दूसरी वर्षाकालके जलसे परिपूर्ण श्रोतकी भाँति, शोभा दे रही है। इन दो श्रोतोंमें श्री बह गयी थी। इसीलिये अबतक श्रीकी कोई खोज नहीं हुई थी।

इसको मैं मानता हूँ, पर तब भी श्रीको याद करना सीतारामको उचित था। परन्तु ऐसे बहुतसे उचित काम हैं, जो बहुतोंको याद नहीं रहते। जबतक याद होनेका कोई कारण उपस्थित न हो तबतक नहीं होता। जिनके यहाँ रोज रुपये आते हैं उन्हें कब कहाँ उनकी चवन्नी दुअन्नी खो गयी है, यह क्या उन्हें याद रहता है? जिसके एक ओर नन्दा, दूसरी ओर रमा है, उसे भला श्री क्यों याद आने लगी? जिसके एक ओर

गङ्गा, दूसरी ओर जमुना हैं उसे बालूमें सूखकर छिपी हुई सरस्वती की याद कैसे आ सकती है? जिसके एक ओर चित्रा, दूसरी ओर चन्द्रमा हैं, उसे क्या कभी बुझे हुए दीपक-का प्रकाश स्मरण हो सकता है? रमा सुख, नन्दा सम्पत्ति है और श्री विपत्ति है जिसके एक ओर सुख और दूसरी ओर सम्पत्ति है, उसे क्या विपत्ति याद आ सकती है?

पर उस दिन रात को श्रीके चन्द्रमुखने, उसकी आँसुओंसे भरी आँखोंने, बड़ा गड़बड़ मचा दिया। तब यह क्या रूपका मोह है? आह, छिः! छिः!! ऐसा नहीं!! पर उसके रूप, उसके दुःख और सीतारामका निज अपराध इन तीनोंने मिलकर यह उपद्रव खड़ा कर दिया था। जो हो उसका कुछ न कुछ समझौता हो सकता था। धीरे सुस्ते अवसर देखकर, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, धर्म-अधर्मका विचार करके, गुरू-पुरोहितको बुला कर, पिताकी आज्ञा उल्लंघनके प्रायश्चित की व्यवस्था करके, कुछ न कुछ हो सकता था। परन्तु वह सिंहवाहिनी मूर्ति! बलिहारी है उस मूर्ति की!

तब सीतारामकी ओरसे यह बात कह देना भी मेरे लिये उचित है कि केवल सिंहवाहिनी मूर्तिका स्मरण करके ही सीता-रामने पत्नी-त्यागके पापका विचार नही किया था। पहली रातको जब उन्होंने श्रीको देखा था तभी उन्होंने सोचा था कि मैं पिताकी आज्ञाका पालन करके पाप कर रहा हूँ, उन्होंने सोचा था कि पहले श्रीके भाईका प्राण बचाकर नन्दा और रमाको शान्तकरके, चन्द्रचूड़से परामर्श करके जो कुछ उचित होगा करेंगे। परन्तु दूसरे दिनकी घटनाश्रोतमें उनका यह सब विचार बह गया। प्रबल प्रेमकी तरंगसे बालूका बाँध टूट गया, नन्दा, रमा, चन्द्रचूड़ कहीं रहें—इस समय श्री कहाँ है!

श्री एकाएक जब रात्रिके अन्धकारमें विलीन हो गयी, तब सीतारामके सिरपर मानों बज्र गिर पड़ा।

सीताराम, उठकर जिधर श्री बनमें अदृश्य हो गयी थी उसी ओर बड़ी तेजीसे दौड़े। परन्तु अन्धकारमें कहीं उसे देख न सके। वनमें घोर अन्धकार था। कहीं वृक्षोंकी डालोंके टूट जानेसे और कहीं वृक्षोंका स्वेतवर्ण देखकर सीताराम उसे श्री समझकर उसी ओर दौड़े जाते थे। परन्तु श्री वहाँ न थी। तब श्रीका नाम लेकर सीताराम उसे जोर-जोरसे पुकारने लगे। नदी के किनारेके वृक्षसे उनका शब्द प्रतिध्वनित होने लगा, जान पड़ता था कि कोई उत्तर दे रहा है। उस शब्दका लक्ष्य करके वे उसी ओर जाते थे। फिर श्री कहकर पुकारते थे, फिर दूसरी ओर से प्रति ध्वनि होती; फिर सीताराम उसी ओर दौड़ पड़ते थे। हाय! श्री तो यहाँ कहीं नहीं है। हा श्री! हा श्री!! हा श्री!!! करते-करते सवेरा हो गया। पर श्री कहीं नहीं मिली।

जिसको मैं पुकारता हूँ उसे नहीं पाता। जिसको खोजता हूँ वह नहीं मिलता। जिसे मैंने पाया था उसे सहज में ही खो दिया। अब तो वह नहीं मिलती। रत्न खो जाता है परन्तु खो जाने पर क्यों नहीं मिलता? समय पर खोजनेसे शायद मिल जाता, पर अब तो खोजनेसे नहीं मिल रहा है। जान पड़ता है मेरी आँखें क्षीण हो गयी हैं, पृथ्वी अन्धकारमय हो गयी है। मैं खोज नहीं सकता। अब क्या करूँ,—अब कहाँ खोजूँ। जिसको इस जगतमें खोजकर पा न सका, वही मेरे इस जीवनकी सबसे प्रिय वस्तु है। इस प्रभातकालमें श्री सीताराम के हृदयमें सबसे बढ़ कर प्रिय और हृदयकी अधिकारिणी है। उसके अनुपम रूप-माधुर्य्यसे उनका हृदय भर गया। श्रीका गुण

अब उनके हृदयमें जागृत होने लगा। जिस वृक्षपर चढ़ी हुई महिष-मर्दिनीने अंचलके इशारेसे सेनाका संचालन करके रण-विजय किया था, यदि वही श्री सीतारामकी सहायता करे तो संसारमें ऐसा कौन सा काम है जो सीताराम न कर सकें ?

सीतारामके मनमें एकाएक विश्वास हुआ कि श्रीके भाई गंगारामको उन्होंने श्यामपुर जानेकी आज्ञा दी थी। गंगाराम अवश्य श्यामपुर गया होगा। तब वह अति शीघ्र श्यामपुरकी ओर चले। श्यामपुर पहुँचकर उन्होंने देखा कि गंगाराम उनका आसरा देख रहा है। सीतारामने पहले ही उससे पूछा—गंगाराम ! तुम्हारी बहिन कहाँ हैं ? गंगारामने विस्मित होकर उत्तर दिया-मैं क्या जानूँ !

सीतारामने उदास होकर कहा—सब गड़बड़ हो गया। क्या वह यहाँ नहीं आई ?

गंगाराम—नहीं !

सीताराम—अभी तुम उसे खोजने जाओ। बिना खोजे लौटना मत। मैं यहीं हूँ। तुम साहस करके यदि सब जगहों में न जा सको तो दूसरे आदमियों को भेजकर पता लगाना। रुपये पैसेकी जो कुछ आवश्यकता हो, मैं देता हूँ।

गंगाराम आवश्यक धन लेकर अपनी बहिन को खोजने चला गया। बड़े यत्न से एक सप्ताह तक उसने श्रीकी खोज की। पर कुछ पता न लगा। अंतमें निराश होकर वह लौट आया और सीतारामसे सब समाचार कह दिया।

नवाँ परिच्छेद

मधुमती नदीके तीरपर श्यामपुर नामक एक गाँव है। वह गाँव सीतारामकी पैतृक सम्पत्ति है। सीतारामने वहीं आकर आश्रयग्रहण किया है। यह कहना न होगा कि भूषणामें जो बलवा हुआ था वह सीतारामका ही काम था। भूषणा नगरमें सीतारामकी आज्ञाकारी बहुत सी प्रजा और असामी थे। सीतारामने उनसे रातको मिलकर इस दंगेका प्रबन्ध किया था। पर सीतारामकी यह इच्छा थी कि यदि बिना झगड़ा किये ही गङ्गारामका उद्धार होजाय तो दङ्गा करनेकी आवश्यकता नहीं। पर झगड़ा होजाय तो भी बुरा नहीं,—क्योंकि मुसलमानोंका अत्याचार बहुत अधिक बढ़ गया है, कुछ दमन करना आवश्यक है। चन्द्रचूड़का मन इस विषयमें और भी साफ था। मुसलमानोंका अत्याचार इतना बढ़ गया है कि थोड़ेसे मुसलमानोंका सिर लाठीसे बिना तोड़े काम नहीं चल सकता। इसीलिये सीतारामके अभिप्रायकी कुछ भी अपेक्षा न करके चन्द्रचूड़ तर्कालङ्कारने दङ्गा आरम्भ कर दिया था पर बात बहुत बढ़ गयी—फकीरके प्राणोंका बध करना इतनी बड़ी बात थी कि भयभीत होकर कुछ दिनोंके लिये सीतारामने भूषणा त्याग करना ही उचित समझा। जो उस दिनके दंगेमें सम्मिलित थे वे सब भी अपनेको अपराधी जानकर और किसी न किसी दिन फौजदारसे सजा पानेके भयसे अपने घरोंको छोड़कर श्यामपुरमें आ आ कर सीतारामके आश्रयमें घरद्वार बनाने लगे। सीतारामकी प्रजा, अनुचरवर्ग

प्रजाओंके नामकी एक सूची भेज दी। यह जानकर सीतारामके राज्यके भागे हुए सभी लोगोंने अपना नाम बदल लिया। सीतारामने किसीके नामके साथ सूचीके नामोंका मेल न देखकर उन्हें लिख भेजा कि सूचीमें दिये हुए नामका कोई आदमी यहाँ नहीं है।

इसी प्रकार वाद-विवाद चलने लगा। दोनों हीने एक दूसरेके मनका हाल जान लिया। तोराबखाँ सीतारामको नाश करनेके लिये फौज तैयार करने लगा। सीताराम भी आत्मरक्षाके लिये महम्मदपुर के चारो ओर मजबूत किला और खाई बनाने लगे। प्रजाओंको अस्त्र विद्या और युद्धका तरीका सिखाने लगे और सुन्दरवनके रास्तेसे चुप-चाप अस्त्र-शस्त्र मँगवाने लगे।

इन कामोंमें सीतारामको तीन उपयुक्त सहायक मिले थे। ये तीन सहायकोंके ही कारण इतना भारी काम इतनी जल्दी और ऐसे अच्छे ढंगसे पूरा हुआ था। पहले सहायक चन्द्रचूड़ तर्कालंकार, दूसरे मृणमय और तीसरे गंगाराम थे। बुद्धिमें चन्द्रचूड़, बल और साहसमें मृणमय, और शीघ्रतामें गंगारम थे। गंगाराम सीतारामके अनुगत और कार्यकर्त्ता होकर महम्मदपुरमें रहते थे। इस समय चाँदशाह नामके एक मुसलमान फकीर भी सीतारामकी सभामें आया जाया करते थे। फकीर, विद्वान, पंडित, त्यागी थे और हिन्दू मुसलमानोंको भी सम दृष्टिसे देखते थे। उनसे सीतारामकी बड़ी घनिष्ठता हो गयी थी। उन्हींकी रायसे नवाबको खुश रखनेके लिये सीतारामने राजधानीका नाम 'महम्मदपुर' रखा था।

फकीर आते जाते थे, पूछनेसे अच्छी राय देते थे।

यदि कोई झगड़े की बात उठाता था तो उसे शांत कर देते थे। इसलिये इस समय सब काम भली प्रकार होने लगा।

दसवाँ परिच्छेद

सीतारामके जिस प्रकार ये तीन मनुष्य सहायक थे, वैसे ही उनके इस महत्वपूण कार्यमें एक परम शत्रु भी था। शत्रु उनकी छोटी स्त्री रमा थी।

रमा बालिकाकी तरह अत्यन्त कोमल प्रकृतिकी थी। उसकी प्रकृति ऐसी कोमल थी जैसे जूही का फूल। वह संसार की सब बातोंको बड़ी जटिल और भयदायक समझती थी। रमा युद्धके नामसे काँप उठती थी। सीतारामके साहस और पराक्रम से रमाको बड़ा भय जान पड़ता था। विशेषतः मुसलमान बादशाह होनेके कारण मुसलमानों से विवाद करनेमें रमाको बड़ा भय लगता था। तिसपरसे रमाने एक भयंकर स्वप्न देखा था। उसने स्वप्नमें देखा था कि मुसलमानोंने युद्ध में विजय प्राप्त कर ली है तथा उसे और सीतारामको पकड़कर मार रहे हैं। उसदिनसे रमाको उन असंख्य मुसलमानोंके, दंत-श्रेणी प्रभासित बड़ी बड़ी दाढ़ियोंसे भरा हुआ, मुख रात दिन दिखाई देने लगे, उनकी विकट चिल्लाहट रातदिन उसे सुनाई पड़ने लगी। रमा सीतारामसे हठ करने लगी कि, फौजदारके पैरोंपर जा गिरो और उनसे क्षमा-प्रार्थना करो। वह अवश्य ही दया करके तुम्हें क्षमा कर देंगे। सीतारामने इन बातोंपर ध्यान नहीं दिया। रमाने भी आहार-निद्रा छोड़ दिया। सीतारामने उसे समझाया कि उन्होंने मुसलमानोंका कोई अपराध नहीं किया है, पर रमाके मनमें उनकी बात न बैठी। वर्षाऋतु

की तरह रमाके आँखोंसे रातदिन आँसुओंकी धारा वहने लगी। इन बातोंसे चिढ़कर सीतारामने उसके पास आना जाना कम कर दिया, इसलिये बड़ी स्त्री (श्री को गिनने से मझली) नन्दा के लिये एकादश बृहस्पति लग गये।

यह देखकर रमाकी धारणा और भी पक्की होगयी थी कि मुसलमानोंके साथ युद्ध करनेसे सीतारामका सर्वनाश हो जायगा। इसलिये रमा सीतारामके पीछे पड़ गयी। उसके रोने-धोने, हाथ जोड़ने, पैर पड़ने और सिरपच्ची करनेके आफतसे, जहाँ रमा रहती, वहाँ सीतारामने आना जाना भी बन्द कर दिया। तब रमाने एक दूसरी तरकीब सोची। जिस मार्गसे होकर सीताराम नन्दाके पास जाते थे उसी मार्गमें वह छीपी रहती थी। मौका पाते ही वह उन्हें पकड़ कर अपने घर ले जाती थी। इसके बाद वही रोना धोना, हाथ जोड़ना, पैर पड़ना, सरपच्ची करना, घिन घिन, किन किन, करना, आरम्भ कर देती। कभी मुसलाधार वृष्टिकी तरह बढ़ने लगती, कभी झीसी पड़नेकी तरह धीमी पड़ जाती, कभी जेठ बैशाखकी आँधीकी तरह भयङ्कर रूप धारण कर लेती थी। उसके हठका सारांश यही था कि मुसलमान फौजदारके पैरोंपर जा गिरो, नहीं तो भारी विपत्ति आवेगी। सीतारामकी देह इन बातोंको सुन कर जल उठती थी।

इसके उपरान्त जब रमाने देखा कि महम्मदपुर भूषणासे भी बढ़कर आबाद हो गया है और उसके चारो ओर किला खाई बन गयी है, उसके कंगूरोंपर तोपें चढ़ गयी हैं, शस्त्रागार गोला-बारूद, तोप-बन्दूक और नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे परिपूर्ण हो गया है, झुण्डके झुण्ड सिपाही कवायद कर रहे हैं; तब तो रमाने बिलकुल निराश होकर बिछौनेका आश्रय ग्रहण

किया। जब कभी पूजा पाठके लिये बिछौनेसे उठती-तब वह अपने इष्टदेवसे हाथ जोड़कर यही प्रार्थना करती कि हे भगवन्! महम्मदपुर जहन्नुममें जाय—हम लोग फिर मुसलमानोंके आश्रित होकर बेखटके अपना दिन बितावें। इस भारी भयसे हमारा उद्धार करो। सीतारामके साथ उसकी जब कभी भी भेंट हो जाती, तो उनके सामने भी रमा अपने इष्टदेवसे यही प्रार्थना करती थी।

इस आचरणसे रमा सीतारामके आँखोंकी काँटा हो गयी। उस समय सीताराम मनही मन कहते थे कि, हाय! यदि इस समय श्री मेरी सहायता करती! श्रीकी याद रात दिन सीतारामके मनमें बनी रहती थी। श्रीकी, हृदय पटलपर अंकित, मूर्त्तिके आगे नन्दा और रमा कुछ भी नहीं थीं। परन्तु उनके मनकी बात जाननेसे रमा और नन्दाको कहीं कुछ दुःख न हो, इसलिये सीताराम कभी श्रीका नाम भी नहीं लेते थे। केवल रमासे चिढ़कर एक दिन उन्होंने कहा था कि हाय! श्रीको त्याग करके मैंने रमाको पाया!

रमाने आँखें पोंछकर कहा—तो श्रीको ग्रहण क्यों नहीं करते? तुम्हें मना कौन करता है?

सीतारामने एक लम्बी साँस लेकर कहा—श्रीको अब मैं कहा पाऊँगा? सीतारामकी यह बात रमाके हृदयमें चुभ गयी। रमाके अपराधका मुख्य कारण यही था कि वह अपने स्वामी और पुत्रपर अत्यन्त स्नेह रखती थी। उनपर कोई विपत्ति न आवे, इसी चिन्तासे वह रात दिन व्याकुल रहा करती थी। सीताराम भी यह जानते थे। पर यह जानकर भी वह उसपर प्रसन्न न रह सके। क्योंकि रात दिनकी पिनपिनाहटसे उनके कामोंमें बड़ा विघ्न होने लगा। स्त्री-पुरुषोंका परस्पर प्रेम ही

दामपत्य सुख नहीं है, विचारकी एकता और सहृदयता ही दामपत्य सुख है। रमाने समझा कि मैंने बिना अपराध स्वामीका स्नेह खो दिया है। सीतारामने सोचा, भगवन्! रमाके प्रेमसे मेरा उद्धार करो।

रमाके हठसे सीतारामके हृदय-पटलपर अंकित वह श्रीका चित्र और भी उज्वल हो गया। सीतारामने सोचा था कि राज्य-स्थापनके सिवा और किसी काममें वह मन न लगावेंगे परन्तु अब श्रीने आकर धीरे धीरे सीतारामके उस हृदय-सिंहासनपर अधिकार जमा लिया। सीतारामने सोचा-मैंने श्रीके निकट जो पाप किया है, उसका दंड पा रहा हूँ। इसके लिये कोई दूसरा प्रायश्चित्त होना चाहिये।

परन्तु इस हृदय-मन्दिरमें श्रीकी प्रतिमा स्थापित करनेमें एक रमा ही सहायक नहीं थी। नन्दा भी इसमें सहायक थी, परन्तु वह दूसरे प्रकारसे। मुसलमानोंसे नन्दाको कोई भय नहीं था। जब सीतारामको साहस है तब नन्दाको इन बातोंकी क्या आवश्यकता! नन्दा सोचती थी कि, इन बातोंकी भलाई-बुराई मेरे स्वामी स्वयं सोच सकते हैं मुझे सोचनेकी आवश्यकता नहीं है। इसीलिये नन्दा इन बातोंको अपने मनमें स्थान नहीं देती थी और प्राणपणसे पतिकी सेवा में लगी रहती थी। वह माताकी तरह स्नेह, कन्याकी तरह भक्ति, दासी की तरह सेवा करती थी। परन्तु सहधर्मिणी कहाँ? वह उनके उच्चाशामें आशावती, हृदयकी आकांक्षाकी भागिनी, कठिन कार्य्योंमें सहायक, संकटके समय मन्त्री विपत्तिके समय साहसदेने वाली, और विजयमें आनन्दमयी कहाँ! वैकुण्ठमें लक्ष्मी शोभा देती है, परन्तु रण-भूमिमें तो सिंहवाहिनी दुर्गाकी ही शोभा है। इसीसे नन्दाके प्रेमसे भी सीता-

रामको रह-रहकर श्रीका स्मरण हो जाता था। उस सैन्य-संचालिनीकी याद आ जाती थी। "मारो! मारो!! शत्रु को मारो!!! देशके शत्रु, हिन्दुओंके शत्रु, और मेरे शत्रुओंको मारो" यह बातें सीतारामको बारबार स्मरण हो आती थीं। सीताराम इसीलिये मन ही मन उस महिमामयी सिंहवाहिनीकी पूजा करने लगे।

प्रेम क्या है, यह मैं नहीं जानता। किसीने किसीको देखा और तुरंत उसपर मोहित हो गया, फिर कोई भी उसके प्रेम को रोक न सका, ऐसा आज तक संसारमें मैंने नहीं देखा। प्रेम-की बात हम पुस्तकोंमें पढ़ते हैं परन्तु संसारमें प्यार और स्नेहके अतिरिक्त प्रेमकी तरह और कोई सामग्री देखनेमें नहीं आती, इसलिये उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। पुस्तकोंमें वर्णित प्रेम, आकाश-कुसुमकी तरह कोई वस्तु हो सकती है, युवक-युवतियोंके मनोरंजनके लिये जान पड़ता है कवियोंने इसकी रचना कर दी है। परन्तु एक बात माननी पड़ेगी। प्रेम और स्नेह, जो संसारमें इतने आदरकी वस्तु है, वह पुराने को ही प्राप्त होती है; नये को नहीं होती। जिसके संग बहुत समय बिताया है, विपत्ति और सम्पत्तिमें, सुदिन और दुर्दिनमें, जिसका गुण समझा है, सुख और दुःखके बन्धनमें जिसके साथ अपनेको बाँधा है, प्रेम या स्नेह उसीके प्रति उत्पन्न होता है। परन्तु नया प्रेमी नवी सामग्री पाया करता है, नया समझकर ही उसका कुछ आदर होता है। इसके अतिरिक्त उसका गुण न जाननेके कारण बाहरी चिह्न देखकर ही उसके गुणोंका अनुभव कर लिया जाता है। जिसकी परीक्षा हो चुकी है, उसकी सीमा भी बँध जाती है, परन्तु जिसकी परीक्षा नहीं होती केवल अनुमानसे ही जिसके गुण

दाम्पत्य सुख नहीं है, विचारकी एकता और सहृदयता ही दाम्पत्य सुख है। रमाने समझा कि मैंने बिना अपराध स्वामीका स्नेह खो दिया है। सीतारामने सोचा, भगवन्! रमाके प्रेमसे मेरा उद्धार करो।

रमाके हठसे सीतारामके हृदय-पटलपर अंकित वह श्रीका चित्र और भी उज्ज्वल हो गया। सीतारामने सोचा था कि राज्य-शासनके सिवा और किसी काममें वह मन न लगावेंगे परन्तु अब श्रीने आकर धीरे धीरे सीतारामके उस हृदय-सिंहासनपर अधिकार जमा लिया। सीतारामने सोचा-मैंने श्रीके निकट जो पाप किया है, उसका दंड पा रहा हूँ। इसके लिये कोई दूसरा प्रायश्चित्त होना चाहिये।

परन्तु इस हृदय-मन्दिरमें श्रीकी प्रतिमा स्थापित करनेमें एक रमा ही सहायक नहीं थी। नन्दा भी इसमें सहायक थी, परन्तु वह दूसरे प्रकारसे। मुसलमानोंसे नन्दाको कोई भय नहीं था। जब सीतारामको साहस है तब नन्दाको इन बातोंकी क्या आवश्यकता! नन्दा सोचती थी कि, इन बातोंकी भलाई-बुराई मेरे स्वामी स्वयं सोच सकते हैं मुझे सोचनेकी आवश्यकता नहीं है। इसीलिये नन्दा इन बातोंको अपने मनमें स्थान नहीं देती थी और प्राणपणसे पतिकी सेवा में लगी रहती थी। वह माताकी तरह स्नेह, कन्याकी तरह भक्ति, दासी की तरह सेवा करती थी। परन्तु सहधर्मिणी कहाँ? वह उनके उच्चाशामें आशावती, हृदयकी आकांक्षाकी भागिनी, कठिन कार्य्योंमें सहायक, संकटके समय मन्त्री विपत्तिके समय साहसदेने वाली, और विजयमें आनन्दमयी कहाँ! वैकुण्ठमें लक्ष्मी शोभा देती है, परन्तु रण-भूमिमें तो सिंहवाहिनी दुर्गाकी ही शोभा है। इसीसे नन्दाके प्रेमसे भी सीता-

रामको रह-रहकर श्रीका स्मरण हो जाता था। उस सैन्य-संचालिनीकी याद आ जाती थी। "मारो! मारो!! शत्रु को मारो!!! देशके शत्रु, हिन्दुओंके शत्रु, और मेरे शत्रुओंको मारो" यह बातें सीतारामको बारबार स्मरण हो आती थीं। सीताराम इसीलिये मन ही मन उस महिमामयी सिंहवाहिनीकी पूजा करने लगे।

प्रेम क्या है, यह मैं नहीं जानता। किसीने किसीको देखा और तुरंत उसपर मोहित हो गया, फिर कोई भी उसके प्रेम को रोक न सका, ऐसा आज तक संसारमें मैंने नहीं देखा। प्रेम-की बात हम पुस्तकोंमें पढ़ते हैं परन्तु संसारमें प्यार और स्नेहके अतिरिक्त प्रेमकी तरह और कोई सामग्री देखनेमें नहीं आती, इसलिये उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। पुस्तकोंमें वर्णित प्रेम, आकाश-कुसुमकी तरह कोई वस्तु हो सकती है, युवक-युवतियोंके मनोरंजनके लिये जान पड़ता है कवियोंने इसकी रचना कर दी है। परन्तु एक बात माननी पड़ेगी। प्रेम और स्नेह, जो संसारमें इतने आदरकी वस्तु है, वह पुराने को ही प्राप्त होती है; नये को नहीं होती। जिसके संग बहुत समय बिताया है, विपत्ति और सम्पत्तिमें, सुदिन और दुर्दिनमें, जिसका गुण समझा है, सुख और दुःखके बन्धनमें जिसके साथ अपनेको बाँधा है, प्रेम या स्नेह उसीके प्रति उत्पन्न होता है। परन्तु नया प्रेमी नवी सामग्री पाया करता है, नया समझकर ही उसका कुछ आदर होता है। इसके अति-रिक्त उसका गुण न जाननेके कारण बाहरी चिह्न देखकर ही उसके गुणोंका अनुभव कर लिया जाता है। जिसकी परीक्षा हो चुकी है, उसकी सीमा भी बँध जाती है, परन्तु जिसकी परीक्षा नहीं होती केवल अनुमानसे ही जिसके गुण

हम जान लेते हैं, उसकी सीमा निर्धारित करना या न करना मनकी अवस्थापर निर्भर करता है; इसीसे नयेका गुण प्रायः असीम जान पड़ता है। इसीसे नये प्रेमपात्रके लिये प्रेमिककी वासना दुर्दमनीय हो उठती है। यदि उसीको प्रेम कहें, तो संसार में प्रेम है। पर यह प्रेम बड़ा उन्मादक है, वह नयेको ही खींचता है। उसके खींचावसे पुराना प्रेम-पात्र हृदयसे दूर चला जाता है। श्री सीतारामके लिये नयी है। श्रीके प्रति वही उन्मादकारी प्रेमने सीतारामके हृदयपर अधिकार जमा लिया है। उसीके श्रोतमें, नन्दा और रमा बह गयी हैं।

हाय! नये! क्या तुम्हीं सुन्दर हो? नहीं, वह पुराना ही सुन्दर है। पर तुम, नये! तुम अनंतके अंश हो। अनन्तका हम केवल तनिकसा अंश ही देख सकते हैं। वह तनिकसा ही अंश हमारे लिये पुराना है; अनन्तका और सब अंश जिसे हम नहीं जानते, हमारे लिये नया है। अनन्तका जो अंश अज्ञात है, वह भी अनन्त है। नये! तुम भी अनन्तके ही एक अंश हो। इसीसें तुम इतने उन्मादकारी हो। श्री भी आज सीतारामके लिये अनन्तकी एक अंश है।

हाय! हमें क्या नया कभी न मिलेगा? हमें क्या श्री कभी न मिलेगी? जिस दिन सब पुरानेको छोड़ जायेंगे, उसी दिन सब नया पा जायँगे, अनन्तके सम्मुख खड़े होंगे। आंख मूँदनेपर मृत्युके बाद श्री मिलेगी। तबतक आओ, हम तुम मिलकर भगवान्का नाम लें। हरि-नामसे अनन्त मिलता है।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

यही तो वैतरणी है। इसको पार करनेसे क्या सब जलन मिट जायगी? क्या मेरी जलन कभी मिटेगी?

वेगवती वैतरणीकी रेतीपर खड़ी होकर अकेली श्री इन बातोंको कह रही थी। उसके पीछे बहुत दूरपर नीले बादल-की तरह नीलगिरिके शिखर❀ दिखाई पड़ते थे। सामने नील जलवाहिनी वक्रगामिनी नदी रुपहले पत्थरकी तरह विस्तृत रेतमें बह रही थी; उसपार काले पत्थरोंसे बनी सीढ़ियोंके ऊपर सप्त मातृकाका मंडप शोभा दे रहा था। उसमें बैठी हुई सप्त मातृकाकी प्रस्तरमयी मूर्ति भी कुछ-कुछ दिखाई पड़ती थी। महा शोभाशालिनी इन्द्राणी, मधुर रूपिणी वैष्णवी, कौमारी ब्रह्माणी, साक्षात वीभत्स रूपधारिणी यमपुत्री छाया, नाना-लंकार भूषिता अनेक उरु-कर-चरणवाली कम्बुकंठमें रत्नहार से शोभित लम्बे उदरवाली, पीताम्बरधारिणी, बराह-वदना बाराही, शुष्क अस्थि चर्मवाली श्वेत केशवाली, मुण्डधारिणी, भीषण चामुन्डा (काली) आदि देवियोंकी मूर्ति पर ढेरके ढेर फूल, चन्दन और वेलपत्र शोभा दे रहे हैं। उनके पीछे विष्णुमंडप-का ऊँचा शिखर नीले आकाशमें चित्रकी तरह अंकित दिखाई पड़ता है। उसीके बाद नीले पत्थरके ऊँचे स्तम्भपर खगपति गरूड़ †शोभा दे रहे हैं। बहुत दूरपर उदयागिरि और ललित-गिरिका विशाल नील कलेवर आकाशमें सोया हुआ ‡ सा

❀ बालेश्वर जिले के उत्तरीय भागमें कुछ पर्वतों को नीलगिरि कहते हैं। वे नौका में वैतरणी नदी जानेपर कहीं-कहीं दिखाई पड़ते हैं।

† पुरी जानेका आजकल जो मार्ग है, उसके बाईं ओर ये सब पर्वत पड़ते हैं।

‡ यह गरुड़स्तम्भ देखनेमें बड़ा सुन्दर जान पड़ता है।

दिखाई पड़ता है। इन सब वस्तुओंको श्री ने देखकर कहा—हाय! यह तो वैतरणी है! इसके पार करनेसे क्या सब जलन मिट जायगी?

"यह वह वैतरणी नहीं है—

'यमद्वारे महाघोर तप्ता वैतरणी नदी'

पहले यमद्वारपर पहुँचो—तब वह वैतरणी दिखाई पड़ेगी।"

पीछेसे श्रीकी बातका किसीने यह उत्तर दिया। श्रीने फिर कर देखा वह एक संन्यासिनी थी।

श्रीने कहा—माता! यमका द्वार वैतरणीके इस पार है या उस पार?

संन्यासिनीने हँसकर कहा—वैतरणी पार करके यमपुरमें पहुँचना पड़ता है। क्यों पुत्री! यह बात क्यों पूछती हो? तुम क्या इसी पार यम-यंत्रणा भोग रही हो?

श्री—जान पड़ता है यंत्रणा तो दोनों ही पार है।

संन्यासिनी—नहीं पुत्री, केवल इसी पार यंत्रणा है। उस पार जिन यंत्रणाओंकी बात हम सुनते हैं, उसे हम लोग इस पारसे ही अपने साथ ले जाते हैं। हम अपने इस जन्मके संचित पापोंकी गठरी बाँधकर, वैतरणीके खेवइयाके नावपर लादकर बिना पैसा-कौड़ी दिये ही पार ले जाते हैं। फिर यमालयमें जाकर गठरी खोलकर धीरे-सुस्ते उस ऐश्वर्य्यको अकेले भोग करते हैं।

श्री—तो बतलाओ माता! यह बोझ क्या इसपार रख जानेका कोई उपाय है? यदि हो तो मुझे बता दो, मैं शीघ्र ही उसका प्रबन्ध करके दिन रहते ही पार चली जाऊँ, रात करनेकी आवश्यकता न पड़े—

संन्यासिनी—इतनी जल्दी क्यों है ? अभी तो तुम्हारे लिये प्रातःकालका ही समय है (थोड़ी ही अवस्था है)।

श्री—अधिक देर होनेसे हवा तेज हो जायगी।

संन्यासिनीके लिये अभी आँधीका समय नहीं आया है—उसकी अवस्था अभी बहुत थोड़ी है। इसीसे श्रीने उससे इस प्रकार बात करनेका साहस किया था। सन्यासिनीने वैसा ही उत्तर दिया—आँधीका भय क्यों करती हो ? क्या तुम्हारे पास कोई चतुर केवट नहीं है ?

श्री—चतुर केवट है, परन्तु उसकी नावपर मैं कभी चढ़ी नहीं। मैं अपने बोझसे उसकी नाव क्यों भारी करूँ।

संन्यासिनी—क्या इसीसे ढूँढती-ढूँढ़ती इस वैतरणीके तीरपर आ बैठी हो ?

श्री—और भी एक चतुर केवटकी खोजमें मैं जा रही हूँ। सुना है कि श्रीक्षेत्र (पुरी) में जो विराज रहे हैं, वही उस पारके नाविक हैं।

संन्यासिनी—मैं भी उसी नाविकको खोजने जा रही हूँ। चलो दोनों एक ही साथ चलें। परन्तु आज तुम अकेली क्यों ? उसदिन सुवर्ण रेखाके तीरपर तुमको मैंने देखा था; उस समय तो तुम्हारे साथ बहुतसे आदमी थे—आज अकेली क्यों ?

श्री—मेरे कोई नहीं है, अर्थात् मेरे अनेक हैं, परन्तु मैंने अपनी इच्छासे ही सबको त्याग दिया है। मैं एक यात्रीदलके साथ श्रीक्षेत्र जा रही थी, परन्तु उन यात्रियोंके पण्डाने, जिसके साथ हमलोग जा रहे थे, मेरे प्रति कुछ कृपादृष्टि करनेका लक्षण दिखाया। अपने ऊपर कुछ अत्याचारकी सम्भावना देखकर कल रातको ही उस दलसे मैं अलग होगयी।

संन्यासिनी—पर अब ?

श्री—अब वैतरणीके तीरपर आकर मैं सोच रही हूँ कि दो बार पार जानेकी आवश्यकता नहीं है। एक ही बारमें पार हो जाना अच्छा है, क्योंकि इसमें जल यथेष्ट है।

संन्यासिनी—नहीं, इस विषयमें हम तुम मिलकर दो-चार दिन विचार कर लें। उसके बाद सोच-समझकर जो उचित जान पड़े उसे ही करना। वैतरणी तो तुम्हारे डरसे भाग जायगी नहीं। क्यों, मेरे साथ चलोगी ?

श्रीका मन फिर गया। उसके पास एक पैसा भी नहीं था। यात्रियोंका दल छोड़कर जबसे वह आयी है तबसे कुछ भी भोजन नहीं किया है। श्री सोच रही थी कि भिक्षा और मृत्युके अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय नहीं है। इस संन्यासिनीके साथ जानेसे कदाचित कोई दूसरा उपाय हो सके। परन्तु इसमें भी उसको सन्देह हुआ। उसने पूछा—माता ! एक बात क्या मैं तुमसे पूछ सकती हूँ ? तुम अपने दिन कैसे बिताती हो ?

संन्यासिनी—भिक्षासे।

श्री—मैं तो यह न कर सकूँगी। वैतरणी इससे सहज जान पड़ती है।

संन्यासिनी—तुम्हें भिक्षा न माँगनी पड़ेगी। मैं तुम्हारे लिये भिक्षा माँग लाऊँगी।

श्री—मा ! तुमतो मुझसे भी अवस्थामें छोटी जान पड़ती हो ? तुम्हारी यह रूपराशि—

संन्यासिनी अत्यन्त सुन्दरी थी—श्रीसे भी अधिक सुन्दरी थी। परन्तु अपना रूप छिपानेके लिये उसने सारे शरीरमें भस्म पोत रखा था। परन्तु उससे और भी विपरीत ही फल

हुआ था—घिसे हुए शीशेकी रोशनीकी तरह उसके रूपकी आग और भी उज्ज्वल हो गयी थी।

श्रीकी बातोंके उत्तरमें संन्यासिनीने कहा—हम उदासीन संसार-त्यागी हैं। हम लोगोंको किसी बातका डर नहीं है। धर्म ही हमारी रक्षा करता है।

श्री—यह मान लिया कि तुम संन्यासिनी होनेके कारण निर्भय हो, परन्तु मैं बेलपत्रके कीड़ेकी तरह तुम्हारे साथ कैसे घूमती फिरूँगी? तुम भी लोगोंसे मेरा क्या परिचय दोगी? क्या कहोगी कि यह कहींसे उड़कर आ गयी है?

संन्यासिनी हँसी—उसके फूलोंकी तरह ओंठकी मधुर हँसीसे, मेघावृत आकाशमें बिजलीकी रेखाकी तरह, उसका भस्मसे ढँका हुआ रूप प्रकाशित हो उठा।

संन्यासिनीने कहा—तुम भी क्यों नहीं संन्यासिनीका वेष धारण कर लेती?

श्री सहम गयी। उसने कहा—यह क्या? मुझे संन्यासिनी होनेका क्या अधिकार है?

संन्यासिनी—मैं तुमसे संन्यासिनी होनेके लिये नहीं कहती, पर जब तुम कह रही हो कि मैंने सर्वस्व त्याग कर दिया है, तब यदि तुम्हारे मनमें पाप न हो, तो तुम्हारे लिये संन्यासिनी होना कुछ भी अनुचित नहीं है। परन्तु इस समय इन बातोंको रहने दो—इस समय केवल इस वेषको छद्मवेषकी तरह धारण कर लो। क्या इसमें भी कुछ दोष है?

श्री—मैं सधवा हूँ। क्या मुझे सिर मुड़ाना पड़ेगा?

संन्यासिनी—सिर तो मैंने भी नहीं मुड़ाया है। ख

श्री—पर तुमने तो जटा धारण की है? से दो

संन्यासि[illegible]—नहीं मैंने जटा धारण नहीं की

बालोंमें कभी तेल नहीं लगाती, और भस्म पोते रहती हूँ, इसीसे कुछ जटा सी पड़ गयी है।

श्री—पर तुम्हारे बाल सर्पकी तरह गेरुड़ी मारकर फन फैलायेसे जान पड़ते हैं, इसलिये मेरी इच्छा होती है कि एक बार उन्हें तेल लगाकर झाड़कर बाँध दूँ।

संन्यासिनी—इस जन्ममें तो नहीं, यदि दूसरे जन्ममें फिर मनुष्यकी देह मिली तो देखा जायगा। इस समय क्या तुम्हें संन्यासिनी बनाऊँ?

श्री—क्या केवल बालोंमें राख पोतनेसे ही संन्यासिनी बन जाऊँगी?

संन्यासिनी—नहीं, गेरुवा वस्त्र, रुद्राक्ष, विभूति सब मेरी इसी झोलीमें है, मैं सब तुम्हें दूँगी।

श्री कुछ इधर-उधर करके सहमत हो गयी। तब एकान्तमें एक वृक्षतले बैठकर उस रूपवती संन्यासिनीने श्रीको भी एक रूपवती संन्यासिनी बना डाला। उसके रेशमकी तरह बालोंमें भस्म पोत, गेरुवा वस्त्र धारण करा, कंठ और बाहोंमें रुद्राक्ष पहिराकर सब अङ्गोंमें विभूति पोत दिया, और अन्तमें श्रीके मस्तकपर चन्दनका टीका भी लगा दिया। दोनों भुवनविजयाभिलाषिनी वसन्त और कामदेवकी तरह यात्रा करने चलीं। वैतरणी पार करके उस दिन वे एक देवमंदिरके अतिथि-शालामें पहुँचीं और वहीं उन्होंने रात बिताई।

थी।
भस्म पोत

बारहवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन खरस्रोता नदीमें यथाविधि स्नानादिककर श्री और संन्यासिनी विभूति और रुद्राक्षादिसे सुशोभित होकर दीपशिखाकी भाँति श्रीक्षेत्रके मार्गको प्रकाशित करती हुई चलीं। उस प्रदेशके रहनेवाले सदा तरह-तरहके यात्रियोंको इस मार्गसे जाते-आते देखा करते थे; वे किसी यात्रीको देख-कर विस्मित नहीं होते थे, परन्तु आज इन दोनोंको देखकर वे भी विस्मित हो गये। किसीने कहा—मानो दो देवियाँ संन्यास धारण करके पुरुषोत्तमका दर्शन करने जा रही हैं। किसीने आकर उन्हें प्रणाम किया, किसीने धनदौलत पानेके लिये वर माँगा। एक पण्डितने उन्हें मना करके कहा—इनसे कुछ न कहो। जान पड़ता है ये रुक्मिणी और सत्यभामा हैं, अपने स्वामीसे मिलने जारही हैं। कुछ लोगोंने अपने मनमें सोचा कि रुक्मिणी और सत्यभामा तो यहीं हैं, इसलिये ये निश्चय श्रीराधिका और चन्द्रावली होंगी। गोप-कन्या होनेके कारण पैदल जा रहीं हैं। यह बात जब सबके मनमें बैठ गयी, तब एक दुष्ट स्त्रीने कहा—हाँ-हाँ जाओ, पर वहाँ सुभद्रा मौजूद हैं, वह तुम्हें मारकर भगा देंगी।

इधर राधिका और चन्द्रावली आपसमें बातचीत करती हुई चली जा रही थीं। इस संन्यासिनीका अबतक कोई सुहृद् नहीं था। आज एक समवयस्का सहेलीको पाकर उसका चित्त कुछ प्रमुदित हो गया था। अभी उसका जीवनस्रोत सूखा नहीं था, बल्कि श्रीका जीवनस्रोत सूखगया था, क्योंकि श्रीको दुःखका अनुभव हो गया था, पर संन्यासिनीको कोई दुःख नहीं था। उन दोनोंमें जो बात-चीत हो रही थी, उनमेंसे दो [illegible] पाठकोंको सुना देनी आवश्यक है।

संन्यासिनी—तुम कहती हो कि मेरे स्वामि हैं और वह तुमको लेकर गृहस्थी करनेकी भी इच्छा रखते हैं, फिर तुमने गृहत्याग क्यों किया ? यह बात मैं तुमसे पूछना नहीं चाहती, क्योंकि तुम्हारे घरकी बात सुनकर, मैं क्या करूँगी ! पर एक बात मैं पूछना चाहती हूँ कि कभी घर लौट जानेकी तुम्हारी इच्छा होती है या नहीं ?

श्री—तुम क्या हाथ देखना जानती हो ?

संन्यासिनी—नहीं। क्या उसे हाथ देखकर जानना होगा ?

श्री—नहीं। यदि तुम हाथ-देखना जानती तो मैं तुम्हें अपना हाथ दिखलाकर एक बात निश्चित कर लेती।

संन्यासिनी—मैं हाथ-देखना नहीं जानती। परन्तु तुमको एक ऐसे आदमीके पास ले चल सकती हूँ, जो इस विद्याके तथा और भी अनेक विद्याओंके पारदर्शी हैं।

श्री—वह कहाँ रहते हैं ?

संन्यासिनी—ललितगिरिके हस्ती गुफामें एक योगी रहते हैं। मैं उन्हींकी बात कहती हूँ।

श्री—ललितगिरि कहाँ है ?

संन्यासिनी—यदि हम चेष्टा करें तो आज सन्ध्यातक वहाँ पहुँच सकती हैं।

श्री-तब चलो।

तब दोनों अति शीघ्र चलने लगीं। यदि उन्हें उस समय कोई ज्योतिषी देखता तो कहता कि आज वृहस्पति और शुक्र दोनों ग्रह मिलकर शीघ्रगामी हुए हैं। ❀

❀ हिन्दू ज्योतिष शास्त्रमें Accelerate motion को शीघ्र गति कहते हैं। दो ग्रह जब पृथ्वीसे एक राशिमें स्थित दिखाई पड़ते हैं, तब उनको युक्त कहते हैं।

तेरहवाँ परिच्छेद

एक ओर उदयगिरि है, दूसरी ओर ललितगिरि। बीचमें स्वच्छ-सलिला विरूपा नदी अपने नीले जलको लिये हुए समुद्रकी ओर चली जा रही है *। इन दोनों पहाड़ोंके शिखरपर चढ़नेसे नीचे हजारों ताड़के वृक्षोंसे शोभित और धान तथा हरे घासोंसे चित्रित, पृथ्वी अत्यन्त मनोहर दिखाई पड़ती है। बालक जैसे अपने माताकी गोदमें बैठकर माताको सर्व्वांग-सुन्दरी देखता है, उसी प्रकार मनुष्योंको पर्वतपर चढ़नेसे पृथ्वी सर्वांग सुन्दर दिखाई पड़ती है। उदयगिरि (वर्तमान अल्तिगिरि) वृक्षोंसे परिपूर्ण है, परन्तु ललितगिरि (वर्तमान नाल्तिगिरि) वृक्षोंसे शून्य प्रस्तरमय दिखाई पड़ता है। किसी समय इसके शिखर और सानुप्रदेश (पर्वतके ऊपरकी समथल जमीन) में अनेक अट्टालिकायें, स्तूप और बौद्ध-मंदिरें सुशोभित थीं। इस समय इसका शिखर चन्दन-वृक्ष और टूटे-फूटे मकानोंके पत्थर-ईंटों और सुन्दर-सुन्दर प्राचीन कालकी बनी हुई मूर्त्तियोंसे अपनी शोभा बढ़ा रहा है। इन मूर्त्तियोंमेंसे यदि दो-चार मूर्त्तियाँ कलकत्तेके अजायबघरोंमें रख दी जायँ तो कलकत्तेकी शोभा अधिक हो जाय। पर हाय! इस समय हिन्दुओंको इण्डस्ट्रियल स्कूलोंमें खेलौना बनाना सीखना पड़ता है! कुमारसम्भव छोड़कर हम 'सूईनवर्ण'

---

* इस समय विरूपा नदी अत्यन्त विरूप हो गयी है, इस समय उसको अँग्रेजोंने बाँध डाला है, अँग्रेजोंके प्रतापसे वैतरणी नदी स्वयं बँध गयी है, फिर विरूपा की कौन कहे!

पढ़ते हैं, गीता छोड़कर 'मिल' पढ़ते हैं और उड़ीसाके प्रस्तर-शिल्पको छोड़कर साहबोंके बनाये चीनी मिट्टीके पुतलोंको देखकर चकित हो जाते हैं। और भी न जाने क्या-क्या हम लोगोंके भागमें अभी वदा है, कहा नहीं जा सकता।

मैं जो कुछ देख चुका हूँ, वही लिख रहा हूँ। वह ललितगिरि मुझे सदा स्मरण रहेगा। चारों ओर कोसों तक फैले हुए हरे-हरे धानके खेत ऐसे जान पड़ते हैं मानों माता वसुमतिके अंगमें किसीने रेशमी साड़ी पहरा दी है! उसके ऊपर माताके अलंकारकी तरह हजारों सीधे सुन्दर पत्तोंवाले तालवृक्ष शोभा दे रहे हैं। बीचमें नीलसलिला विरूपा नदी, नीले-पीले नाना प्रकारके फूलोंसे भरे हुए खेतोंके बीचसे बह रही है। ऐसा जान पड़ता है, मानों किसीने कोमल गलीचेपर नदीका चित्र बना दिया है। चारो ओर स्वर्गीय महात्माओंकी महान् कीर्त्ति दिखाई पड़ती है। पत्थरोंको जिन्होंने इस प्रकारसे पालिश किया था, वे क्या हमारी ही तरह हिन्दू थे? आहा! कैसी सुन्दर ये मूर्त्तियाँ हैं! कैसे सुन्दर पुष्पमाला और आभरणोंसे ये भूषित हैं! शिल्पीने इन्हें कैसा सुन्दर वस्त्र पहिरा दिया है, जान पड़ता है कि इनका वस्त्र हवाके झोंकेसे हिल रहा है। इनकी गठन कैसी सुन्दर है! पराक्रम और वीर्य्यके साथही लावण्य और सौंदर्य्यका कैसा विकास हुआ है! हा! पुरुषार्थयुक्त पुरुषोंकी इन मूर्त्तियोंके बनानेवाले क्या हमारी ही तरह हिन्दू थे? क्या हमारी ही तरह भारतवासी थे और इन स्त्री मूर्त्तियोंको जिनके मुखपर कोप, प्रेम, गर्व और सौभाग्य एक साथ ही झलक रहे हैं, जिनके गलेमें रत्नहार हिलते हुए जान पड़ते हैं जिनकी देह यौवन भारसे मानों झुक गयी है, वह—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्क-बिम्बाधरोष्ठी,
मध्ये क्षामा चकितहरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभिः ॥

—वाली स्त्री-मूर्त्तियोंको जिन्होंने बनाया था वे क्या हमारी ही तरह भारतीय थे ! जिस समय मैंने इन मूर्त्तियोंको देखा उस समय मुझे भारतीयोंका स्मरण होने लगा। उस समय मुझे उपनिषद्, गीता, रामायण, महाभारत, कुमारसम्भव, शकुन्तला, पाणिनी, कात्यायण, सांख्य, पातञ्जल, वैशेषिक इत्यादि हिन्दुओंकी सभी कीर्त्तियोंका स्मरण हो आया। उन कीर्त्तियोंके आगे ये मूर्त्तियाँ कौन चीज हैं। उस समय मैंने सोचा कि हिन्दू कुलमें जन्म लेकर मैंने अपने जन्मको सार्थक किया।

उस ललितगिरिके नीचे विरूपा नदीके तीरपर एक हस्ति-गुफा नामकी एक गुफा थी। गुफा 'थी' ऐसा मैं क्यों कह रहा हूँ, पर्वतके अङ्ग-प्रत्यंग भी क्या कभी नष्ट होते हैं ? हाँ, काल पाकर समयके फेरसे सब वस्तुओंका नाश होता है। गुफा अब नहीं रही, उसकी छत गिर गयी है, उसके सब खम्भे टूट गये हैं, उसके नीचे घास जम गयी है, उसका सर्वस्व नष्ट हो गया है। तब उसके लिये अब दुख करनेसे क्या होता है !

परन्तु गुफा बड़ी सुन्दर थी। पर्वतमें खोदे हुए स्तम्भ और दीवारें बड़ी ही सुन्दर थीं। चारो ओर अपूर्व मूर्तियाँ पत्थरमें खोदी हुई शोभा दे रही थी। उसीमेंसे दो-चार अब भी बची हैं, परन्तु उनका छत्र टूट गया है, रंग बिगड़ गया है। किसीकी नाक किसीके हाथ किसीके पैर टूट गये हैं। वे मूर्तियाँ भी आधुनिक हिन्दुओंकी तरह अंगहीन हो गयी हैं। परन्तु गुफा-की यह दशा आजकल हुई है। मैं जिस समयकी बात कह रहा हूँ उस समय उसकी दशा ऐसी न थी। उस समय गुफा ज्यों-

की त्यों बनी थी। उसके भीतर एक परम योगी महात्मा गंगाधर स्वामी वास करते थे।

संन्यासिनी श्रीको साथ लेकर उस गुफामें पहुँची। उसने देखा कि गंगाधर स्वामी उस समय ध्यानमें निमग्न हैं। इसलिये बिना कुछ कहे ही वे रातको गुफामें एक जगह सो रहीं।

सबेरे ध्यान भंग होनेपर गंगाधर स्वामीने उठकर विरूपामें स्नान किया। प्रातः कृत्य करके जब वह लौटे तो संन्यासिनीने झुककर उनके पैरोंकी धूलि ग्रहण की। श्रीने भी वैसा ही किया।

गंगाधर स्वामीने उस समय श्रीसे कुछ न कहा, और उसके बारेमें संन्यासिनीसे भी कुछ न पूछा। वह केवल संन्यासिनीसे बातचीत करने लगे। दुर्भाग्यवश सब बातें संस्कृतमें ही हुईं, जिससे श्रीने उनका एक शब्द भी न समझा। जिन बातोंके जाननेकी पाठकोंके लिये अत्यन्त आवश्यकता है, उन्हें मैं भाषामें कहता हूँ।

स्वामीजी—यह स्त्री कौन है?

संन्यासिनी—यह एक पथिक है।

स्वामीजी—यहाँ क्यों आई है?

संन्यासिनी—भविष्य-चिन्तासे व्याकुल होकर अपना हाथ दिखानेके लिये यहाँ आई है। इसके प्रति धर्मानुसार जो उचित हो आज्ञा दें।

तब श्रीने निकट आकर उन्हें फिर प्रणाम किया। स्वामीजीने उसके मुखकी ओर देखकर हिन्दी भाषामें कहा—तुम्हारी कर्क राशि है।* श्री कुछ न बोली।

---

* पर, कनकशरीरो देव नम्र प्रकाश्यो। भवति विपुल वक्ष्याः कर्कटो यस्य राशि ॥ इस प्रकारके लक्षण देखकर ज्योतिषीलोग राशि और नक्षत्रका निर्णय कर लेते हैं।

तुम्हारा जन्म पुष्य नक्षत्र-स्थित चन्द्रमें है।

श्री चुप है।

गुफाके बाहर आओ—मैं तुम्हरा हाथ देखूँ।

बाहर आकर श्रीके बायें हाथकी रेखाओंको स्वामीजीने ध्यानपूर्वक देखा। खड़िया लेकर जन्म-संवत, दिन, बार, तिथि, दंड, पल आदि सबका निरूपण कर लिया। अन्तमें जन्म-कुण्डली अंकित करके, गुफामें रखे हुए तालपत्रपर लिखे प्राचीन पंचाग देखकर, द्वादश भागमें ग्रहोंका ठीक-ठीक समावेश किया। उसके बाद श्रीसे कहा—तुम्हारे लग्नमें अपने क्षेत्रमें स्थित पूर्णचन्द्र है और सप्तम गृहमें बुध, बृहस्पति और शुक्र ये तीन शुभ ग्रह पड़े हैं। माता! तुम संन्यासिनी क्यों हो। तुम तो राजमहिषी हो।†

श्री—मैंने सुना है कि मेरे स्वामी राजा हो गये हैं, परन्तु मैंने उनको राजा होते नहीं देखा है।

स्वामीजी—तुम यह न देख सकोगी। क्योंकि यह सप्तम् बृहस्पति नीचस्थ हैं और यह तीनों शुभ ग्रह पापग्रहके क्षेत्रमें पापदृष्ट हो रहे हैं। इसलिये तुम्हारे भाग्यमें राज्य भोगना बदा नहीं है।

श्री यह सब कुछ न समझ सकी वह चुपचाप बैठी रही। थोड़ी देर बाद उसने स्वामीजीसे कहा-और भी कुछ दुर्भाग्य दिखाई पड़ता है?

स्वामीजी—चन्द्रमा शनिके तीस अंशगत हैं।

श्री—इससे क्या होता है?

स्वामीजी—तुम अपने प्रिय जनकी प्राण-हंत्री होगी।

---

† जायस्थेच शुभत्रये प्रणयिनी राज्ञी भवेद् भूपतेः।

श्री वहाँ अब न ठहर सकी, उठकर चलने लगी। तब स्वामीजीने उसको इशारेसे ठहरा कर कहा—ठहरो! तुम्हारे अदृष्टमें एक परम शुभ योग दिखाई पड़ता है। उसका समय अभी नहीं उपस्थित हुआ है। समय आनेपर अपने स्वामीके दर्शनके लिये जाना।

श्री—वह समय कब उपस्थित होगा?

स्वामीजी—अभी मैं उसे नहीं बता सकता। उसके लिये बहुत गणना करनेकी आवश्यकता है। वह समय भी अभी दूर है। तुम कहाँ जाती हो?

श्री—जगन्नाथजीके दर्शन करनेकी इच्छा है।

स्वामीजी—जाओ! आगामी वर्ष तुम फिर यहाँ आना। तब मैं वह समय तुम्हें बतला दूँगा।

तब स्वामीजीने संन्यासिनीसे भी कहा—तुम भी आना। यह कहकर गंगाधर स्वामी बातचीत बन्द करके ध्यानावस्थित हो गये। दोनों संन्यासिनियोंने उन्हें प्रणाम किया और गुफाके बाहर निकलीं।

चौदहवाँ परिच्छेद

दोनों संन्यासिनी उड़ीसाके राजमार्गको प्रकाशित करती हुई जगन्नाथजीकी ओर चलीं। मार्गमें उड़ियालोग पाँती बाँधकर उन्हें देखने लगे। कोई आकर उनके पैरोंपर गिर पड़े और कहने लगे—मा! मेरे मस्तकपर अपना चरण रख कर मुझे पवित्र करो। किसीने कहा—मैं बड़ा दुखी हूँ, मेरा दुःख सुन लीजिये। सबको जहाँतक हो सका उत्तर देकर उन्होंने प्रसन्न किया और आगे बढ़ीं।

चंचलगामिनी श्रीको जरा ठहरानेके लिये संन्यासिनीने कहा—धीरे चल बहिन ! जरा धीरे चल ! दौड़नेसे क्या अदृष्टको पार कर जा सकेगी ?

इस स्नेह-सम्बोधनसे श्रीका मन कुछ प्रसन्न हुआ। दो दिन संन्यासिनीके साथ रहनेसे श्री उसे प्यार करने लगी थी। अबतक इन दोनोंमें माता और पुत्रीके सम्बोधनसे बातचीत होती थी, क्योंकि संन्यासिनी श्रीकी पूज्य थी। संन्यासिनीने जब आज श्रीको 'बहिन' कहकर पुकारा है, तब श्रीने भी समझा कि संन्यासिनी भी उसे प्यार करने लगी है। वह धीरे-धीरे चलने लगी।

संन्यासिनी कहने लगी—अब माता और पुत्रीका सम्बोधन अच्छा नहीं जान पड़ता। हम दोनोंकी उम्र बराबर ही है इस लिये हम दोनों आपसमें बहिन हैं।

श्री—तुमने भी क्या मेरी ही तरह दुःखमें पड़कर संसार-का त्याग किया है ?

संन्यासिनी—मेरे लिये सुख-दुःख बराबर है। तुम्हारी तरह मेरा अदृष्ट नहीं है। तुम्हारे दुःखकी बात मैं सुनूँगी, पर अभी नहीं। तुम्हारा नाम मैंने अबतक पूछा नहीं, बतलाओ तुम्हें किस नामसे पुकारूँ ?

श्री—मेरा नाम श्री है। अच्छा बताओ तुम्हें क्या कहकर मैं पुकारूँ।

संन्यासिनी—मेरा नाम जयन्ती है। मुझे तुम नाम ही लेकर पुकारो। अब मैं तुमसे पूछना चाहती हूँ कि स्वामीजीने जो कुछ कहा, उसे तो तुमने सुना न, अब जान पड़ता है कि तुम्हारी इच्छा घर लौटनेकी नहीं है, पर दिन बितानेके लिये

भी और कोई दूसरा उपाय नहीं है। तुमने क्या सोचा है, अपना दिन किस प्रकार बिताओगी ?

श्री—नहीं, मैंने अबतक कुछ भी सोचा नहीं है। परन्तु इतने दिन तो मेरे किसी तरह कट गये।

जयन्ती—कैसे कटे ?

श्री—बड़े कष्टसे। पृथ्वीपर मानो ऐसा दुःख और नहीं है।

जयन्ती—इसका एक उपाय है—किसी और बातमें मन लगाओ।

श्री—किसमें मन लगाऊँ ?

जयन्ती—इतना बड़ा संसार है, इसमें क्या मन लगाने-लायक कोई वस्तु नहीं है ?

श्री—तो क्या पापमें मन लगाऊँ ?

जयन्ती—नहीं, पुण्य में।

श्री—स्त्रियोंके लिये एकमात्र पुण्य स्वामी-सेवा है। जब मैं उसीको छोड़कर चली आई हूँ, तब मेरे लिये दूसरा पुण्य कहाँ है ?

जयन्ती—स्वामीके भी एक स्वामी हैं।

श्री—वह मेरे स्वामीके स्वामी हैं, मेरे नहीं। मेरे स्वामी ही मेरे स्वामी हैं, और कोई नहीं।

जयन्ती—जो तुम्हारे स्वामीके स्वामी हैं, वही तुम्हारे भी स्वामी हैं, क्योंकि वह सबके स्वामी हैं।

श्री—मैं ईश्वरको भी नहीं जानती—मैं केवल अपने पति-को ही जानती हूँ।

जयन्ती—क्या ईश्वरको जानना चाहती हो ? उन्हें जानने-पर तुम्हारा यह दुःख फिर न रहेगा।

श्री—नहीं, स्वामीको छोड़कर मैं ईश्वरको भी नहीं चाहती। मैं अपने स्वामीको त्याग आई हूँ, उसका जो मुझे दुःख है और ईश्वरको पानेका जो सुख है इन दोनोंमें मैं स्वामी-विरह-के दुःखको ही अधिक पसन्द करती हूँ।

जयन्ती—यदि इतना अधिक प्रेम था तो उन्हें त्यागकर क्यों चली आई?

श्री—मेरे जन्म-लग्नका फल क्या तुमने नहीं सुना? मैं उसका फल पहलेसे ही सुन चुकी थी।

जयन्ती—पर इतना प्रेम तुमने कैसे किया?

श्रीने तब संक्षेपमें अपना पूर्व विवरण सब कह सुनाया। सुनकर जयन्तीकी आँखोंमें भी आँसू भर आये। उसने कहा—तुम्हारे साथ तुम्हारे पतिकी भेंट भी एक प्रकारसे नहीं हुई थी, तिसपर भी इतना प्रेम तुमने कैसे किया?

श्री—तुम ईश्वरपर प्रेम करती हो, पर ईश्वरसे तुम्हारी भेंट क्या हुई है?

जयन्ती—मैं ईश्वरका रातदिन मनही मन ध्यान करती हूँ।

श्री—जिस दिन, मेरे लड़कपनमें, उन्होंने मुझे त्याग कर दिया था, उसी दिनसे मैं उनका रातदिन ध्यान किया करती हूँ।

जयन्ती को यह सुनकर रोमांच हो आया। श्री फिर कहने लगी, यदि एक साथ रहकर मैं उनकी गृहस्[illegible]करती तो कदाचित मेरी यह दशा न होती। मनुष्यमात्रमें ही कुछ दोष-गुण होते हैं। उनमें भी कुछ दोष हो सकते हैं। न होनेपर भी मैं अपने दोषसे उनका दोष देखने लगती? कभी न कभी मतभेद हो सकता था। ऐसा होनेसे मेरे हृदयमें यह प्रेमकी आग इतनी प्रबल होकर न रहती। पर मैं मन ही मन उन्हें देवता समझकर इतने दिनोंसे उनकी पूजा कर रही हूँ। चन्दन घिसकर

भी और कोई दूसरा उपाय नहीं है। तुमने क्या सोचा है, अपना दिन किस प्रकार बिताओगी ?

श्री—नहीं, मैंने अबतक कुछ भी सोचा नहीं है। परन्तु इतने दिन तो मेरे किसी तरह कट गये।

जयन्ती—कैसे कटे ?

श्री—बड़े कष्टसे। पृथ्वीपर मानो ऐसा दुःख और नहीं है।

जयन्ती—इसका एक उपाय है—किसी और बातमें मन लगाओ।

श्री—किसमें मन लगाऊँ ?

जयन्ती—इतना बड़ा संसार है, इसमें क्या मन लगाने-लायक कोई वस्तु नहीं है ?

श्री—तो क्या पापमें मन लगाऊँ ?

जयन्ती—नहीं, पुण्य में।

श्री—स्त्रियोंके लिये एकमात्र पुण्य स्वामी-सेवा है। जब मैं उसीको छोड़कर चली आई हूँ, तब मेरे लिये दूसरा पुण्य कहाँ है ?

जयन्ती—स्वामीके भी एक स्वामी हैं।

श्री—वह मेरे स्वामीके स्वामी हैं, मेरे नहीं। मेरे स्वामी ही मेरे स्वामी हैं, और कोई नहीं।

जयन्ती—जो तुम्हारे स्वामीके स्वामी हैं, वही तुम्हारे भी स्वामी हैं, क्योंकि वह सबके स्वामी हैं।

श्री—मैं ईश्वरको भी नहीं जानती—मैं केवल अपने पति-को ही जानती हूँ।

जयन्ती—क्या ईश्वरको जानना चाहती हो ? उन्हें जानने-पर तुम्हारा यह दुःख फिर न रहेगा।

श्री—नहीं, स्वामीको छोड़कर मैं ईश्वरको भी नहीं चाहती। मैं अपने स्वामीको त्याग आई हूँ, उसका जो मुझे दुःख है और ईश्वरको पानेका जो सुख है इन दोनोंमें मैं स्वामी-विरह-के दुःखको ही अधिक पसन्द करती हूँ।

जयन्ती—यदि इतना अधिक प्रेम था तो उन्हें त्यागकर क्यों चली आई ?

श्री—मेरे जन्म-लग्नका फल क्या तुमने नहीं सुना ? मैं उसका फल पहलेसे ही सुन चुकी थी।

जयन्ती—पर इतना प्रेम तुमने कैसे किया ?

श्रीने तब संक्षेपमें अपना पूर्व विवरण सब कह सुनाया। सुनकर जयन्तीकी आँखोंमें भी आँसू भर आये। उसने कहा—तुम्हारे साथ तुम्हारे पतिकी भेंट भी एक प्रकारसे नहीं हुई थी, तिसपर भी इतना प्रेम तुमने कैसे किया ?

श्री—तुम ईश्वरपर प्रेम करती हो, पर ईश्वरसे तुम्हारी भेंट क्या हुई है ?

जयन्ती—मैं ईश्वरका रातदिन मनही मन ध्यान करती हूँ।

श्री—जिस दिन, मेरे लड़कपनमें, उन्होंने मुझे त्याग कर दिया था, उसी दिनसे मैं उनका रातदिन ध्यान किया करती हूँ।

जयन्ती को यह सुनकर रोमांच हो आया। श्री फिर कहने लगी, यदि एक साथ रहकर मैं उनकी गृहस्[illegible]करती तो कदाचित मेरी यह दशा न होती। मनुष्यमात्रमें ही कुछ दोष-गुण होते हैं। उनमें भी कुछ दोष हो सकते हैं। न होनेपर भी मैं अपने दोषसे उनका दोष देखने लगती ? कभी न कभी मतभेद हो सकता था। ऐसा होनेसे मेरे हृदयमें यह प्रेमकी आग इतनी प्रबल होकर न रहती। पर मैं मन ही मन उन्हें देवता समझकर इतने दिनोंसे उनकी पूजा कर रही हूँ। चन्दन घिसकर

जब कभी दीवालमें लेपन करती थी तो मैं यही समझती थी कि मैंने उन्हींकी देहमें चन्दन लगाया है। बगीचोंसे फूल चुराकर तोड़ लाती और बड़े परिश्रमसे उसका माला गूथकर फूलोंसे फूली हुई पेड़ोंकी डालियों पर उसे पहरा देती थी और उस समय यही समझती थी कि मैंने उन्हींके गलेमें माला पहरायी है। गहने बेंचकर खानेकी अच्छी-अच्छी सामग्री खरीद लाती और उसे भली प्रकार बनाकर नदीमें बहा देती थी। उस समय भी मुझे यही जान पड़ता था कि उन्हींको मैंने खिलाया है। ठाकुरजीको जब मैं प्रणाम करती तब मुझे यही जान पड़ता था कि मैं उन्हींके चरण कमलोंको प्रणाम कर रही हूँ। हा! ऐसी अवस्थामें भी, जयन्ती! देखो मैं उन्हें छोड़कर चली आई हूँ। उन्होंने मुझे पुकारा, तो भी मैं उन्हें छोड़ आई।

श्री अब कुछ कह न सकी। अंचलसे मुँह ढाँपकर रोने लगी।

जयन्तीकी भी आँखें आँसुओंसे डबडबा आईं। ऐसी संन्यासिनी क्या संन्यासिनी है!

द्वितीय खंड
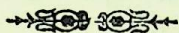
मध्याह्न—जयन्ती

प्रथम परिच्छेद

सीतारामने श्रीकी बहुत खोज की। महीनेपर महीने बीतने लगे, वर्षपर वर्ष बीत गये। इन कई वर्षोंसे सीतराम बराबर श्रीका अनुसन्धान कर रहे थे। प्रत्येक तीर्थ और नगरोंमें उसके खोजनेके लिये उन्होंने मनुष्य भेजे। परन्तु कोई फल न हुआ। दूसरे लोग श्रीको पहिचानते नहीं, इसलिए शायद उसे खोज नहीं सकते, इसी शंकासे गंगारामको भी कुछ दिनके लिये राज-काजसे छुट्टी देकर इसी काममें लगा दिया था। गंगाराम भी अनेक देशोंमें घूमकर अंतमें निष्फल होकर लौट आया।

अंतमें सीतारामने निश्चित किया कि अब श्रीको अपने हृदयमें स्थान न देंगे। राज्य-स्थापनमें ही वे अपना मन लगावेंगे। वह अबतक वास्तविक राजा नहीं हुए थे, क्योंकि दिल्लीके बादशाहने उनको अबतक राजाकी पदवी नहीं दी थी। उन्हें पदवी पानेकी अभिलाषा हुई। इसी इच्छासे उन्होंने शीघ्र ही दिल्ली जानेका निश्चय किया।

परन्तु समय बड़ा बुरा उपस्थित हुआ। क्योंकि हिन्दुओं-का हिन्दूपन बहुत सिर उठा रहा था, मुसलमानोंको वह असह्य जान पड़ता था। महम्मदपुर ऊँचे-ऊँचे शिखरवाले देवा-लयोंसे परिपूर्ण हो गया था। गाँव-गाँव, नगर-नगर, घर-घरमें मंदिरोंकी प्रतिष्ठा, देवताओंका उत्सव, नाच-गान, हरि-संकीर्त्तन होनेके कारण देश चंचल हो रहा था। इसी समय महापापात्मा मनुष्याधम, मुर्शिद कुलीखाँ * मुर्शिदाबादके राजसिंहासनपर बैठा था। बंगालके सूबेके दूसरे-दूसरे प्रदेशोंमें हिन्दुओंके ऊपर घोर अत्याचार हो रहा था—जान पड़ता है-इतिहासमें ऐसा अत्याचार कभी नहीं लिखा गया है। मुर्शिद-कुलीखाँने जब सुना कि सब जगह हिन्दू धूलमें लोट रहे हैं, केवल यही एक महम्मदपुरमें उनका दिमाग बहुत बढ़ रहा है तब उन्होंने तोराबखाँके पास हुकुम भेजा—सीतारामको नष्ट कर दो!

इसलिये भूषणामें सीतारामके विनाश करनेका उद्योग होने लगा। पर उद्योग एकाएक न हो सका। क्योंकि मुर्शिदकुली-खाँने सीतारामके विनाशके लिये हुकुम तो भेज दिया था, पर फौज नहीं भेजी थी। इसमें तोराबखाँके प्रति कोई अन्याय नहीं किया गया था। क्योंकि उस समयका साधारण नियम यही था कि, साधारण शांति-रक्षाका काम फौजदार लोगोंको अपने ही खर्चसे करना होगा—विशेष कारणके बिना, नवाबकी फौज उनकी सहायताके लिए नहीं आती थी। एक साधारण

---

* अंग्रेज इतिहास-वेत्ताओंने पक्षपात और कुछ अज्ञानताके कारण सिरा-जुद्दौलाकी निन्दा और मुर्शिदकुलीखाँकी प्रशंसा की है। परन्तु मुर्शिद-कुलीखाँके मुकाबलेमें सिराजुद्दौला देवता थे।

जमीन्दारको दबाना, साधारण शांति-रक्षाका काम समझा जाता था—इसीसे नवाबने फौज नहीं भेजी थी। इधर फौजदारने हिसाब लगाकर देखा कि जब सुना जाता है कि सीतारामराय अपने राजके सब वयः प्राप्त पुरुषोंको अस्त्र-विद्या सिखा रहे हैं, तब फौजदारने सोचा कि मेरे पास जो कई सौ सिपाही हैं उन्हें लेकर महम्मदपुरपर आक्रमण करना उचित नहीं है। इसलिये फौजदार सिपाहियोंकी संख्या बढ़ानेका उद्योग करने लगा। परन्तु यह काम भी दो-चार दिनमें नहीं हो सकता था। वह पश्चिमके मुसलमान थे इसलिये देशी लोगोंपर उनका विश्वास नहीं था कि ये युद्ध कर सकते हैं। इसलिये वह मुर्शिदाबाद, बिहार, और पश्चिमसे सुशिक्षित पठानोंको बुला कर फौजमें भर्ती करने लगा। उन्होंने यह भी सुना था कि, सीतारामने भी अनेक शिक्षित राजपूत और भोजपुरियोंको अपनी सेनामें भर्ती किया है। इसीसे उनकी सेनाके मुकाबिलेकी सेना बिना संग्रह किये वह सीतारामके विनाशके लिये चढ़ाई नहीं कर सके। इन बातोंके करनेमें कुछ समय बीत गया। तबतक जैसे चल रहा था वैसे ही सब काम चलने लगा।

तोराबखाँ बहुत छिपाकर इन बातोंका उद्योग कर रहे थे। सीतारामको पहलेसे ही इन बातोंका पता न चल जाय और एकाएक फौज लेकर वह उनपर आक्रमण कर दें, यही उनकी इच्छा थी। परन्तु सीताराम इन सब बातोंको जानते थे और चतुर चन्द्रचूड़ भी जानते थे। गुप्तचरोंके बिना राज्यरक्षा नहीं हो सकती—रामचन्द्रके भी गुप्तचर थे। चन्द्रचूड़के गुप्तचर भूषणामें भी थे। इसलिये सीतारामके सहित उनकी राजधानीको ध्वंस करनेकी आज्ञा जो मुर्शिदाबादसे आई थी,

और उसके लिये चुने-चुने सिपाही फौजमें भर्ती हो रहे थे, यह सब बात चन्द्रचूड़से छिपी न थी।

इन सब बातोंका उद्योग करके सीताराम ने कुछ धन और शरीर-रक्षकोंको साथ लेकर दिल्लीकी यात्रा की। जाती समय सीताराम राज्यरक्षाका भार चन्द्रचूड़, मृरामय और गङ्गारामके ऊपर दे गये। वह मन्त्रणा और खजानेका भार चन्द्रचूड़को, सेनाका भार मृरामयको और नगर-रक्षाका भार गङ्गारामको दे गये। अन्तःपुरका भार नन्दाको सौंप गये। रोने-धोनेके भयसे सीताराम रमासे कुछ नहीं कह गये। इसलिये रमाने रो-रोकर जमीन भिगो दिया।

दूसरा परिच्छेद

रोना-धोना थोड़ा कम होने पर रमा कुछ विचार करने लगी। उसकी बुद्धिमें एक बात यह उदय हुई कि इस समय वे दिल्ली गये हैं, यह अच्छा ही हुआ है। यदि इस समय मुसलमान आकर सबको मार डालें, तो भी सीताराम तो बच जायँगे। इसलिये रमाका प्रधान भय दूर होगया। उसको अपने मरनेका कुछ भय नहीं था। चाहे वे रमाको बर्छीसे कोंचकर मार डालें, चाहे तलवारसे टुकड़े-टुकड़े कर डालें, चाहे बन्दूककी गोलीसे मार डालें, चाहे उसका बाल पकड़ कर छतसे उसे नीचे फेंक दें, उसको इन बातोंका विशेष भय नहीं था, क्योंकि सीताराम तो निर्विघ्न दिल्लीमें बैठे रहेंगे। पर रमा अब उनको देख न सकेगी, न सही, दूसरे जन्ममें तो देखेगी। महम्मदपुरमें भी तो उनके दर्शन आज-कल बहुत कम होते हैं। रमा चाहे उन्हें

देखे या न देखे, उनके कुशलपूर्वक रहनेमें ही उसे प्रसन्नता है।

यदि एक वर्ष पहले होता तो, रमा इतना सोचकर ही शान्त हो जाती; परन्तु ईश्वरने उसके भाग्यमें शांति नहीं लिखी है। एक वर्ष हुआ उसको एक बालक हुआ है। सीतारामके जुदाईको वह अपने बालकका मुख देखकर किसी प्रकार सह लेती थी। रमाने पहले सीतारामके लिये सोचा और सोचकर निश्चिन्त हो गयी। उसके बाद अपने लिये सोचा और सोच-कर मरनेके लिये तैयार हो गयी। उसके बाद अपने बालककी चिन्ता करने लगी—लड़केका क्या होगा? मैं यदि मर जाऊँगी, मुझे यदि शत्रु मार डालेंगे, तो मेरे बालकका पालन-पोषण कौन करेगा? न हो बालकको जीजीको दे आऊँगी। पर सौतके हाथमें बालकको कैसे दे आऊँगी? सौतेली मा सौतके लड़केका यत्न कर सकती है? पर नहीं, मुझको ही मार डालेंगे, तो मेरी सौतको भी वे क्यों छोड़ेंगे? वह भ कोई पीर नहीं है। अच्छा मैं यदि मरूँ और मेरी सौत भं जायगी तो मैं फिर अपने बालकको किसे सौंप जाऊँगी?

सोचते-सोचते एकाएक रमाके सिरपर मानो वज्र पड़ा। एक बड़ी भयानक बात उसे याद आ गयी। मुसल बालकको ही क्यों छोड़ेंगे? सर्वनाश! रमा अबतक क्या सोच रही थी। मुसलमान डाकू, चोर और गऊ-भक्षक होते हैं। वे शत्रु होकर मेरे बालकको जीता क्यों छोड़ेंगे? सर्वनाश! सीताराम दिल्ली क्यों गये? रमा इन बातोंको किससे पूछे? परन्तु मनमें जब सन्देह हुआ है तब उसे गुप्त रखकर जीवन बिताना भी तो कठिन है। रमा कुछ सोच-विचार न कर सकी। अन्तमें वह नन्दाके पास जाकर पूछने लगी—जीजी बड़ा डर लगता है—राजा इस समय दिल्ली क्यों गये हैं? नन्दाने कहा—

राजाका काम राजा ही समझ सकते हैं। हमलोग भला उसे क्या समझ सकती हैं बहिन!

रमा—पर इस समय यदि मुसलमान आजायँ तो, इस नगरकी रक्षा कौन करेगा?

नन्दा—रक्षा? ईश्वर करेगा। यदि वह रक्षा न करेंगे तो और कौन कर सकता है?

रमा—मुसलमान क्या सभी को मार डालते हैं?

नन्दा—जो शत्रु है, वह क्या दया कर सकता है?

रमा—क्या वे बाल-बच्चों पर भी दया न करेंगे?

नन्दा—इन सब बातोंको तुम क्यों सोच रही हो, बहिन? ईश्वरने जो कुछ भाग्यमें लिखा है, वह अवश्य होगा। यदि किस्मतमें अच्छा लिखा होगा तो अच्छा ही होगा। हमलोगों ने तो उनका कोई अपराध नहीं किया है। हमलोगोंका बुरा क्यों होगा? तुम यह सब सोच कर व्याकुल क्यों हो रही हो। आओ, चौपड़ खेलोगी? तुम्हारी नथियाका नया लटकन आज मैं तुमसे जीत लूँगी।

यह कहकर नन्दाने रमाका मन बहलानेके लिये चौपड़ बिछाया। रमाने एक बाजी खेला, परन्तु खेलमें उसका मन न लगा। नन्दा जानबूझ कर बाजी हार गयी—रमाके नथियाका लटकन बच गया। परन्तु रमाने और नहीं खेला, एक बाजी समाप्त होते ही उठ गयी।

रमा को नन्दासे अपने प्रश्नोंका उत्तर नहीं मिला—इसीसे खेल न सकी। वह किसी दूसरेसे इन बातोंके पूछनेका विचार करने लगी। महलमें लौटकर उसने अपनी एक बुड्ढी धायसे पूछा—क्यों जी! मुसलमान क्या बालकोंको मार डालते हैं?

बुढ़िया—वे किसको नहीं मारते ? वे जब गाय खाते हैं, तब भला लड़कोंको मारनेमें क्या दया आ सकती है ?

रमाका हृदय धड़कने लगा। उस समय उसके पास जो कोई आता, उसीसे वह इन बातोंको पूछती थी। नगर निवासिनी स्त्रियाँ सभी मुसलमानोंसे डरी हुई थीं, कोई भी मुसलमानोंको अच्छी नजरसे नहीं देखती थीं—इसलिये सभीने प्रायः उसी बुढ़ियाकी तरह उत्तर दिया। तब तो रमाने सोचा अब सर्वनाश हुआ चाहता है। वह अपने बिछौने पर आकर पड़ गयी। और अपने लड़केको गोदमें लेकर रोने लगी।

तीसरा परिच्छेद

इधर तोराबखाँको पता लगा कि सीताराम महम्मदपुरमें नहीं हैं, दिल्ली गये हैं। उन्होंने सोचा कि यह मौका ~~ड़ा अच्छा है। इसी समय महम्मदपुरको जलाकर राख कर देना उचित है। यह सोचकर वह महम्मदपुर पर चढ़ाई करनेकी तैयारी करने लगे।

यह ख़बर महम्मदपुर पहुँच गयी। नगरमें भारी ग मच गयी। गृहस्थ लोग जहाँ-तहाँ भागने लगे। कोई घर, कोई बूआ के घर, कोई चाचा के घर और कोई यहाँ, कोई ससुराल, कोई दामादके यहाँ, कोई समधी और कोई बहनोईके घर, परिवार सहित, लोटा डोर सन्दूक-पिटारा लिये दिये पहुँचे। दूकानदार अपनी लेकर, महाजन अपना-अपना गोदाम बेंचकर और आढ़त बेचकर भागने लगे। कारीगर लोग अपने

आदि सिरपर रखकर भागे। चारो ओर भागने की धूम मच गयी। नगर-रक्षक गङ्गारामदास चन्द्रचूड़के पास आये। उन्होंने कहा—इस समय आपकी क्या राय है? नगर तो उजाड़ हो रहा है।

चन्द्रचूड़—स्त्री, बालक और वृद्ध जो भागना चाहें, उन्हें भागने दो, उन्हें मना मत करो। उनके भागनेमें हम लोगोंका भला है। ईश्वर न करें तोराबखाँ आकर यदि किला घेर ले तो किलेमें भोजन करनेवालोंकी संख्या जितनी कम हो उतना ही अच्छा है। ऐसा होनेसे दो महीनेकी सामग्रीसे हम छः महीने तक काम चला सकेंगे। परन्तु जिन्होंने युद्ध-विद्या सीखी है, उनमेंसे एकको भी न जाने दो। जो जाना चाहें उनको गोलीसे मार डालनेकी आज्ञा दे दो। अस्त्र-शस्त्र लेकर किसीको शहरके बाहर न जाने दो। इस बातका भी ध्यान रखो कि कोई भोजनका सामान एक मुट्ठी भी बाहर न ले जा सके।

सेनापति मृण्मयने भी आकर चन्द्रचूड़से पूछा—यहाँ पड़े रहनेसे तो यह अच्छा होगा कि सेना लेकर मार्गमें ही तोराबखाँपर आक्रमण करके उसे नष्ट कर दें?

चन्द्रचूड़—प्रबल नदीकी सहायता क्यों छोड़ते हो? यदि मार्गमें तुम हार जाओगे तो हम लोगोंको कहीं खड़े होनेका स्थान न मिलेगा। परन्तु यदि इस नदीके किनारे तोप लगा दो तो फिर किसकी मजाल है जो नदी पार कर सके? यह तो हलकर पार होनेवाली नदी नहीं है। इसलिये इस बातका पता लगाते रहो कि वे कहाँसे नदी पार होंगे। वहीं सेना ले जाओ तो इस पार मुसलमान आ न सकेंगे। सब तैयारी कर रखो, परन्तु मुझसे बिना कहे मत जाना।

चन्द्रचूड़ गुप्तचरके लौटनेकी राह देख रहे थे, उसके आने-

से उन्हें पता लग जायगा कि किस मार्गसे तोराबखाँकी सेना चढ़ाई करेगी, तब वह वैसी ही व्यवस्था करेंगे।

इधर अन्तःपुरमें समाचार पहुँचा कि तोराबखाँ सेना-सहित महम्मदपुर लूटनेके लिये आ रहे हैं। बाहरकी अपेक्षा अन्तःपुरमें समाचार कुछ बढ़ जाता ही है। बाहर "आ रहे हैं" का अर्थ लोगोंने "आनेका उद्योग कर रहे हैं" समझा, परन्तु अन्तःपुरमें, "आ रहे हैं" का अर्थ लोगोंने समझा कि "आ पहुँचे।" तब अन्तःपुरमें रोने-धोनेकी भारी धूम मच गयी। नन्दाका काम बहुत बढ़ गया। वह बिचारी किसको-किसको समझावे। विशेष करके रमाके कारण नन्दा बहुत व्यग्र हो गयी। क्योंकि रमा रह-रह कर मूर्छित होने लगी। नन्दा मन ही मन सोचने लगी सौतका मर जाना ही अच्छा है—परन्तु मेरे पति जब मुझे अन्तःपुरका भार दे गये हैं, तब मुझे अपने प्राण देकर भी, सौतको बचाना चाहिये। इसीसे नन्दा सब काम छोड़कर रमाकी सेवा करने लगी।

इधर शहरकी स्त्रियाँ नन्दाको सलाह देने लगीं—रानी जी! तुम एक काम करके सबका प्राण बचा लो। इस नगरीको बिना युद्ध किये हो मुसलमानोंको समर्पण करके सबके प्राणों-की भिक्षा माँगलो। हम बङ्गाली हैं, हम लोगोंको लड़ाई-झगड़े-से क्या काम! यदि हम जीते रहेंगे तो सब कुछ फिर हो जायगा। सबका प्राण तुम्हारे हाथ है—रानीजी, तुम्हारा भला हो, हमारी बात सुन लो।

नन्दाने उन्हें बहुत समझाया। उसने कहा—तुम लोग इतना डरती क्यों हो? पुरुषोंसे क्या तुम अधिक जानती हो? वे लोग जब कह रहे हैं कि कुछ भी डर नहीं है तब इतना क्यों

डरती हो ? उन लोगोंको क्या अपने तथा हम लोगोंके प्राणका मोह नहीं है ?

इन सब बातोंको सुनकर रमाकी मूर्छा जाती रही। वह उठ बैठी। न जाने क्या सोचकर उसके मनमें कुछ साहस हो गया—उसे मैं आगे लिखता हूँ।

चौथा परिच्छेद

गङ्गाराम नगर-रक्षक हैं। गस्त लगाना वह बहुत आवश्यक समझते थे। जिस दिनकी बात मैं कह रहा हूँ, उस दिन रातको वह नगरकी अवस्था जाननेके लिये पैदल साधारण वेष बनाकर गुप्त रूपसे अकेले नगरमें घूम रहे थे, इसी समय न जाने किसने पीछेसे आकर उनका कपड़ा खींचा।

गङ्गारामने पीछे फिरकर देखा तो एक स्त्री दिखाई पड़ी। रात अन्धेरी थी, राजमार्गमें और कोई नहीं था—केवल अकेली वही स्त्री थी। अन्धकारमें केवल इतना ही दिखाई पड़ा कि यह स्त्री है, और कुछ दिखाई नहीं पड़ा। गङ्गारामने पूछा—तू कौन है ?

स्त्री—मैं चाहे जो होऊँ, उससे आपको क्या मतलब ? यह न पूछकर प्रत्युत आप मुझसे पूछें कि तुम्हें क्या चाहिये। उसकी आवाजसे जान पड़ा कि उसकी अवस्था अभी अधिक नहीं है। परन्तु उसकी बातें बड़ी बेधड़क थीं। गङ्गारामने कहा—यह सब बातें पीछे होगीं। पहले बतलाओ कि, तुम स्त्री होकर, इतनी रातको अकेलीं राहमें क्यों घूम रही हो। आजकल जैसा समय आगया है, उसे क्या तू नहीं जानती ?

स्त्री—इतनी रातको अकेली मैं राहमें और कुछ नहीं कर रही हूँ, केवल आपको ही खोज रही हूँ।

गङ्गाराम—झूठी बात है। पहले तो तुम यही नहीं जानती कि मैं कौन हूँ ?

स्त्री—मैं चीन्हती हूँ कि आप गङ्गारामदास नगर-रक्षक हैं।

गङ्गाराम—हाँ, पहिचानती तो हो। परन्तु तुमने यह कैसे जाना कि मैं इस मार्गसे आऊँगा। क्योंकि मैं स्वयं भी नहीं जानता था कि मैं इस मार्गसे जाऊँगा।

स्त्री—मैं बहुत देरसे आपको गलियोंमें खोजती हुई घूम रही थी। आपके घर भी पता लगाने गयी थी।

गङ्गाराम—क्यों ?

स्त्री—यही बात तो पहले आपको पूछनी चाहती थी। आप क्या एक बड़े साहसका काम कर सकेंगे ?

गंगाराम—कौन सा काम ?

स्त्री—मैं आपको जहाँ ले जाऊँगी, वहाँ इसी समय क्या आप चल सकेंगे ?

गंगाराम—कहाँ जाना होगा ?

स्त्री—यह मैं अभी आपको न बताऊँगी, आप अभी उसे पूछ न सकेंगे। कहिये क्या साहस होता है ?

गंगाराम—अच्छा, उसे मत बतलाओ, पर मैं दूसरी दो-एक बात तुमसे पूछना चाहता हूँ। बताओ, तुम्हारा नाम क्या है ? तुम कौन हो ? क्या करती हो ? मुझको क्या करना होगा ?

स्त्री—मेरा नाम—मुरला है; इसके अतिरिक्त और कुछ मैं अभी न बताऊँगी। आपको साहस हो तो आइये, नहीं तो न आइये। परन्तु यदि साहस नहीं है तो मुसलमानोंसे नगरकी

रक्षा आप कैसे करेंगे ? मैं स्त्री होकर जहाँ जा सकती हूँ, आप नगर-रक्षक होकर भी वहाँ इतनी बातें बिना जाने क्या जानेका साहस नहीं कर सकते ?

लाचार होकर गंगारामको उसके साथ जाना पड़ा। आगे-आगे मुरला और उसके पीछे गंगाराम चले। कुछ दूर जाकर गंगारामने देखा, सामने ऊँचा महल है। पहिचानकर उन्होंने कहा—यह तो राजमहल है ! क्या इसमें जाना होगा ?

मुरला—इसमें क्या दोष है ?

गंगाराम—सदर दर्वाजेसे जानेमें कोई दोष न था। परन्तु यह तो जनाना दर्वाजा है। क्या अंतःपुर में जाना होगा।

मुरला—क्या साहस नहीं होता ?

गंगाराम—नहीं। मुझमें यह साहस नहीं है, यह मेरे मालिकका जनाना महल है। बिना हुक्मके मैं उसके भीतर नहीं जा सकता।

मुरला—किसका हुक्म चाहिये ?

गंगाराम—राजाका।

मुरला—वह तो यहाँ नहीं हैं। रानीका हुक्म होनेसे क्या काम चल सकता है ?

गंगाराम—हाँ, चल सकता है।

मुरला—आइये, मैं रानीका हुक्म आपको सुनाऊँगी।

गंगाराम—परन्तु पहरेवाले क्या तुम्हें जाने देंगे ?

मुरला—हाँ, जाने देंगे।

गंगाराम—परन्तु, मुझे बिना चीन्हें वे जाने न देंगे। ऐसी अवस्थामें मैं अपना परिचय उन्हें नहीं देना चाहता।

मुरला—परिचय देनेका भी कोई प्रयोजन नहीं है। मैं आपको ले चलती हूँ।

द्वारपर एक पहरेदार खड़ा था। मुरलाने उसके पास जाकर पूछा—क्यों पाँड़ेजी! द्वार खुला है न?

पाँड़ेजीने कहा—हाँ, खुला है। यह कौन है? पहरेदारने गंगारामकी ओर देखकर यह बात पूछी थी। मुरलाने कहा—यह मेरा भाई है।

पाँड़े—किसी मर्दको मैं नहीं जाने दे सकता। हुक्म नहीं है।

मुरलाने झिड़ककर कहा—अरे किसका हुक्म रे? तुझे हुक्म किसका चाहिये? मेरे हुक्मके सिवा तू और किसका हुक्म खोजता है?

पहरेदार चुप हो गया। फिर उसने कुछ न कहा। मुरला गंगारामको लेकर निर्विघ्न अंतःपुरमें पहुँची, और वहाँ पहुँचकर वह दूसरे खंडमें गयी। वहाँ उसने एक कोठरी दिखाकर कहा—इसमें आप चलिये। मैं पास ही खड़ी हूँ। मैं भीतर न जाऊँगी।

गंगारामको उस समय बड़ा कुतूहल हुआ। उसने कोठरीमें प्रवेश किया। वह घर बहुमूल्य वस्तुओंसे सजा हुआ था, चाँदीकी पलंगपर एक स्त्री बैठी थी। उज्ज्वल दीपशिखाका प्रकाश उसके मुखपर पड़ रहा था। वह आँखें नीचे किये हुए किसी चिन्तामें निमग्न थी। और कोई वहाँ नहीं था। गंगारामने सोचा, ऐसी सुन्दरी तो पृथ्वीमें और कोई नहीं है। वह रमा थी।

पाचवाँ परिच्छेद

गंगाराम कभी सीतारामके महलमें नहीं गया था, नन्दा या रमाको उसने कभी देखा भी नहीं था। परन्तु इस कमरेकी कीमती सजावट देखकर उसने समझ लिया कि यह एक रानी हैं। सीतारामकी रानियोंमें नन्दासे रमाके सौन्दर्य्यकी प्रशंसा अधिक थी, इसलिये गङ्गारामने निश्चय कर लिया कि यह छोटी रानी रमा हैं। इसलिये उसने पूछा—महारानी आपने क्या मुझे बुलाया है ?

रमाने उठकर गंगारामको प्रणाम किया और कहा—आप मेरे बड़े भाई हैं, आपके लिये जैसी श्री है वैसी ही मैं भी हूँ। इसलिये आपको जो मैंने इस समय बुलाया है, उसमें कुछ दोष न समझियेगा।

गंगाराम—आप मुझे जब बुलायेंगी, तभी मैं हाजिर होऊँगा। आप मालिक न हैं।

रमा—मुरलाने कहा था कि प्रकट रूपसे आप यहाँ आनेका साहस न कर सकेंगे। उसने और भी न जाने क्या-क्या कहा था। कमबख़्त, न जाने क्या-क्या कहा करती है, उसे मैं आपसे कहाँ तक बताऊँ। भइया ! मैं बहुत डर रही हूँ, इसलिये मैंने ऐसे साहसका काम किया है। तुम मेरी रक्षा करो।

यह कहते-कहते रमा रोने लगी। उसकी रुलाई देखकर गंगाराम भी व्याकुल हो गये। उन्होंने कहा कि क्या हुआ है ? मुझे क्या करना होगा ?

रमा—क्या हुआ है ? क्या तुम नहीं जानते कि मुसलमान

महम्मदपुर लूटने आ रहे हैं—हम सबको मारकर, शहर जला-कर वे चले जायँगे।

गंगाराम—आपको किसने डरा दिया है? मुसलमान आकर शहर जला जायेंगे तो फिर हमलोग वहाँ किसलिये हैं? हमलोग आपका अन्न किसलिये खा रहें हैं।

रमा—तुम लोग पुरुष हो, तुम लोगोमें साहस अधिक—इसलिये तुम इतना समझ नहीं सकते। यदि तुम लोग नगर-रक्षा न कर सके तो फिर क्या दशा होगी?

रमा—फिर रोने लगी।

गङ्गाराम—मैं अपने शक्ति-भर आप लोगोंकी रक्षा करूँगा। आप निश्चिन्त रहें।

रमा—रक्षा तो करोगे—परन्तु यदि सफल न हुए तो?

गङ्गाराम—यदि सफल न होंगे तो प्राण दे देंगे।

रमा—ऐसा न करो। मेरी सुनो, आज सब लोग बड़ी रानी से कह रहे हैं कि मुसलमानोंको आदरसे बुलाकर, शहर उन्हें सौंप दो—और सबके लिये प्राण-भिक्षा माँग लो। पर रानीने इन बातोंपर कुछ ध्यान नहीं दिया, उनकी बुद्धि इस समय बहुत अच्छी नहीं है। इसीलिये मैंने तुम्हें बुलाया है। बताओ ऐसा हो सकता है या नहीं?

गङ्गाराम—मुझे क्या करनेके लिये आप कहती हैं?

रमा—मेरे पास जो कुछ गहने हैं उन्हें तुम ले लो। और मेरे पास जो कुछ रुपये-पैसे हैं उसे मैं तुम्हें देती हूँ। तुम किसीसे विना कुछ कहे मुसलमानोंके पास चले जाओ। उनसे जाकर कहो कि—हम अपना राज्य छोड़ देते हैं, नगर तुम्हें सौंप देते हैं, तुम लोग किसीको जानसे न मारना केवल यही बात स्वीकार करो। यदि वे सहमत हो जाएँ, तो नगर तुम्हारे

ही हाथमें है—तुम उन्हें चुपचाप बुला कर किला उन्हें सौंप दो। सबकी जान बच जायगी।

गङ्गाराम सहम गये। उन्होंने कहा—महारानी! मुझसे आपने जो कुछ कहा सो कहा—अब किसीके सामने ऐसी बात मुँह पर न लाइयेगा। मेरी जान चाहे चली जाय, पर तौ भी मुझसे यह काम न होगा। यदि दूसरा कोई ऐसा काम करेगा तो मैं अपने हाथोंसे उसका सिर काट डालूँगा।

रमाकी अन्तिम आशा भी टूट गयी। वह जोर-जोरसे रोने लगी। उसने कहा—तब मेरे बच्चेकी क्या दशा होगी? गङ्गाराम डरकर कहने लगे—चुप हो जाइये! यदि आपका रोना सुनकर कोई यहाँ आ जायगा तो हम दोनोंके लिये बुरा होगा। आप अपने बालकके लिये इतनी भयभीत क्यों हो रही हैं? मैं इसका कुछ उपाय कर दूँगा। आप क्या कहीं दूसरी जगह जानेके लिये राजी हैं?

रमा—यदि मुझे अपने पिताके यहाँ पहुँचा सकें तो मैं जा सकती हूँ। पर बड़ी रानी मुझे जाने क्यों देंगी? और तर्कालङ्कारजी भी मुझे क्यों जाने देंगे?

गंगाराम—तब आपको छिपाकर ले जाना पड़ेगा। अभी इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। यदि कोई ऐसी विपत्ति आवेगी तो मैं आकर आप लोगोंको वहाँ ले जाऊँगा।

रमा—पर मुझे यह समाचार कैसे मिलेगा?

गंगाराम—मुरलाके द्वारा आप समाचार लेती रहियेगा। परन्तु इस बातका ध्यान रखियेगा कि मुरला मेरे पास बहुत ही गुप्त रूपसे जाय।

रमाने एक लम्बी साँस लेकर काँपते हुए कहा—तुम यदि

मेरे प्राण बचा दोगे तो मैं सदा तुम्हारी दासी बनी रहूँगी। ईश्वर तुम्हारा भला करेंगे।

यह कहकर रमाने गंगारामको विदा किया। मुरला उन्हें बाहर ले गयी।

किसीके मनमें कुछ मैल न थी। तो भी एक भारी अपराध हो गया। रमा और गंगाराम दोनोंने ही उसे अपने मनमें समझ लिया। गंगारामने ऐसा सोचा—इसमें मेरा दोष क्या? रमाने कहा—इसके सिवा मैं और क्या करती, हमलोगोंके प्राण और कैसे बच सकते! केवल मुरला ही प्रसन्न थी।

गंगारामको यदि दिव्य दृष्टि होती तो वह देखता कि इसके भीतर एक और पुरुष छिपा हुआ यह सब बातें देख रहा है। वह मनुष्य नहीं है वह कामदेव है--

* * दक्षिणा याङ्ग निविष्ट मुष्टिं नतां समा कुंचित सेव्य पादम्।
चक्रीकृत चारु चापं प्रहर्तुमभ्युद्यत मात्मयोनिम्॥

इधर वादी (मुद्दई) के मनमें जो था ईश्वरके मनमें भी वही था। चन्द्रचूड़जीने तोराबखाँके यहाँ गुप्तचर भेजकर कहला भेजा कि—हम इस राज्यको मय किले और शास्त्रागारके आपके हाथ बेचेंगे, कितना रुपया इसके बदलेमें आप देंगे? लड़ाईकी क्या आवश्यकता है—रुपये देकर क्यों नहीं ले लेते?

चन्द्रचूड़ने मृण्मय और गंगारामसे यह बात कह दी। मृण्मय तो अत्यन्त क्रोधित होकर कहने लगे कि—ओह! इतनी बड़ी बात?

चन्द्रचूड़ने कहा—मूर्ख! तुम्हें क्या कुछ बुद्धि नहीं है? मोलभाव करते-करते इसी तरह मैं दो महीने बिता दूँगा। तबतक राजा आ जायँगे।

गङ्गारामके मनमें क्या था, उसे मैं नहीं कह सकता। पर उसने उस समय कुछ कहा नहीं।

छठवाँ परिच्छेद

पर उस दिन गङ्गारामसे कुछ काम न हो सका। अहा! रमाका मुख कैसा सुन्दर है! कैसी सुन्दर रोशनी उसके मुख पड़ रही थी; यही सब बातें गङ्गाराम दिनभर सोचता रहा। दीपकके प्रकाशसे ही क्या उसका मुख ऐसा सुन्दर दिखाई पड़ता था? नहीं, ऐसा होता तो मनुष्य रातदिन दीपकके ही प्रकाशमें क्यों न बैठे रहते? कैसे काले-काले घुँघराले बाल थे! कैसा सुन्दर उसका रङ्ग था! कैसी सुन्दर भौंहें थीं! अहा, उसकी कैसी आँखें थीं! कैसे सुन्दर ओठ, जैसे उनका रङ्ग था वैसे ही वे पतले भी थे! और कैसी गढ़ंत थी! इनमेंसे किसको-किसको गङ्गाराम सोचे? मानो सभी देव-दुर्लभ थे। उसने सोचा मनुष्यों में इतनी सुन्दरता होती है, यह मैं नहीं जानता था! एक बार देखनेसे ही मेरा जन्म सार्थक होगया। मैं उसी रूपका ध्यान करके कई वर्षतक सुखपूर्वक अपना जीवन बिता सकूँगा।

अरे मूर्ख! यह क्या कभी हो सकता है? एकबार देखनेसे फिर देखनेकी इच्छा होती है। दोपहरको गङ्गाराम सोच रहा था, कि एक बार देखनेसे ही मेरा जन्म सार्थक हो गया मैं उसी रूपका ध्यान करके कई वर्ष तक सुखपूर्वक अपना जीवन बिता सकूँगा। परन्तु सन्ध्याको उसने सोचा—और एक बार क्या मैं उसे देख न सकूँगा? दो घड़ी रात बीतनेपर वह सोचने लगा कि आज क्या फिर मुरला नहीं आवेगी? रात एक पहर बीते मुरलाने उसे एकान्त स्थानमें आकर पकड़ा।

गङ्गारामने पूछा—क्या खबर है ?

मुरला—तुम्हारी क्या खबर है ?

गङ्गाराम—किस बातकी खबर चाहती हो ?

मुरला—पिताके घर जानेकी।

गङ्गाराम—इसकी आवश्यकता न पड़ेगी। राज्यकी रक्षा हो जायगी।

मुरला—कैसे जाना ?

गङ्गाराम—यह क्या तुम्हें बता सकता हूँ ?

मुरला—तो क्या मैं यही बातें उनसे जाकर कह दूँ ?

गङ्गाराम—हाँ, कह दो।

मुरला—यदि वह मुझे फिर भेजे तो ?

गङ्गाराम—कल मुझे तुमने जहाँ पाया था, वहीं आज भी मुझे पाओगी।

मुरला चली गयी। उसने जाकर रानीसे यह समाचार कह दिया। गंगाराम ने कुछ खुलासा नहीं कहा था, इसलिये रमा भी कुछ न समझ सकी। न समझ सकनेके कारण फिर घबड़ा गयी। जिससे मुरलाने फिर गङ्गारामको लेकर रात के तीसरे पहर रमाके सामने उपस्थित कर दिया। वही पहरेदार वहाँ आज भी था, इसीसे मुरला उसे गङ्गारामको अपना भाई बताकर भीतर ले गयी।

गङ्गारामने रमाके पास आकर बे सिर पैरकी कौन कौन सी बातें कहीं—उसे गङ्गाराम स्वयं भी न समझ सका। फिर रमा कैसे समझ सकती थी। असल बात यह थी कि गङ्गा-रामका सिर उस समय उसके पास न था, वही धनुर्धारी पंचबाणने फूलोंके बाण मार कर उसे उड़ा दिया था, केवल उसकी दोनों आँखें थीं, जिससे उसने मन भर कर रमाका

रूप देख लिया, कानों से उसकी बातें सुन लीं, परन्तु तो भी तृप्ति न हुई। गङ्गारामको केवल इतना ज्ञान था कि उसने चन्द्रचूड़का कौशल रमासे न कहा। वास्तव में वह कोई बात कहनेके लिये वहाँ नहीं आया था, केवल रूप देखने के लिये ही आया था। बस इसीसे वह उसे देखकर, दक्षिणा में अपना चित्त रमाको देकर चला गया। फिर मुरलाने उसे बाहर पहुँचा दिया, जाती समय मुरलाने गङ्गारामसे कहा—क्या फिर आओगे?

गङ्गाराम—क्यों आऊँगा?

मुरला—जान पड़ता है फिर आओगे। गङ्गाराम आँख मूँदकर बीछलहरमें पैर रख चुका था इसलिये उसने कुछ नहीं कहा।

इधर चन्द्रचूड़की बातोंका तोराबखाँने जवाब भेजा कि यदि थोड़ा बहुत रुपया लेकर शहर छोड़ दो, तो मैं सहमत हूँ। परन्तु सीतारामको पकड़ा देना होगा।

चन्द्रचूड़ने उत्तर भेज दिया कि सीतारामको पकड़वा दूँगा, परन्तु थोड़े रुपयोंसे यह काम न होगा।

तोराबखाँने फिर कहलाया कि कितने रुपये चाहते हो? चन्द्रचूड़ एक बहुत बढ़ी रकम माँग बैठे। तोराबखाँने एक छोटी रकम देना चाहा। उसके बाद चन्द्रचूड़ने अपनी माँग कुछ कम की, तोराबखाँ उसके उत्तरमें कुछ और बढ़े। इसी प्रकार चन्द्रचूड़ मुसलमानों को भुलावा देने लगे।

सातवाँ परिच्छेद

कमबख्त मुरलाने जो कहा था वही हुआ। गङ्गाराम फिर रमाके पास गया। उसका कारण यह था, गङ्गाराम को वहाँ गये बिना चैन नहीं पड़ता था। रमाने अब उसे बुलाया नहीं था, कभी-कभी मुरलाको गङ्गारामके पास समाचार जाननेके लिये भेज देती थी, परन्तु गङ्गाराम मुरलाको कोई समाचार नहीं बतलाता था। वह कहता था कि, तुम लोगोंका विश्वास करके ऐसी छिपी बातें बतलाई नहीं जा सकतीं। मैं एक दिन स्वयं जाकर यह सब बतला आऊँगा। इसीसे रमाने फिर गङ्गारामको बुला भेजा। मुसलमान कब आवेंगे, इसकी खबर बिना जाने रमाका प्राण छटपटाने लगता था।

इसलिये गङ्गाराम फिर आया। इसबार उसने रमाको कुछ ढाढ़स नहीं दिया बल्कि कुछ भय दिखा गया। जिसमें वह फिर बुलावे, इसका प्रबन्ध कर गया। रमासे अपने हृदय-की बात कहनेका उसे साहस नहीं हुआ। सरल चित्त रमा भी उसके मनकी बात तनिक भी समझ न सकी। इसलिये प्रेम-सम्भाषणकी आशासे गङ्गाराम आने-जानेकी चेष्टा नहीं करता था। वह जानता था कि वह मार्ग बन्द है, तो भी उसे देखकर और उससे वार्तालाप करके ही उसे इतना आनन्द होता था।

इसको प्रेम नहीं कहते। यदि प्रेम होता तो गङ्गाराम कभी रमाको भय दिखाकर उसकी यंत्रणा बढ़ा न सकता। यह एक सबसे अधिक निकृष्ट चित्तवृत्ति थी। यह जिसके हृदय में प्रवेश करती है उसका सर्वनाश किये बिना नहीं रहती। इस ग्रंथ में इसका प्रमाण मिलेगा।

भय दिखाकर गङ्गाराम चला गया। तब रमाने अपने पिताके यहाँ जाना चाहा, परन्तु गङ्गाराम आज-कल करके उसे टालता गया। इसीसे दो-एक दिन बाद रमाने फिर उसे बुलाया। वह फिर आया। इसी प्रकार कुछ दिनों तक चलता रहा।

'मछली पकड़ें, पर पानी न छूयें' यह बात नहीं हो सकती। रमाके साथ सबके सामने यदि गङ्गारामकी पचासों बार भी भेंट होती, तो भी उसमें कोई दोष नहीं होता, क्योंकि रमाका मन शुद्ध और पवित्र था। परन्तु इस प्रकार डरते-डरते, ऐसे छिपे-छिपे रात के तीसरे पहर भेंट करना अच्छा नहीं हुआ। और कुछ हो या न हो, कुछ अधिक आदर, कुछ खुली बातें और बात-चीतमें कुछ अधिक असावधानतासे मनका कुछ अधिक मिलाप हो जाता है। ऐसा नहीं हुआ, यह बात नहीं है। रमा पहले यह न समझ सकी थी। परन्तु मुरलाकी एक बात देववाणीकी तरह उसके मनमें बैठ गयी। एक दिन मुरला और पांड़ेजीसे इस विषयमें कुछ बात-चीत हो रही थी।

पाँड़ेजी ने कहा—तुम्हारा भाई हमेशा रातको भीतर क्यों आया-जाया करता है?

मुरला—तेरा क्या रे दुष्ट! मारकी डर तुझे नहीं है क्या?

पाँड़े—मारकी डर तो है, लेकिन मुझे अपने जानकी भी तो डर है।

मुरला—क्यों रे तेरी और भी कोई जान है क्या? मैं हीं तो तेरी जान हूँ।

पाँड़े—तुम अगर मुझे छोड़ दोगी तो मर न जाऊँगा। पर जान यदि चली जायगी, तो सब दुनियाँ मेरे लिये अँधेरी हो जायगी। इसलिये तुम्हारे भाईको अब न छोड़ूँगा।

मुरला—अच्छी बात है, न छोड़ेगा तो मैं ही तुझे छोड़ दूँगी। क्यों, क्या कहता है, बोल ?

पाँड़े—देखो वह आदमी तुम्हारा भाई नहीं है, कोई बड़ा आदमी जान पड़ता है, उसका यहाँ क्या काम है, यह मुझे मालूम नहीं और यह मालूम करनेकी मुझे कोई आवश्यकता भी नहीं है। शायद वह अन्दर महलकी खबरदारी के लिए आता होगा। पर तो भी जब वह छिपकर आता-जाता है, तब हम लोगोंको कुछ मिलना चाहिये। तुमको कुछ जरूर मिला होगा। उसमेंसे आधा मुझको दे दो, तो मैं कुछ न कहूँगा।

मुरला—उसने अबतक मुझे कुछ नहीं दिया है। देगा तो तुम्हें भी कुछ दूँगी।

पांड़े— आधा आधा-बाँट लेना।

मुरलाने सोचा यह सलाह तो अच्छी है। रानीसे तो गहने-कपड़े वह पा चुकी है। परन्तु गंगारामसे उसने कभी कुछ नहीं पाया है, इसलिए बुद्धि दौड़ाकर उसने पांड़ेजीसे कहा—

अच्छा अब जिस दिन वह आवे तुम उसे जाने न देना। मेरे कहनेपर भी न छोड़ना, ऐसा करनेसे कुछ वसूल हो जायगा।

इसके बाद जिस रातको गंगाराम अंतः पुरमें जानेके लिये आया, उस दिन पांड़ेजीने उसे भीतर जाने नहीं दिया। मुरलाने बहुत कुछ कहा-सुना, अन्तमें बहुत विनती भी की, पर उसने एक भी न सुनी। गङ्गारामने मुरलासे परामर्श किया कि पांड़ेसे अपना परिचय दे दूँ। जब वह जान जायगा कि मैं नगर-रक्षक हूँ, तब वह कोई आपत्ति न करेगा। यह सुन मुरलाने कहा—आपत्ति तो न करेगा, परन्तु चारो ओर वह बात फैला देगा। और जब यह बात चारो ओर फैल जायगी कि मेरा भाई रोज अन्दर महलमें आता-जाता है तो सब दोष

मेरे ही सिर आ जायगा। बात ठीक समझकर गङ्गारामने मान ली। पर फिर गङ्गारामने सोचा कि इसे यहीं खपाकर क्यों न भीतर चला जाऊँ? पर उसमें और भी बखेड़ा होगा। शायद यह मार्ग ही सदाके लिये बन्द हो जाय। इन बातोंका विचार करके रुक गया। पाँड़ेजीने उसे किसी प्रकार भी जाने न दिया और उस दिन उसे अपने घर लौट जाना पड़ा।

मुरला जब अकेली लौट आई, तब रानीने उससे पूछा—वह क्या आज नहीं आवेंगे?

मुरला—वह तो आये थे, पर पहरेदारने उन्हें भीतर आने नहीं दिया।

रानी—रोज तो उन्हें आने देता था। फिर आज क्यों नहीं आने दिया?

मुरला—उसके मनमें कुछ सन्देह हो गया है।

रानी—कैसा सन्देह?

मुरला—आप उसे सुनकर क्या करेंगी? वह सब बातें आपके सामने हम लोग मुँहसे नहीं निकाल सकतीं। हाँ कहिये तो कुछ देकर उसे बसमें कर लूँ।

जो अपवित्र हैं वह पवित्रको भी अपनी ही तरह समझकर काम करते हैं; वह नहीं जानते कि संसारमें पवित्र मनुष्य भी हैं, इसलिये उनका काम नष्ट हो जाता है। मुरलाकी बातें सुनकर रमाकी देहसे पसीना छूटने लगा, वह काँपने लगी और बैठ गई। बैठनेकी भी शक्ति उसमें उस समय नहीं थी, इसलिये पलँगपर लेटकर अचेत होगई। इन बातोंपर रमाका ध्यान एक दिन भी नहीं गया था। दूसरा कोई होता तो उसे इन बातोंका ध्यान हो सकता था, पर रमा तो पहिले हीसे इतना डर गई थी कि उस ओर उसे ध्यान देनेका अवसर

ही न मिला। इस समय एकाएक मुरलाकी यह बात उसके हृदयमें वज्रकी तरह लगी। उसने सोचा, भीतरी बात चाहे जो कुछ हो, पर बाहरसे तो यह बात ठीक जान पड़ती होगी। उसने अपने मनमें विचारकर देखा कि मुझसे बड़ा अपराध हो गया है। यद्यपि रमाकी बुद्धि मोटी थी तो भी स्त्रियोंको—विशेषतः हिन्दू स्त्रियोंको—एक प्रकारकी बुद्धि होती है, जिसके उदय होनेसे ही यह सब बातें उन्हें साफ-साफ दिखाई पड़ने लगतीं हैं। जितनी बातें अबतक हुईं थीं, उन्हें रमाने विचारकर देखा—अन्तमें उसने यही समझा कि मुझसे भारी अपराध होगया है। तब रमाने विचार किया कि, विष खाकर या गलेमें छूरी मारकर मर जाऊँगी। सोच-विचारकर उसने निश्चित किया कि मेरे लिये मरजाना ही उचित है, ऐसा करनेसे सब बखेड़ा छूट जायगा। मुसलमानोंका भय भी दूर होजायगा। परन्तु बालकका क्या होगा? अन्तमें रमाने निश्चित किया कि राजाके आनेपर मैं अपना प्राण दे दूँगी। वह आकर मेरे बालकका उचित प्रबन्ध करेंगे-पर तबतक क्या मुसलमानों के हाथसे बचूंगी? मुसलमानोंके हाथसे तो निश्चय ही न बचूँगी, पर गंगारामको अब मैं कभी न बुलाऊँगी और न उसके पास किसीको भेजूँगी। इसलिये रमाने फिर गंगाराम के पास किसी को नहीं भेजा।

मुरला अब नहीं आती, रमा अब उसे नहीं बुलाती, यह सोचकर गंगाराम चंचल हो उठा। उसका खाना-पीना छूट गया। गंगाराम मुरलाकी खोजमें फिरने लगा। परन्तु मुरला राजमहलकी दासी थी—वह मार्गोंमें घूमती नहीं, केवल रानी की आज्ञासे गंगारामको खोजनेके लिये वह उसदिन निकली थी। गंगारामने मुरलाका कोई पता नहीं पाया। अन्तमें उसने

स्वयं किसीको दूती बनाकर मुरलाके पास उसको बुलानेके लिये भेजा। रमाके पास भेजनेका उसे साहस न हुआ।

मुरला आई। उसने पूछा—मुझे क्यों बुलाया है?

गंगाराम-आजकल कोई खोज-खबर लेने क्यों नहीं आती?

मुरला—पूछनेसे तो तुम कोई खबर बतलाते नहीं। हम-लोगोंपर तो तुम्हारा विश्वास नहीं है?

गंगाराम—हाँ, पर मैं भी तो जाकर समाचार दे आ सकता हूँ।

मुरला—उससे जो फल निकलता, तुम्हारे न जानेसे उसका अठगुना निकल आया।

गंगाराम—वह कैसे?

मुरला—छोटी रानी अब अच्छी होगयी हैं।

गंगाराम—क्यों, उन्हें क्या हुआ था, जो अच्छी हो गयीं?

मुरला—तुम क्या नहीं जानते कि क्या हुआ था?

गंगाराम—नहीं।

मुरला—क्या देखा नहीं था कि उन्हें एक तरहसे पागल-पनका रोग होगया था?

गंगाराम—सो कैसे?

मुरला—ऐसा न होता तो क्या तुम अन्दर महलमें ढुक सकते थे?

गंगाराम—क्यों, मैं कैसा हूँ?

मुरला—तुम क्या वहाँ के योग्य हो?

गंगाराम—तब मैं कहाँके योग्य हूँ?

मुरला—इसी फटे अंचलके। बापके घर पहुँचाना हो तो मुझे ले चलो। बहुत दिनोंसे मैंने अपने मा-बापको नहीं देखा है।

यह कहकर मुरला हँसती हुई वहाँसे चली गयी। गङ्गा-

रामने समझा कि इससे कोई आशा नहीं है। पर आशा न होनेसे भी क्या मन मानता है? जबतक पाप करनेकी शक्ति रहती है, तबतक जिसका मन पाप में लगगया है, उसे कुछ न कुछ आशा बनी रहती है। गंगारामने मनही मन संकल्प किया कि पृथ्वीमें जितने पाप हैं उन सबको भी करना पड़े तो भी रमाको मैं न छोड़ूँगा। यह संकल्प करके कृतघ्न गङ्गाराम अपने घर लौटा। उस रातको सोच-सोचकर उसने रमा और सीताराम के सर्वनाशका उपाय निश्चित किया।

आठवाँ परिच्छेद

बहुत दिनोंके बाद श्री और जयन्ती विरूपा नदीके किनारे ललितगिरिके उपत्यकापर आई हैं। पाठकोंको स्मरण होगा कि स्वामीजीने उन्हे एक वर्ष बाद आनेके लिये कहा था। इसीसे दोनों आज आई हैं।

स्वामीजीने केवल जयन्तीसे भेंट की—श्रीसे नहीं। जयन्ती अकेली हस्ती गुफामें गयी—तब तक श्री विरूपाके किनारे घूमने लगी। उसके बाद पर्वत-शिखरपर चढ़, एक चन्दन वृक्षके नीचे बैठकर, नदी-तीरके एक ताल वनकी अपूर्व शोभा देखने लगी। थोड़ी ही देरमें जयन्ती लौट आई। स्वामीजीने क्या आज्ञा दी, जयन्तीसे यह न पूछकर श्रीने कहा—इस पक्षीका कैसा मीठा शब्द है, कान तृप्त हो गये!

जयन्ती—क्या पतिके कंठ-स्वरके बराबर है?

श्री—नहीं। इस नदीके कलकल ध्वनिकी तरह।

जयन्ती—तब पतिके कंठस्वरकी तरह क्या है?

स्त्री—बहुत दिनोंसे मैंने पतिका कंठ-स्वर नहीं सुना है, इसलिये उसकी याद मुझे नहीं है।

हाय ! सीताराम !

जयन्ती यह जानती थी, इसकी याद दिलानेके ही लिये उसने पूछा था।

जयन्ती—अब उसे यदि सुनो तो क्या अच्छा न लगेगा ?

श्री चुप हो गयी। कुछ देर बाद, सिर उठाकर उसने जयन्तीकी ओर देखा, और पूछा—क्यों स्वामीजीने क्या मुझे पति-दर्शनके लिये जानेकी आज्ञा दी है।

जयन्ती—तुम्हें तो जाना ही होगा, साथ ही मुझे भी तुम्हारे साथ जानेकी आज्ञा उन्होंने दी है।

श्री—क्यों ?

जयन्ती—वह कहते हैं, ऐसा करनेसे शुभ होगा।

श्री—पर अब मुझे शुभाशुभ और सुख-दुःखसे क्या मतलब, बहिन ?

जयन्ती—तुम अबतक समझ न सकी, श्री ? तुम्हें अब भी मुझे समझाना होगा ?

श्री—नहीं, मैं अभी समझ नहीं सकी।

जयन्ती—तुम्हारे शुभाशुभके लिये स्वामीजीने यह आज्ञा नहीं दी है, अपना स्वार्थ खोजनेके लिये वह किसीको आज्ञा नहीं देते। इसमें तुम्हा शुभाशुभ कुछ नहीं है।

श्री—मैं समझ गयी, मेरे जानेसे मेरे पतिकी भलाईकी सम्भावना है।

जयन्ती—स्वामीजीने कुछ स्पष्ट नहीं बतलाया है। इतना मुझे समझाकर वह नहीं कहते, यही तो इनमें दोष है, हम लोगोंके यह क्षणिक बात-चीत भी करना नहीं चाहते। पर उनकी

बातोंका तात्पर्य्य यही है, यह मैं जान गई। और तुम भी मेरे निकट इतने दिनों तक जो कुछ सुना या सीखा है उससे, यह समझ सकती हो।

श्री—पर तुम क्यों चलोगी ?

जयन्ती—उन्होंने यह मुझसे कुछ नहीं कहा। उन्होंने केवल मुझे आज्ञा दी है और इसीलिये मैं चलती हूँ। तुम चलोगी या नहीं ?

श्री—मैं यही सोच रही हूँ।

जयन्ती—तुम सोचती क्यों हो ? क्या वही 'प्रिय-हंत्री' वाली बात याद आगयी है।

श्री—नहीं, अब मुझे उसका कुछ डर नहीं है ?

जयन्ती—क्यों, डर क्यों नहीं है ? मुझे समझाओ। उसे समझकर तब मैं तुम्हारे साथ जानेका निश्चय करूँगी।

श्री—मैंने अब सोच लिया है कि कोई किसीको मार नहीं सकता, मारनेवाला केवल ईश्वर है जिसे मारना चाहता है पहलेसे ही उसे मार रखता है। संसारमें सभी मरे हैं। मेरे हाथसे हो या दूसरेके हाथसे, वे एक न एक दिन मरेंगे ही। मैं कभी इच्छापूर्वक उनकी हत्या न करूँगी, पर जो संसारके नियंता हैं उनकी यदि यही इच्छा हो कि मेरे ही हाथसे उनकी संसार-यंत्रणा छूट जाय तो फिर किसकी सामर्थ्य है कि उसके विरुद्ध चल सके ? मैं चाहे वनोंमें घूमूँ, और चाहे समुद्रपार जाऊँ, किन्तु मुझे चलना पड़ेगा उनके ही आज्ञाके अनुसार। मैं स्वयं सावधान होकर धर्मानुसार आचरण करूँगी—उसमें यदि उन्हें कोई विपत्ति तो उसके लिये मुझे कोई सुख-दुःख नहीं है। हा ! हा ! सीताराम ! किसके लिये तुम इधर-उधर भटक रहे हो ?

जयन्ती मन ही मन बड़ी प्रसन्न हुई। उसने पूछा—तब सोचती क्या हो?

श्री—सोचती हूँ कि मेरे जाने पर वह यदि मुझे न छोड़ें तो।

जयन्ती—यदि जन्म लग्नका कोई डर नहीं है, तो उनके न छोड़नेसे तुम्हारी क्या हानि है?

श्री—मैं क्या अब राजाके बाईं ओर बैठने योग्य हूँ?

जयन्ती—हजार बार। जब मैंने तुम्हें सुवर्ण रेखाके किनारे और वैतरणी के तीरपर पहले पहल देखा था, तब से तुम्हारा रूप न जाने कितना बढ़ गया है उसे तुम नहीं जानती।

श्री—छिः।

जयन्ती—और गुण भी कितना बढ़ा है, उसे भी क्या जानती हो? कौन राजमहिषी गुणमें तुम्हारे बराबर होगी?

श्री—मेरी बात तुमने नहीं समझी। मैं कह रही थी कि जिस श्रीको लौटानेके लिये वह पुकार रहे थे, वह श्री तो अब नहीं है—तुम्हारे हाथ उसकी मृत्यु हो गयी। अब जो है वह केवल तुम्हारी शिष्या है। तुम्हारी शिष्याको लेकर महाराजाधिराज सीतारामराय क्या सुखी होंगे? तुम्हारी शिष्या भी क्या महाराजाधिराजको लेकर सुखी होगी? राजरानी बननेकी नौकरी तुम्हारी शिष्याके योग्य नहीं है।

जयन्ती—फिर मेरी शिष्याके लिये दुःख कैसा? (फिर हँसकर) धिक्कार है ऐसी शिष्याको!

श्री—मुझे सुख दुख नहीं है परन्तु उनको तो है। जब वह देखेंगे कि उनकी श्री मर गयी है और उसकी देहमें एक संन्यासिनी प्रवेश करके घूम रही है तब क्या उन्हें दुख न होगा?

जयन्ती—हो सकता है, और नहीं भी हो सकता है। इन सब बातोंके विचार करनेका कोई प्रयोजन नहीं है। जिसने सर्वांग सुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रके चरण-कमलोंमें मन लगाया है, उसके चित्तमें दूसरी बातोंका ध्यान न होनेसे ही सब काम ठीक हो जायगा। अब चलो, तुम्हारे स्वामीका हो अथवा किसीका हो, जब उसकी शुभ-कामना करनी है, तो इसी समय प्रस्थान करना उचित है। जबतक यह बातें हो रहीं थीं, तबतक जयन्तीके हाथमें दो त्रिशूल थे।

श्रीने पूछा—यह त्रिशूल क्यों लाई हो ?

जयन्ती—स्वामीजीने हम लोगोंको भैरवी वेषमें वहाँ जानेकी आज्ञा दी है। और यह दोनों त्रिशूल दिये हैं। जान पड़ता है, त्रिशूल मन्त्रसे सिद्ध किये हुए हैं *।

तब दोनों भैरवी वेष धारणकर पर्वतसे नीचे उतरीं, और विरूपाके किनारे-किनारे गङ्गाकी ओर चलीं। मार्गमें दोनों वनोंसे जङ्गली फूल तोड़कर उनके दल, केशर, रेणु आदिकी परीक्षा करती हुईं और फूलोंके बनानेवालेकी अनन्त महिमाका वर्णन करती हुईं आगे चलीं। सीतारामका नाम फिर उन्होंने नहीं लिया। इन अभागिनियोंको ईश्वरने इतना रूप-यौवन क्यों दिया था यह वही जान सकते हैं, जो महामूर्ख सीताराम 'श्री ! श्री !' करके उसे देशके कोने-कोने खोज रहा है वही कह सकता है। पाठक तो शायद दोनोंको ही चुड़ैलकी श्रेणीमें समझेंगे। इसमें ग्रन्थकार भी उनसे पूर्ण सहमत है।

---
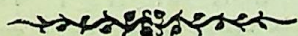
* आधुनिक भाषामें "Magnatised" कहते हैं।

नवाँ परिच्छेद

बन्देअली नामके एक साधारण मुसलमानने भूषणाके रहने-वाले एक बड़े घरानेके मुसलमानकी स्त्रीको घरसे निकालकर उसके साथ अपना निकाह कर लिया था। उसके पतिने आ-कर बलपूर्वक अपहरण की हुई सीताके उद्धारके लिये उद्योग करना शुरू किया। इसपर उसका मित्र अपनी नवीन स्त्रीको लेकर महम्मदपुर भाग आया और वहीं रहने लगा। गंगाराम-से उसका पहलेसे ही परिचय था। उसके अनुग्रहसे वह सीतारामकी नगर-रक्षक सेना में भर्ती हो गया। गंगरामका उसपर बहुत बड़ा विश्वास था। उसने उसे गुप्त रूपसे तोराब-खाँके पास भेजा, और कहला भेजा कि, चन्द्रचूड़ धोखेबाज़ हैं, चन्द्रचूड़ जो यह कह रहे हैं कि, रुपये देनेसे मैं महम्मद-पुर तुम्हारे हाथ सौंप दूँगा, यह केवल उनकी चालाकी है। धोखा देकर समय बिताना ही उनका उद्देश्य है। वह चाहते हैं कि सीताराम आ पहुँचे। नगर भी उनके हाथमें नहीं है। वह यदि चाहें तो भी नगर आपको नहीं दे सकते, क्योंकि नगर मेरे हाथमें है। जबतक मैं न दूँ नगर कोई नहीं पा सकता। स्वयं सीताराम भी नहीं पा सकते। मैं मय फौज नगर सौंप दे सकता हूँ, परन्तु उसके लिये मैं फौजदार साहब-से स्वयं बात-चीत करना चाहता हूँ। परंतु मैं तो फरारी असामी हूँ—प्राणोंके डरसे आपके पास आनेका साहस नहीं कर सकता। यदि आप अभयदान दें, तो मैं आपके पास आ सकता हूँ।

गङ्गारामके सौभाग्यसे बन्देअलीकी बहिन इस समय तोराबखाँकी एक रखनी बेगम थी। इसलिये फौजदारसे मिलनेमें बन्देअलीको कुछ भी कठिनाई न हुई। बातचीत सब ठीक हो गयी। गङ्गारामको माफीका परवाना मिल गया।

तोराबखाँने स्वयं अपने हाथसे यह पत्र लिख दिया—

"तुम्हारा सब कसूर माफ किया गया। कल रातको हुजूर-में हाजिर हो।"

बन्देअली भूषणासे लौटकर जिस नावसे नदी पारकर रहा था, उसी नावमें चाँदशाह फकीर भी आ रहे थे। फकीर-ने बन्देअलीसे बातचीत की। फकीरने पूछा—तुम कहाँ गये थे? बन्देअलीने उतर दिया—मैं भूषणा गया था। फकीरने भूषणाकी खबर पूछी। बन्देअली फौजदारसे मिल आया था, इसलिये उसका मिजाज इस समय कुछ ऊँचे पर था। भूषणा-की खबर कहते-कहते उसने कोतवाल, बख्शी, मुंशी, कारकून, पेशकारसे लेकर फौजदार तककी खबर कह डाली। फकीर विस्मित हो गया। वह सीतारामका हितैषी है। उसने मन ही मन निश्चित किया कि मुझे इसकी कुछ खोज रखनी होगी।

दसवाँ परिच्छेद

गङ्गारामने फौजदारके साथ एकान्तमें भेंट की। फौजदारने उसे किसी प्रकारका डर नहीं दिखाया। कामकी सब बातें तै हो गयीं। फौजदारकी सेना जब महम्मदपुरमें किलेके फाटकपर पहुँचेगी, तब गङ्गाराम किलेका फाटक खोल देगा, यह निश्चित हो गया। परन्तु फौजदारने कहा—

किलेके फाटक पर पहुँचनेसे तो तुम हम लोगोंके लिये

फाटक खोल दोगे। परन्तु मृण्मयके अधिकारमें जो इस समय बहुत सी फौज है, वह राहमें, खास करके नदी पार करते समय, लड़ाई जरूर करेंगे। लड़ाईमें हार-जीत दोनों हो सकती है। यदि लड़ाईमें हम लोगोंकी जीत हुई तो तुम्हारी मददके बिना भी हम लोग किलेपर कबजा कर सकते हैं। पर यदि हार हुई तो तुम्हारी मददसे भी हम लोगोंको कोई फायदा न होगा। इसके लिये तुमने क्या विचार किया है?

गङ्गाराम—भूषणासे महम्मदपुर जानेका दो रास्ता है। एक उत्तरसे, दूसरा दक्षिणसे। दक्षिणके रास्ते बहुत दूरसे नदी पार करना पड़ता है, पर उत्तरके रास्ते किलेके सामनेसे ही नदी पार करना पड़ता है। आप महम्मदपुर चढ़ाई करनेके लिये दक्षिणके रास्तेसे फौज ले जाइयेगा। मृण्मय इसपर विश्वास कर लेगा, क्योंकि किलेके सामनेसे नदी पार करना कठिन और असंभव है। इसलिए वह भी सेना लेकर दक्षिणके रास्तेसे आपके साथ युद्ध करने जायँगे। आप उसी समय सेना लेकर उत्तरके रास्तेसे किलेके सामने नदी पार कीजियेगा। उस समय किलेमें फाज न रहेगी और यदि रहेगी भी तो बहुत थोड़ी। इसलिये आप सहजमें ही नदी पार करके खुले रास्तेसे किलेमें प्रवेश कर सकेंगे।

फौजदार—पर यदि मृण्मय दक्षिणकी ओर जाते समय यह सुन लेगा कि हम उत्तरसे फौज लेकर आ रहे हैं, तो वह वहाँसे लौट सकता है।

गङ्गाराम—आधी फौज दक्षिणकी ओर और आधी उत्तरकी ओर भेजें। उत्तरकी ओर जो सेना भेजें, उसका पता किसीको न चले। वह फौज रातको रवाना करके नदी तीरसे कुछ दूर जङ्गलमें छिपा रखियेगा। उसके बाद मृण्मय जब अपनी फौज

लेकर कुछ दूर चला जाय, तब आप बेखटके नदी पार कर सकते हैं। उस समय मृण्मयकी फौज आपके उत्तर और दक्षिणवाली फौजके बीचमें पड़कर नष्ट हो जायगी।

फौजदार यह सलाह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। वह ऐसा करनेके लिये सहमत हो गये। उन्होंने कहा—अच्छी बात है। तुम हम लोगोंके खैरख्वाह जान पड़ते हो। किसी इनामके ख्वाहिशसें ही ऐसा कर रहे हो, इसमें शक नहीं! कौनसा इनाम तुम चाहते हो?

गङ्गारामने अपना अभीष्ट पुरस्कार माँगा—कहनेकी आवश्यकता नहीं, वह इनाम रमा थी।

गङ्गाराम सन्तुष्ट होकर वहाँसे बिदा हुए और उसी रातको वह महम्मदपुर लौट आये।

गङ्गाराम नहीं जानता था कि चाँदशाह फकीर उसके पीछे लगे हैं।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

सन्ध्या-समय गुप्तचरने आकर चन्द्रचूड़को खबर दी कि फौजदारकी फौज दक्षिणकी राहसे महम्मदपुरपर चढ़ाई करने आ रही है।

तब चन्द्रचूड़ मृण्मय और गङ्गारामको बुलाकर सलाह करने लगे। निश्चित हुआ कि मृण्मय फौज लेकर इसी समय दक्षिणकी ओर चले जायँ, जिसमें मुसलमानी सेना नदी पार न कर सके।

इधर लड़ाईकी धूम मच गयी। मृण्मय पहले से ही तैयार थे, वह सेना लेकर उसी रातको दक्षिणकी ओर चले गये।

किलेकी रक्षाके लिये थोड़ी सी फौज छोड़ गये। वह फौज गङ्गारामके अधीन रही।

इन सब गड़बड़ी के समय पाठकोंको क्या विचारी रमा· की याद आती है ? सबके पास मुसलमानोंके आनेकी खबर जिस प्रकार पहुँची, उसी प्रकार रमाके पास भी पहुँच गयी। मुरलाने कहा—महारानी ! इस समय पिताके घर जानेका प्रबन्ध करो।

रमा—मरना होगा तो यहीं मरूँगी। कलंकके मार्गमें न जाऊँगी। परन्तु तुम एक बार गङ्गारामके पास जाओ। मैं मरूँगी तो यहीं मरूँगी, परन्तु मेरे बालककी रक्षा करनेकी याद उन्हें दिला दो। समयपर आकर वह इसकी रक्षा करें। मेरे साथ किसी भी प्रकार वह भेंट न कर सकेंगे, यह भी कह देना।

रमा मन बहलानेके लिये नन्दाके पास जाकर बैठ गयी। नगरमें कोई भी उस रातको सोया नहीं।

मुरला, आज्ञा पाकर, गंगाराम के पास चली। गङ्गाराम आधीरातको अपने घरमें अकेला बैठा घोर चिन्तामें निमग्न था। रत्नकी आशासे समुद्रमें कूदनेके लिये तो वह तैयार हो गया है, पर तैरकर फिर क्या वह किनारे पर पहुँच सकेगा ? गंगाराम साहस करके भी इन बातोंका कुछ निर्णय नहीं कर सकता था। जो सोच-विचार कर भी कुछ निर्णय नहीं कर सकता, उसके लिये अंतिम आशा और भरोसा ईश्वरका रहता है। वह कहता है ईश्वर जो करेंगे वह होगा—

"होइहै वही जो राम रुचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावहिं शाखा॥"

परन्तु गङ्गाराम तो यह भी नहीं कह सकता था, क्योंकि

जो पापमें लगा रहता है वह जानता है कि, ईश्वर उसके विरुद्ध है, जगत-बन्धु उसके शत्रु हैं। इसलिये गङ्गाराम बड़ा ही उदास और चिन्तासे व्याकुल हो रहा था।

इसी समय मुरलाने आकर उससे रमाका भेजा हुआ सन्देशा कहा।

गङ्गाराम ने उत्तर दिया—कहें तो इसी समय जाकर मैं बालकको ले आऊँ।

मुरला—यह नहीं हो सकता। जब मुसलमान नगरमें प्रवेश करें, तब आप जाकर उसकी रक्षा कीजियेगा, रानीका यही अभिप्राय है।

गङ्गाराम—उस समय क्या होगा, यह कौन कह सकता है? यदि रक्षा करानेका अभिप्राय हो तो इसी समय बालकको मुझे देदें।

मुरला—मैं उसे यहाँ ले आऊँगी।

गङ्गाराम—नहीं, मुझे और भी बहुतसी बातें रानीसे कहनी हैं।

मुरला—अच्छा, पौष महीनेमें।

यह कहकर मुरला हँसती हुई वहाँ से चली गयी। परन्तु गङ्गारामके घरसे निकल वह ज्योंही रास्तेमें आई, त्योंही उसकी हँसी एकाएक गायब हो गई, मारे डरके उसका मुँह स्याह हो गया। उसने देखा कि सामने रास्तेमें प्रातःकालके शुक्र तारा-की तरह उज्ज्वल त्रिशूल-धारिणी दो भैरवीकी मूर्तियाँ आ रही हैं! मुरलाने उन्हें पार्वतीकी सहचरी जानकर साष्टांग दंडवत किया और हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी।

उनमेंसे एक भैरवीने कहा—तू कौन है?

मुरलाने कातर स्वरसे उत्तर दिया—मैं मुरला हूँ।

भैरवी—मुरला कौन ?

मुरला—मैं छोटी रानीकी दासी हूँ।

भैरवी—नगर-रक्षकके घरमें इतनी रातको क्या करने आई थी ?

मुरला—महारानीने भेजा था।

भैरवी—सामने यह देवालय देख रही है न ?

मुरला—जी हाँ।

भैरवी—हमारे साथ वहाँ चल।

मुरला—जो आज्ञा।

तब वे मुरलाको दोनों त्रिशूलोंके बीचमें करके मन्दिरमें ले गयीं।

बारहवाँ परिच्छेद

चन्द्रचूड़ तर्कालंकारको उस दिन रातको नींद नहीं आई। सारी रात नगरमें घूम-घूमकर उन्होंने देखा कि नगर-रक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं है। जब उन्होंने गङ्गारामसे इसके विषयमें पूछा, तब उसने ऊटपटाँग उत्तर देकर उन्हें विदा कर दिया। तब अत्यन्त दुःखी होकर कुशासनपर बैठकर विपत्ति-भंजन मधुसूदनका ध्यान करने लगे। उसी समय चाँदशाह फकीरने आकर, गङ्गारामका भूषणा नगरीमें जानेका वृत्तान्त उनसे कहा, जिसे सुनकर चन्द्रचूड़ घबड़ा गये। कभी सोचते थे कि कुछ सिपाहियोंको साथ लेकर गङ्गारामको बन्दी करलें और नगर-रक्षाका भार किसी अन्यको दे दें, परन्तु उसमें बाधा यह थी कि सिपाही उनके कहनेमें नहीं थे। इसलिये उन्होंने सोचा कि ऐसा करना उचित नहीं है। इस समय यदि मृणमय होता तो यह सब

बखेड़ा न करना पड़ता, क्योंकि सब सिपाही उसके अधीन थे। मृण्मयको बाहर भेजकर उन्होंने स्वयं सर्वनाश उपस्थित किया है। यह सब सोचकर चिन्तासे व्याकुल होकर वह भगवान मधुसूदनका ध्यान करने लगे। जिस समय एकाग्र-चित्तसे ध्यान कर रहे थे, उसी समय सहसा सामने प्रफुल्ल-कांति त्रिशूलधारिणी एक भैरवीको देख विस्मित होकर उन्होंने पूछा—माता ! तुम कौन हो ?

भैरवी—बाबा ! शत्रु निकट आ गये हैं, तिसपर भी इस नगरकी रक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं हो रहा है, इसका क्या कारण है ? मैं तुमसे यही पूछने आई हूँ।

यह वही भैरवी थी, जिसने मुरलाके साथ बातचीत की थी। इसका नाम जयन्ती था।

उपर्युक्त प्रश्न सुनकर चन्द्रचूड़ और भी विस्मित हुए। उन्होंने पूछा—माता ! क्या तुम इस नगरकी राजलक्ष्मी हो ?

जयन्ती—मैं चाहे जो होऊँ, मेरे प्रश्नका उत्तर दो, अन्यथा कुशल नहीं होगी।

चन्द्रचूड़—माता ! इस समय मेरी सामर्थ्य नहीं है कि इस नगरकी रक्षा कर सकूँ। राजाने नगर-रक्षकको इस नगरीके रक्षाका भार दिया था, परन्तु वह विश्वासघात कर रहा है। सेना मेरे वशमें नहीं है, मैं क्या करूँ, जो आज्ञा हो वह करूँ।

जयन्ती—नगर-रक्षकके विषयमें आपने कौनसी विश्वास-घातकताकी बात सुनी है ?

चन्द्रचूड़—वह तोराबखाँके पास गया था। जान पड़ता है कि वह युद्धके बिना ही शत्रुको नगर सौंप देगा। मैंने अपनी दुर्बुद्धिके कारण पहलेसे कुछ उपाय न किया। माता ! जान

पड़ता है कि आप इस नगरकी राजलक्ष्मी हो, इसीलिये दया करके आपने इस दासको भैरवी-रूप धारण करके दर्शन दिया है। माता! आप महातेजस्विनी हैं, आप ही इस नगरीकी रक्षा करें।

यह कहकर चन्द्रचूड़ने हाथ जोड़कर भक्ति-भावसे जयन्तीको प्रणाम किया।

"अच्छा मैं ही इस नगरीकी रक्षा करूँगी।" यह कहकर जयन्ती वहांसे चली गयी। चन्द्रचूड़के मनमें कुछ ढाढ़स हुआ।

जयन्तीको आशासे अधिक सफलता मिली। श्री बाहर खड़ी थी। उसको साथ लेकर जयन्ती गंगारामके घरकी ओर चली।

तेरहवाँ परिच्छेद

मुरलाके चले जानेपर गंगारामको चारो ओर और भी अधिक अन्धकार दिखाई देने लगा। जिसके लिये वह इस विपत्ति-सागरमें कूद रहा था वह तो उसपर आसक्त नहीं है। वह आँख मूँदकर समुद्रमें जिस रत्नको खोजनेके लिये कूद रहा है, वह क्या उसके हाथ लगेगा, अथवा केवल डूब ही मरना होगा? अन्धकार! चारों ओर अन्धकार ही है!! इस समय कौन उसका उद्धार करे?

सहसा गंगारामका शरीर रोमाँचित हो उठा। उन्होंने देखा कि द्वारपर प्रभात नक्षत्रोज्ज्वल-रूपिणी त्रिशूल-धारिणी एक भैरवी मूर्ति खड़ी है। उसके अंग-प्रभासे घरके दीपककी ज्योति म्लान हो गयी है। ऐसा जान पड़ा कि साक्षात भवानी इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुई हैं। गङ्गाराम भी मुरलाकी तरह

सीताराम

मैं जो कुछ माँगती हूँ उसे इसी समय मुझे दो, अन्यथा इसी त्रिशूल से तुम्हारा वध करूँगी। पृष्ठ १०७

हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा हो गया। उसने कहा—माता! इस दासके प्रति क्या आज्ञा है?

जयन्ती—वत्स! मैं तुम्हारे पास कुछ भिक्षा माँगने आई हूँ।

गङ्गाराम—माता। आपकी जो इच्छा हो माँगे।

जयन्ती—मुझे एक गाड़ी गोला-बारूद और एक अच्छा गोलन्दाज दो।

गङ्गाराम यह सुनकर इधर-उधर करने लगा। मनमें सोचा कि यह कौन है? फिर पूछा कि—माता! आप गोला-बारूद लेकर क्या करेंगी?

जयन्ती—देवताके लिये आवश्यकता है।

गङ्गारामके मनमें बड़ा सन्देह हुआ कि यदि यह कोई देवी है तो इसको गोला-बारूदकी क्या आवश्यकता है? और यदि मानवी है तो इसको मैं गोला-बारूद क्यों दूँ? किसीकी ओरसे यह भेद लेने तो नहीं आई है? यह सोचकर गङ्गारामने पूछा—माता! तुम कौन हो?

जयन्ती—मैं चाहे जो होऊँ, परन्तु रमा और मुरलाके संबन्धकी सब बातें मैं जानती हूँ। इसके अतिरिक्त तुम्हारा भूषणा नगरीमें जाना और वहाँ जो कुछ तुमने बातचीत की है, वह सब भी मैं जानती हूँ। मैं जो कुछ माँगती हूँ उसे इसी समय मुझे दो, अन्यथा इसी त्रिशूलसे तुम्हारा वध करूँगी।

यह कहकर वह तेजस्विनी भैरवीने अपने चमकते हुये त्रिशूलको उठाकर घुमाना आरम्भ किया।

गङ्गाराम यह देखकर डरगया। "आइये, देता हूँ।" कह कर भैरवी को लेकर अस्त्रागारकी ओर गया। जयन्तीने जो-जो माँगा उसने उसे सब देदिया और प्यारेलाल नामक एक गोलन्दाजको भी साथ कर दिया। जयन्तीको विदाकर गङ्गारामने

किलेके द्वारको बन्द रखनेकी आज्ञा दी और कहा कि बिना मेरी आज्ञाके कोई भी आने-जाने न पावे।

जयन्ती और श्री गोला-बारूद लेकर किलेके बाहर जहाँ राजमहलका घाट था, उपस्थित हुईं। वहाँ उन्होंने देखा कि एक विशालबाहु सुन्दर पुरुष बैठा है। दोनों भैरवियोंमेंसे एक बारूदकी गाड़ी और गोलन्दाजको साथ लेकर कुछ दूरी-पर खड़ी हो गयी और दूसरीने उस सुन्दर पुरुषके पास जाकर उससे पूछा—तुम कौन हो?

पुरुष—मैं कौन हूँ, यह जानकर तुम क्या करोगी, पर तुम्हीं बतलाओ कि तुम कौन हो?

जयन्ती—यदि तुम वीर पुरुष हो तो मैं गोला-बारूद ला देती हूँ और तुम इस नगरीकी रक्षा करो।

उस पुरुषने विस्मित हो जयन्तीको कोई देवी समझकर प्रणाम किया। कुछ देर सोचने के बाद एक दीर्घ निःश्वास लेकर पूछा—पर इससे लाभ क्या?

जयन्ती—तुम क्या चाहते हो?

पुरुष—मैं जो चाहता हूँ, वह क्या इस नगरकी रक्षा करने-से मिल जायगी?

जयन्ती—हाँ, मिल जायगी। यह कहकर जयन्ती अदृश्य होगयी।

चौदहवाँ परिच्छेद

मैं कह चुका हूँ कि चन्द्रचूड़को उस दिन रातभर नींद नहीं आई। बड़े तड़के वह राजमहलके खूब ऊँची अटारीपर चढ़कर चारो ओर देखने लगे। उन्होंने देखा कि नदीके उसपार ठीक उनके सामने बहुत सी नौकाएँ एकत्रित हैं। तीरपर बहुत से मनुष्य भी दिखाई पड़ते थे, परन्तु उस समय भलीभाँति प्रकाश न होनेके कारण यह नहीं जान पड़ता था कि वे कौन हैं। यह देखकर उन्होंने गङ्गारामको बुलानेके लिये आदमी भेजा।

गङ्गारामके आनेपर चन्द्रचूड़ने उससे पूछा कि, उसपार इतनी नौकायें कहाँसे आईं ?

गङ्गारामने उधर देखकर कहा—क्या जाने।

चन्द्रचूड़—देखो, तीरपर बहुतसे मनुष्य भी दिखाई पड़ते हैं, इतनी नौका और इतने लोग क्यों इकट्ठे हुये हैं ?

गङ्गाराम—यह तो मैं नहीं बतला सकता।

थोड़ी ही देरमें भलीभांति प्रकाश होगया। तब साफ दिखाई पड़ने लगा कि वह सब मनुष्य सैनिक हैं। यह देखकर चन्द्रचूड़ने पूछा—"गङ्गाराम! सर्वनाश हो रहा है। हमारे गुप्तचरने हमें धोखा दिया, अथवा उसे स्वयं धोखा हुआ है! हम लोगोंने दक्षिणकी ओर सेना भेजी है, किन्तु फौजदारकी सेना इसी मार्गसे आ गयी। अब सर्वनाश उपस्थित है। इस समय इस नगरकी रक्षा कौन करेगा ?

गङ्गाराम—क्यों, मैं यहाँ किस लिये हूँ ?

चन्द्रचूड़—तुम, इन थोड़ेसे दुर्ग-रक्षकोंको लेकर इस असंख्य सेनाका सामना कैसे करोगे ? और मैं तो देखता हूँ

कि तुम भी दुर्ग-रक्षाका कोई उपाय नहीं कर रहे हो। कल मैंने तुमसे कहा था, उस समय तुमने बहाली दे दिया था; किन्तु इस समय इस जिम्मेवारीको अपने सिर कौन ले ?

गङ्गाराम—आप इतना क्यों डरते हैं ? उसपार जो फौज आप देख रहे हैं, वह अधिक नहीं है। इन थोड़ी सी नौकाओं पर भला कितने सिपाही पार आ सकते हैं ? मैं सेना लेकर तीरपर जा खड़ा होता हूँ, वे ज्योंही इस पार आवेंगे त्योंही उनको मार गिराऊँगा।

गङ्गारामका अभिप्राय यह था कि पहले फौजदारकी सेना इस पार निर्विघ्न उतर आवे, तब उस समय मैं, अपनी सेनाके साथ, दुर्गका फाटक खोलकर दुर्गके बाहर चला जाऊँ, जिसमें द्वार खुला पाकर मुसलमानी सेना निर्विघ्न दुर्गमें प्रवेश कर सके।

कल जिस मूर्तिको गङ्गारामने देखा था वह कैसी भयङ्कर थी, परन्तु आज, उसका कुछ भी ध्यान नहीं रहा।

चन्द्रचूड़ उसका अभिप्राय समझ गये। तथापि उन्होंने कहा कि—तब शीघ्र ही जाओ। सेना लेकर दुर्गके बाहर जाओ, विलम्ब न करो। देखो, उस पारकी नौकायें सिपाहियों-को लेकर आ रही हैं।

तब गङ्गाराम शीघ्र ही छतसे उतरा। चन्द्रचूड़ने देखा कि, प्रायः पचास नौकाओंमें लगभग पाँच-छः सौ मुसलमानी सेना श्रेणीबद्ध होकर आरही हैं। वह चञ्चल होकर देखने लगे कि गङ्गाराम कब सेना लेकर बाहर जाता है। गङ्गारामके सिपाही कभी वर्दी पहनते थे, कभी घूमते थे और कभी पंक्तिबद्ध होकर खड़े होते थे, परन्तु बाहर नहीं निकलते थे। चन्द्रचूड़ने सोचा कि मैंने गङ्गारामपर विश्वास कर कितनी बड़ी भूल की है। अब तो सर्वनाश होना चाहता है। आज वह ज्योतिर्मयी मूर्ति

कहाँ है? वह राजलक्ष्मी कहाँ है? क्या उन्होंने भी मुझसे छल किया? यह सोचते-सोचते चन्द्रचूड़ गङ्गारामको खोजनेके लिये नीचे आ रहे थे कि इतनेमें ही धड़ामसे तोपकी आवाज हुई। जान पड़ता था कि यह आवाज मुसलमानोंकी नौकाओंसे नहीं हुई थी। क्योंकि उनके साथ तोप नहीं मालूम पड़ती थी। चन्द्रचूड़ने भलीभाँति देखा कि मुसलमानोंकी किसी भी नावसे तोपका धूँआँ नहीं उठ रहा है। विस्मित होकर उन्होंने देखा कि ज्योंही तोपकी आवाज हुई त्योंही मुसलमानोंकी एक नाव जलमें डूब गयी। नौकारोही सैनिक, तैरकर दूसरी नौकाओंपर चढ़नेकी चेष्टा करने लगे।

"तब क्या यह हमारी तोप है?" सोचकर चन्द्रचूड़ने देखा कि दुर्गसे तो एक भी सिपाही बाहर नहीं निकला। दुर्गपर जहाँ-जहाँ तोपें चढ़ी थीं वहाँ-वहाँपर एक भी मनुष्य नहीं दिखाई पड़ता था। तब इस तोपको छोड़ा किसने?

कहाँसे धूआँ उठ रहा है, यह जाननेके लिये चन्द्रचूड़ चारो ओर देखने लगे। उन्होंने देखा कि दुर्गके सामने, जहाँ राजमहलका घाट है वहींसे घूम-घूमकर, धूआँ आकाशमें उठ रहा है।

तब चंद्रचूड़को स्मरण हुआ कि घाटके ऊपर पेड़के नीचे एक तोप लगाई गई थी। इस तोपको सीतारामने वहाँ इसी लिये लगवाया था कि यदि कोई शत्रुकी नौका घाटपर आजाय तो इस तोपसे उसका विध्वंस कर दिया जाय। निःसंदेह कोई न कोई उसी तोपको अवश्य चला रहा है। परन्तु वह है कौन? गंगारामके तो एक भी सिपाही दुर्गके बाहर नहीं निकले, दुर्गका फाटक तो अबतक बन्द है और मृण्मयकी सेना तो बहुत दूर चली गयी है। यह भी सम्भव नहीं जान पड़ता है कि

मृण्मय किसी सिपाहीको इस तोपको छोड़नेके लिये नियुक्त कर जायँगे? क्योंकि दुर्ग-रक्षाका भार तो गंगारामपर है। कोई बाहरी आदमी आकर तोप छोड़ेगा यह भी संभव नहीं, क्योंकि वह गोला-बारूद कहाँसे पावेगा? और ऐसा अचूक निशाना साधारण मनुष्य लगा कैसे सकता है? तब यह कौन है? चंद्रचूड़ इसी प्रकार मनही मन तर्क-वितर्क कर रहे थे कि इतनेमें ही फिर तोपका वज्र-निनाद चारो ओर गूँज उठा—फिर ढेरका ढेर धूआँ आकाशमें दिखाई पड़ने लगा, मुसलमान सिपाहियोंसे परिपूर्ण एक नाव नदीमें डूब गयी।

धन्य! धन्य!! कहकर चन्द्रचूड़ मारे हर्षके उछलने लगे। निश्चय यह वही महादेवी है। जान पड़ता है कालिका सदय होकर इस नगरीमें अवतीर्ण हुई हैं। जय दुर्गा! जय महाकाली!! जय राजलक्ष्मी!!! जिस समय चन्द्रचूड़ इस प्रकार प्रसन्न हो रहे थे, उसी समय उन्होंने देखा कि जो नौकायें आगे बढ़ चुकी थीं अर्थात् जिन नौकाओंके सिपाहियोंकी गोली तीरपर पहुँच सकती थी वे तीरकी ओर निशाना साधकर बन्दूक चला रहे हैं। सहसा नदीपर, धूएँसे अन्धकार छा गया। बन्दूककी आवाजसे कानके पर्दे फटने लगे। चन्द्रचूड़ने सोचा कि यदि हमारे रक्षक देवता हैं तो भला इन बन्दूकोंकी गोलीसे उनका क्या बिगड़ सकता है? परन्तु यदि मनुष्य हों तो—हम लोगोंके जीवनका यहीं अंत है। क्योंकि इस अग्निवर्षाके सम्मुख भला कौन मनुष्य ठहर सकता है?

परन्तु फिर उसी तोपकी आवाज चारो ओर गूँज उठी। धूएँसे आकाशमें अन्धकार छा गया। सेनाके सहित नौका फिर नदीमें डूब गयी।

उस समय एक ओर अकेली एक तोप; और दूसरी ओर

हजारों मुसलमानी सेना। भयानक युद्ध होने लगा, भयंकर शब्दसे कानके पर्दे फटने लगे। बार-बार भयंकर तोप इन्द्रके वज्रकी तरह गरजने लगी। नदीका विशाल वक्षस्थल धूएँसे ऐसा ढक गया कि, चन्द्रचूड़ उस ऊँची अट्टालिकासे धूएँके अतिरिक्त और कुछ भी न देख सके। उस समय ऐसा जान पड़ता था कि किसी विशाल समुद्रमें धूँयेंकी ऊँची ऊँची लहरें उठ रही हैं। उस समय केवल उस तोपके वज्रनादसे उनको जान पड़ा कि अबतक वह हिन्दू-धर्म-रक्षिणी देवी जीवित हैं। चन्द्रचूड़ बड़ी उत्कंठासे यह जाननेकी चेष्टा कर रहे थे कि इस आश्चर्य समरका फल क्या होगा।

धीरे-धीरे शब्द कम हो गया। हवाके चलनेसे धूँआँ उड़ गया। तब चन्द्रचूड़को वह जलमय रण-क्षेत्र साफ दिखाई पड़ने लगा। उन्होंने देखा कि टूटी-फूटी नौकायें नदीके श्रोतमें वह रही हैं। मृत और अर्ध मृत सिपाहियोंके देहसे नदी ऐसी जान पड़ती थी कि जैसे आँधीके उपरांत फूल और पत्तोंसे सुशोभित उद्यानकी शोभा होती है। किसीका अस्त्र, किसीका वस्त्र, किसीका बाजा, किसीकी पगड़ी और किसीका शरीर वह रहा था। कोई-कोई जीवित सिपाही भी तैरकर भागनेका उद्योग कर रहे थे। किसीको घड़ियाल और मगर खा रहे थे। जो थोड़ी सी नोकाएँ डूबनेसे बच गयी थीं उसपर बचे खुचे सैनिक नदीके उस पार भागनेका उद्योग कर रहे थे। एक मात्र चक्रके प्रहारसे घायल असुर सेनाकी तरह मुसलमानी सेना लड़ाईसे मुँह मोड़ कर भाग रही थी।

यह देख चन्द्रचूड़ हाथ जोड़कर आकाशकी ओर देखते हुए भक्ति-भावसे कहने लगे—जय जगदीश्वर! जय दैत्य-दवन! भक्त-तारक धर्म-रक्षक भगवान्! आज आपने बड़ी दया की!

आज आपने स्वयं इस युद्ध-स्थलमें आकर शत्रुओंका संहार किया, नहीं तो इस नगरकी राजलक्ष्मीने स्वयं ही युद्ध किया, अन्यथा तुम्हारे दासानुदास सीताराम ही आ गये। तुम्हारे उस भक्तके सिवा इस युद्धमें शत्रुओंको परास्त करना दूसरेकी सामर्थ्य नहीं है।

यह कहकर चन्द्रचूड़ उस अट्टालिकासे नीचे उतर आये।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

तोप और बन्दूककी आवाज सुनकर गंगारामने सोचा—यह क्या! युद्ध कौन कर रहा है! वही डाइन तो नहीं है! वह देवता तो नहीं है! यही देखनेके लिये गंगारामने एक सैनिकको भेजा।

सैनिकने लौटकर निवेदन किया कि मुसलमान युद्ध कर रहे हैं।

गंगारामने चिढ़कर कहा—यह तो मैं भी जानता हूँ, पर मुसलमान किससे युद्ध कर रहे हैं?

सैनिक—किसीके साथ नहीं।

गङ्गारामने हँसकर कहा—मूर्ख! ऐसा भी कहीं हो सकता है? तोप किसकी है?

सैनिक—हजूर तोप किसीकी भी नहीं है।

गङ्गाराम ने क्रोधित होकर कहा—तुम्हें क्या तोपकी आवाज सुनाई नहीं पड़ती?

सैनिक—सुनाई तो पड़ती है।

गङ्गाराम—तब, उस तोपको कौन छोड़ता है?

सैनिक—यह तो मुझे नहीं दिखाई पड़ा।

गङ्गाराम—क्यों आँख कहाँ थी ?

सैनिक—मेरे साथ।

गङ्गाराम—तब तोप तुम्हें क्यों न दिखाई पड़ी ?

सैनिक—तोप तो दिखाई पड़ी। घाटवाली तोप है।

गङ्गाराम—ठीक है, पर उसे छोड़ता कौन है ?

सैनिक—पेड़की डाल।

गङ्गाराम—तुम क्या पागल हो गये हो ? भला पेड़की डाल भी कहीं तोप छोड़ सकती है ?

सैनिक—वहाँ मुझे और कोई नहीं दिखाई पड़ा। मैंने देखा कि केवल थोड़ी सी पेड़की डाल तोपपर झुकी है।

गङ्गाराम—तब निश्चय कोई न कोई पेड़की डालको बाँध-कर उसीके सहारे तोप छोड़ रहा है। वह बुद्धिमान है, इसमें सन्देह नहीं। शत्रु-सैनिक उसको देख नहीं सकते, परन्तु वह पत्तोंकी ओटसे उनको देख सकता है। अच्छा, उन डालियोंके भीतर कौन है ? यह तुम क्यों न देख आये ?

सैनिक—वहाँतक जाना क्या सहज है !

गङ्गाराम—क्यों ?

सैनिक—वहाँ जलधाराकी तरह गोली बरस रही है।

गङ्गाराम—गोलीसे तुम्हें इतना डर है, तो इस कामको क्यों लिया ? यह कहकर गङ्गारामने अपने दूसरे अनुचरको आज्ञा दी कि इस सैनिककी वर्दी छीन लो। युद्धकी सम्भावना देखकर मृण्मयने चुने हुए थोड़ेसे हिन्दुस्तानी सैनिकको दुर्ग-रक्षाके लिये नियुक्त कर रखा था। गङ्गारामने उनमेंसे चार सैनिकोंको आज्ञा दी कि जहाँ घाटके ऊपर तोप रखी है वहाँ जाओ, वहाँपर जो तोप छोड़ रहा है उसे पकड़ लाओ।

वे चार सिपाही जब तोपके पास आये तब युद्ध समाप्त

हो चुका था। बचे-खुचे मुसलमान सैनिक नाव पर भाग रहे थे। उन सिपाहियोंने वहाँ आकर देखा कि तोपके पास एक मनुष्य मरा पड़ा है और एक पलीता हाथमें लिये बैठा है। वह देखनेमें हट्टा-कट्टा जवान है, कछाड़ा मारकर धोती पहने है, सिर और मुँहमें कपड़ा बाँधे है। उसका सारा शरीर राखसे काला हो गया है। चारों सैनिकोंने आकर उसे पकड़ लिया और कहा-तुम कौन हो जी ?

उसने कहा—क्यों भाई !

सैनिक—तुम यहाँ बैठे-बैठे तोप क्यों छोड़ रहे हो ?

उसने—क्यों, तोप छोड़कर मैंने कौनसा अपराध किया है? क्यों तुम लोग मुसलमानोंके साथ मिल गये हो ?

सैनिक—अजी मुसलमानोंके आनेपर हम लोग अभी उनको भगा देते। पर तुम क्यों हम लोगोंको दिक कर रहे हो ? चलो हजूरके पास चलना होगा।

उसने-अच्छा चलो। पर पहले मुसलमानोंको भाग जाने दो। जबतक उनमेंसे एक भी उस पार दिखाई पड़ेगा तबतक तुम लोगोंकी कौन; तुम्हारे कोतवालके आनेसे भी मैं यहांसे नहीं हटूँगा। देखो यह जो मनुष्य मरा पड़ा है वह कौन है, क्या तुम लोग चीन्ह सकते हो ?

सिपाहियोंने देखकर कहा—हाँ हम लोग इसको पहचानते हैं। यह तो हमारा गोलन्दाज प्यारेलाल है। यह यहाँ कहाँसे आया ?

उसने—तब पहले इसको किलेके भीतर ले चलो। फिर मैं भी चलता हूँ। सिपाही एक दूसरेका मुँह देखकर कहने लगे· यह बात तो ठीक कहता है। हम लोगोंको तो यही हुक्म हुआ है कि जो तोपके पास हो उसे पकड़ लाओ। इसलिये, यह

मुर्दा तोपके पास पड़ा है, बस इसीको ले चलना चाहिये।

परन्तु मुर्देको उठावे कौन? आपसमें सलाह करके, उनमें-से एक सिपाही किसी डोमको बुलाने गया और बाकी तीन उसके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे।

इस ओर, कारिख और बारूदसे ढके हुए उस मनुष्यने देखा कि धीरे-धीरे सब मुसलमान सैनिक उस पार चले गये। तब उसने उन तीन सिपाहियोंसे कहा—चलो भाई, चल कर तुम्हारे कोतवाल साहबको सलाम कर आवें। सिपाही उसे पकड़कर ले चले।

जहाँ पर दुर्ग-रक्षक सुसज्जित सैन्य-श्रेणीके बीचमें भीत नागरिकगण झुंडके झुंड खड़े थे, वहीं इन सिपाहियोंने कारिख और बारूदसे ढके उस पुरुषको लाकर खड़ा कर दिया।

उस समय सहसा जय-ध्वनिसे आकाश गूँज उठा। एकत्रित सैनिक और नागरिक एक साथ सहस्रों कंठसे चिल्ला उठे—जय, महाराजाधिराजकी जय! जय, महाराजाधिराजकी जय!! जय श्री सीताराम राय राजा बहादुरकी जय!!!

चन्द्रचूड़ने दौड़ते हुए आकर उस महापुरुषको गले लगा लिया। उस पुरुषने भी उनका पैर छूकर उनकी पद-धूलि ली। चन्द्रचूड़ने कहा—संग्राम देखकर ही मैं जान गया कि आप आ गये। मनुष्योंमें आपके सिवा ऐसा अचूक निशाना और कौन लगा सकता है? दूसरी बातें पीछे होंगी, पहले गङ्गाराम-को कैद करनेकी आज्ञा दीजिए।

सीतारामने तुरन्त आज्ञा दे दी। गङ्गाराम सीतारामको देखकर खिसकना चाहता था, परन्तु तुरन्त पकड़ा जाकर सीतारामकी आज्ञासे कारागारमें भेज दिया गया।

सोलहवाँ परिच्छेद

सीतारामने सिपाहियोंको दुर्ग-स्थित तोपोंके निकट और अन्यान्य उपयुक्त स्थानोंमें नियुक्त करके मृण्मयका समाचार जाननेके लिये दूत भेज दिया। वे स्वयं स्नान-पूजन करनेके बाद चन्द्रचूड़ महाशयके साथ एकान्तमें बातचीत करने लगे। चन्द्रचूड़ने पूछा—महाराज! आप कब आये, हम लोगोंको कुछ भी मालूम नहीं पड़ा। आप अकेले हो क्यों आये, आपके अनुचर-वर्ग कहाँ हैं, मार्गमें कोई विघ्न तो नहीं हुआ?

सीताराम—साथियोंको मार्गमें ही छोड़कर मैं अकेला ही यहाँ आगया। मेरे न रहनेपर इस नगरकी क्या अवस्था थी, यह जाननेके लिये, छद्मवेष धारण करके अकेला रात्रिमें यहाँ आया था। आकर देखा कि सम्पूर्ण नगर अरक्षित है। ऐसा क्यों हुआ, इसका कारण अब मेरी समझमें कुछ-कुछ आगया है। किलेमें जानेका उद्योग किया, परन्तु फाटक बन्द था, सबेरा होनेको ही था इसलिये दुर्गमें प्रवेश न करके नदी-तीरपर जाकर देखा कि मुसलमानोंकी सेना नौकापर चली आ रही है। तिसपर भी दुर्ग-रक्षक नगर-रक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं कर रहे हैं। यह देखकर मुझसे जो कुछ हो सका, वह मैंने किया।

चन्द्रचूड़—आपने जो किया वह दूसरा नहीं कर सकता था। पर इतना गोला-बारूद आपने कहाँसे पाया?

सीताराम—एक देवीने मेरे ऊपर सदय होकर मुझे गोला-बारूद और एक गोलन्दाज ला दिया।

चन्द्रचूड़—देवी! मुझे भी उनका दर्शन हुआ था, वह इस नगरकी राज-लक्ष्मी हैं। वह कहाँ गयीं?

सीताराम—मुझे गोला-बारूद देकर वह अन्तर्धान हो गयीं। अब आप इन कई महीनेका समाचार बतलावें?

तब चन्द्रचूड़ने सब समाचार जो कुछ वह जानते थे, कहा। और अन्तमें पूछा कि जिस लिये आप दिल्ली गये थे वह काम सिद्ध हुआ या नहीं?

सीताराम—कार्य सिद्ध हो गया। बादशाहका मुझसे कुछ उपकार हो गया, जिससे उन्होंने मुझे प्रसन्न होकर बारह जमीन्दारीका शासन-कर्ता नियुक्त करके 'महाराजाधिराज' की सनद दी। पर इस समय यह जानकर बड़ा खेद हुआ कि फौजदारके साथ हम लोगोंका विरोध हो गया। फौजदार सूबेदारके अधीन है और सूबेदार बादशाहके। इसलिये फौजदारके साथ विरोध करना मानो बादशाहके साथ विरोध करना है। जिन्होंने मुझपर इतना अनुग्रह किया, उसके विरुद्ध अस्त्र-धारण करना अत्यन्त कृतघ्नता है। आत्म-रक्षा करना सभीका कर्त्तव्य है, परन्तु आत्मरक्षाके अतिरिक्त फौजदारसे युद्ध करना मेरे लिये उचित नहीं है। इसलिये इस विरोधसे मैं अपना दुर्भाग्य समझता हूँ।

चन्द्रचूड़—मैं तो इसे अपना सौभाग्य समझता हूँ। हिन्दू मात्रके लिये यह शुभ होगा। क्योंकि आप इन मुसलमानोंके प्रति सदय हो जायँगे तो इनसे हिन्दुओंकी रक्षा कौन करेगा? हिन्दू-धर्मको शरण कहाँ मिलेगी। आपके लिये भी यह शुभ ही है, क्योंकि जो हिन्दू-धर्मका पुनरोद्धार करेगा, वही मनुष्योंमें सौभाग्यशाली समझा जायगा।

सीताराम—जबतक मृण्मयका समाचार न मिल जाय, तबतक कुछ कर्त्तव्य स्थिर नहीं किया जा सकता।

सन्ध्याके उपरान्त मृण्मयका समाचार आ गया। पीर

बख्शखाँ नामका फौजदारका सेनापति, फौजदारकी आधी सेना लेकर आ रहा था, मार्गमें ही मृएमयके साथ उसकी मुठभेड़ होगयी। मृएमयके असाधारण साहस और कौशलसे वह सेनाके सहित पराजित होकर युद्धक्षेत्रमें मारा गया। विजयी मृएमय सेनाके सहित लौट रहे हैं।

यह समाचार सुनकर चन्द्रचूड़ने सीतारामसे कहा—महाराज! अब आप क्या देख रहे हैं? इसी सयम विजयी सेना ले नदी-पार जाकर 'भूषणा' नगरीपर अधिकार कर लें।

—o—
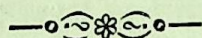
सत्रहवाँ परिच्छेद

जयन्तीने श्रीसे कहा—श्री! अब क्या देख रही हो, इसी समय स्वामीके पास जाकर भेंट करो।

श्री—क्या मैं यहाँ इसी लिये आई हूँ।

जयन्ती—मनुष्योंमें राजर्षि सबसे श्रेष्ठ कहे गये हैं। राजाको राजर्षि क्यों नहीं बना लेती?

श्री—मेरी क्या सामर्थ्य है?

जयन्ती—मैं जानती हूँ कि तुम्हारे ही द्वारा यह महत्कार्य्य सिद्ध हो सकता है। इसलिये जाओ, शीघ्र जाकर राजा सीतारामको प्रणाम करो।

श्री—जयन्ती! लकड़ी जलमें तैरती है, परन्तु पत्थरमें बाँध देनेसे वह भी डूब जाती है। तो क्या मैं भी फिर डूब मरूँ?

जयन्ती—जिन्हें कौशल मालूम है वे नहीं डूब सकते। पनडुब्बे समुद्रमें डुबकी लगाते हैं, परन्तु मरते नहीं, रत्न ले आते हैं।

श्री—मुझे ऐसा विश्वास नहीं है। इससे इस समय मैं राजासे भेंट नहीं करूँगी। न हो कुछ दिन यहीं रहकर अपने मनकी दृढ़ता देख लूँ। यदि मेरा मन मेरे वशमें न होगा तो राजासे बिना भेंट किये ही इस देशको छोड़कर चली जाऊँगी।

इसलिये श्रीने राजासे भेंट नहीं की।

तृतीय खण्ड

अस्त—डाकिनी

पहला परिच्छेद

'भूषणा' पर अधिकार हो गया, युद्धमें सीतारामको विजय प्राप्त हुई, तोराबखाँ मृण्मयके हाथ मारे गये। यह सब बातें ऐतिहासिक हैं, इसलिये हमारे निकट ये सब बातें छोटी हैं। हम उसका विस्तृत वर्णन करके समय नष्ट नहीं कर सकते। उपन्यास-लेखकोंको अंतर्विषयके प्रकट करनेका यत्न करना चाहिए। इतिहाससे सम्बन्ध रखना निष्प्रयोजन है।

'भूषणा' पर अधिकार हो गया। बादशाही सनदके भरोसे और अपने बाहुबलसे सीतारामने बङ्गालके बारह जिलोंपर अधिकार स्थापित करके 'महाराजा'की उपाधि ग्रहण की और अपने प्रचण्ड प्रतापसे प्रजाका शासन करने लगे।

शासनके सम्बन्धमें पहले ही गङ्गारामके दंडकी बात उठी। उसके विरुद्ध प्रमाणका अभाव नहीं था। पति-प्राणा अपराधिनी रमाने ही समस्त वृत्तान्त सीतारामसे कह दिया। जो कुछ बाकी था, उसे मुरला और चाँदशाह फकीरने बतला दिया। अब केवल गङ्गारामसे पूछना बाकी रह गया। इसी समय इन बातोंके विषयमें एक गड़बड़ी पैदा हो गयी।

इन बातोंको रमाने सीतारामसे अंतःपुरमें आँखोंमें आँसू भरकर कहा था। सीतारामने उसके एक शब्दपर भी अविश्वास

नहीं किया। उन्होंने समझ लिया कि सरल-हृदया रमा निर-पराधिनी है। यदि इसका कुछ अपराध है तो केवल पुत्र-स्नेह। परन्तु साधारण पुरवासियोंने ऐसा नहीं समझा। गंगाराम क्यों कैद किये गये, इन बातोंको लेकर शहरमें घोर आन्दोलन होने लगा। कुछ तो मुरलाके दोषसे और कुछ उस पहरेदार पाण्डेयजीके कारण रमाका नाम भी लोग अपराधियोंमें लेने लगे। कोई कहने लगा—गङ्गाराम मुगलोंके हाथ सीतारामका राज बेचना चाहता था, कोई कहता था कि यह छोटी रानीके महलमें गिरफ्तार हुआ था। कोई कहता था कि दोनों ही बातें सच हैं, राज बेचनेमें छोटी रानीकी भी सम्मति थी। राजाके कानों-तक तो यह बातें नहीं पहुँची, परन्तु रानीके पास पहुँच गयीं। क्योंकि औरतोंमें इन बातोंका प्रचार सहजमें ही हो जाता है। दोनों ही रानीके कानोंतक यह बात पहुँच गयी। रमाने जब इन बातोंको सुना तब वह शोकसे व्याकुल हो गयी। उसने स्थिर किया कि या तो फाँसी लगा लूँगी, या जलमें डूब मरूँगी। नन्दाने यह सुनकर बुद्धिमानीका काम किया।

नन्दा, जहाँ रमा मुँह ढाककर रो रही थी और सोच रही थी कि जलमें डूबकर मरना सहज है, अथवा फाँसी लगाकर, वहाँ पहुँचकर रमासे कहने लगी कि, मैं देखती हूँ कि तुमने भी उन बातोंको सुना है। रमाने केवल सिर हिला दिया। जिसका मतलब यह था कि हाँ सुना है। उस समय उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी।

नन्दाने उसकी आँखें पोंछकर स्नेहसे कहा—रोनेसे कलंक नहीं मिटेगा। बहिन! रोना छोड़कर जिस तरह हो इस कलंक-को मिटानेकी चेष्टा करो। यदि हो सके तो बैठकर धीरे-धीरे मुझसे सब बातें समझाकर कह दो। इस समय मुझे सौत न

समझो, क्योंकि कारिख तेरे मुँहमें लगे चाहे न लगे, पर राजाका सिर नीचा हो जायगा। वह जिस प्रकार तेरे पति हैं उसी प्रकार मेरे भी। यह लज्जा हम दोनोंके लिये ही समान है। इसके अतिरिक्त महाराज मुझे ही अंतःपुरका भार दे गये थे। उनके कानोंतक जब यह बात पहुँचेगी, तब मैं क्या उत्तर दूँगी।

रमा—जो घटना थी वह मैंने उनसे कह दिया है। उन्होंने मेरी बातोंपर विश्वास करके मुझे क्षमा कर दिया है। मेरा तो कोई अपराध नहीं है।

नन्दा—यह तो मैं जानती हूँ कि तेरा कोई अपराध नहीं है। तब जो कुछ हुआ है वह मुझसे क्यों नहीं बतलाती?

यह सुन रमा आँखें पोछ अपनेको सम्भाल कर उठ बैठी और जो बातें हुई थीं वह सब नन्दासे कह दिया। नन्दाको उसकी बातोंपर पूर्ण विश्वास हो गया।

नन्दाने कहा—यदि मुझसे तनिक भी पूछकर तू इन कामोंको करती तो, बहिन, आज यह घटना न होती। खैर, जो होना था वह हो गया। इसके लिए तेरा तिरस्कार करनेसे क्या लाभ होगा? अब जिस प्रकार हम लोगोंका मान नष्ट न हो वही करना चाहिये।

रमा—यदि बहिन, तुम ऐसा न करोगी तो मैं निश्चय कहती हूँ कि मैं जलमें डूब मरूँगी या फाँसी लगा लूँगी। मैं तो राजाकी रानी हूँ, इन अपवादोंको सुनकर भला अपना प्राण कैसे रख सकती हूँ।

नन्दा—बहिन, तुझे मरना न होगा, किन्तु एक बड़े साहसका काम तुझे करना होगा। जान पड़ता है, वैसा करनेसे किसीके मनमें सन्देह न रहेगा।

रमा—इस कलङ्कको दूर करनेके लिये जो कुछ तुम कहोगी

मैं करनेके लिये तैयार हूँ। बतलाओ मुझे क्या करना होगा ?

नन्दा—तुमने जिस प्रकार मुझसे सब बातें समझा कर कही हैं, उसी प्रकार तुम जिसके सामने समझाकर इन बातों-को कहोगी वही तुम्हारी बातोंपर पूर्ण विश्वास करेगा। यदि राजधानीके सब लोग तुम्हारे मुँहसे इन बातोंको सुन लेंगे तो यह कलङ्क मिट जायगा।

रमा—भला यह कैसे हो सकता है ?

नन्दा—मैं महाराजसे कहकर एक दर्बार कराऊँगी। वे उस दर्बारमें समस्त नगर-वासियोंको बुलावेंगे। वहाँ गङ्गाराम और समस्त नगरवासियोंके सामने तुम इन बातोंको कहना। हम राजमहिषी हैं, सूर्य्य भी हम लोगोंको नहीं देख सकते। इसलिये समस्त नगर-निवासियोंके सम्मुख मुक्तकंठसे क्या तुम इन बातोंको कह सकोगी ? यदि कह सकोगी तो हम सब लोग इस कलङ्कसे मुक्त हो जायँगे।

रमा सिंहनीकी तरह गर्जकर कहने लगी—बहिन, समस्त नगर-निवासियोंकी कौन कहे, यदि समस्त जगत्के मनुष्य एकत्रित हों तब भी मैं उनके सामने मुक्तकंठसे इन बातोंको कह सकती हूँ।

नन्दा—कह सकती हो ?

रमा—यदि न कह सकूँगी तो, मर जाऊँगी।

नन्दा—अच्छा, तो मैं जाती हूँ, महाराजसे कहकर दर्बार-का प्रबन्ध कराती हूँ, अब तू रो मत। नन्दा चली गयी। रमाने भी बिछौनेसे उठकर आँसू पोंछ अपने पुत्रको गोदमें ले उसका मुख-चुम्बन किया।

नन्दाने राजाको अंतःपुरमें बुलाया और जो सब अपवाद उठ रहे थे उसे राजाको सुनाया। रमासे जो कुछ बातें हुई थीं

उन्हें भी ज्योंकी त्यों कह दिया। अन्तमें, कहा कि—मैं दोनों ही तुम्हारे पैरोंपर गिरकर कहती हूँ कि अब तुम हमारे मानकी रक्षा करो। इस कलङ्कसे उद्धार करो, नहीं तो हम दोनों ही आत्म-हत्या कर लेंगी।

सीताराम इन बातोंको सुनकर उदास हो गये। कुछ तो इस कलङ्कके कारण और कुछ नन्दाके इस प्रस्ताव से भी।

सीताराम—भला मैं राजमहिषीको इस प्रकार आम-दर्बारमें कैसे खड़ा कर सकता हूँ? अपनी महारानीका, साधारण कुलटा स्त्रीकी भाँति सबके सामने भला कैसे विचार कर सकता हूँ?

नन्दा—तुम जितना समझ सकते हो, उतना मैं नहीं समझ सकती, परन्तु विचार कर देखो कि राजमहिषीका सबके सम्मुख होना अधिक लज्जाप्रद है या यह भयङ्कर अपवाद।

सीताराम—इस प्रकारका मिथ्या अपवाद राजाओंके यहाँ सदासे चला आता है। सीतापर भी दुष्टोंने कलङ्क लगाया था। पहले तो मुझे उचित है, कि इतना बखेड़ा न करके सीताकी तरह रमाको त्याग कर दूँ। ऐसा करनेसे फिर कोई कलङ्क न रह जायगा।

नन्दा—महाराज! निरपराधिनीको बिना विचार किये ही त्याग करना क्या उचित है? क्या यही राजधर्म है? रामचन्द्र ने जो किया था क्या तुम भी वही करना चाहते हो? जो पूर्ण ब्रह्म हैं उनके लिये जैसा त्याग है वैसा ही ग्रहण। परन्तु क्या यह काम तुम्हें शोभा देता है?

सीताराम—उन समस्त प्रजा, शत्रु, मित्र और नीच, ऊँच, लोगोंके सामने अपनी राजमहिषीको कलङ्किनीकी तरह

खड़ा करनेमें क्या मेरा हृदय फट न जायगा! मेरा हृदय पाषाण तो नहीं है?

नन्दा—महाराज! जिस समय पचास हजार मनुष्योंके सामने श्री पेड़की डालपर चढ़कर नाची थी, क्या उस समय तुम्हारा हृदय हर्षसे फूला नहीं समाता था?

सीतारामने नन्दाकी ओर क्रूर दृष्टिसे देखा और कहा—हाँ, ऐसा हुआ था, नन्दा! परन्तु फिर वैसा नहीं हुआ इसीका मुझे अधिक दुःख है।

इसपर नन्दाने हाथ जोड़कर क्षमा माँगी। हाथ जोड़नेसे वह जीत गयी। अन्तमें सीताराम दर्बार करनेके लिये सहमत हो गये। उन्होंने सोचा, यदि ऐसा न करूँगा तो रमाका त्याग करना पड़ेगा। रमा निरपराधिनी है, इसलिये दर्बार करना ही उचित है। सीताराम उदास होकर चन्द्रचूड़के पास गये और दर्बार करनेके लिये उन्होंने आपसमें राय की। चन्द्रचूड़ ब्राह्मण थे, इसलिये पर्दाके प्रति उनकी उतनी श्रद्धा न थी। उन्होंने सीतारामको धन्यवाद देकर सम्मति प्रदान की। उनको डर था तो केवल यही कि रमा इतने मनुष्योंके बीचमें कुछ कह न सकेगी। सीतारामको भी इसका भय था। क्योंकि यदि वह कुछ कह न सकी, तो सब प्रयत्न निष्फल हो जायगा।

दूसरा परिच्छेद

सीतारामने घोषणा कर दी कि आम दर्बारमें गङ्गारामका विचार होगा। राजाके आज्ञानुसार समस्त नगरवासी दर्बारमें आवें। दर्बारवाले दिन हजारों प्रजा दर्बारमें उपस्थित हुई। दिल्लीका अनुकरण करके सीतारामने भी एक दर्बारे-आम बन-

वाया था। आज उसको राज-कर्मचारियोंने बड़े परिश्रमसे सजाया था? यदपि दिल्लीकी तरह रुपहला चँदवा, मोतियोंकी झालर, उसमें नहीं टँगी थी तथापि रेशमी कपड़ेका चँदवा जिसमें जरीका काम बना था, टाँगा गया था। खम्भे सब उसी प्रकार नकाशीदार बने थे; रंग-बिरंगे कोमल गलीचोंसे सभा-मण्डप सुशोभित था। उसके चारो ओर तरह-तरहके कपड़े पहने सशस्त्र सैनिक-गण, श्रेणीबद्ध खड़े थे। बाहर घुड़सवार सेना शांति-रक्षा कर रही थी। सभा-मण्डपके बीचमें श्वेत-मर्मर निर्मित, उच्च वेदीके ऊपर सीतारामके लिये एक सुनहला सिंहासन, जिसमें मोतियोंकी झालर लगी थी, रखा था।

धीरे-धीरे किलेमें भीड़ इकट्ठी हो गयी। सभा-मण्डपमें केवल उच्चश्रेणीके ही लोग स्थान पा सके। निम्नश्रेणीके लोग हजारोंकी संख्यामें सभामण्डपके चारो ओर बाहर ही खड़े होकर तमाशा देख रहे थे। खिड़कीसे इस महासमारोहको देखकर महारानी नन्दादेवीने रमाको बुलाकर पूछा—क्यों! इस समारोहके बीचमें खड़ी होकर, कुछ कहनेका साहस तुम्हें होता है?

रमा—यदि मुझे अपने स्वामीके चरणोंमें सच्ची भक्ति है तो निश्चय मैं ऐसा कर सकूँगी।

नन्दा—क्या मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ?

रमा—तुम भी मेरे साथ इस जन-समुद्रमें क्यों डूबती हो? मेरे साथ किसीको चलना न होगा। केवल एक काम करना। जब मेरे लिये कुछ कहनेका समय आवे, तब मेरे पुत्रको लेकर कोई मेरे निकट खड़ा हो जाय। उसका मुख देखनेसे मुझे साहस हो जायगा।

नन्दाने यह स्वीकार किया और कहा—अब सभामें तुम्हें जाना होगा। अपना कपड़ा पहनकर तैयार हो जाओ।

रमा अपने महलमें चली गयी। वहाँ जाकर द्वार बन्द कर दिया और जमीनपर गिर हाथ जोड़कर कहने लगी—हे भगवन्! हे जगदीश्वर! आजके दिन मुझे जो कुछ कहना है वह कहकर यदि दूसरे दिनसे मैं गूँगी हो जाऊं, तो भी भला है। आजके दिन सभामें अपनी बात कहनेपर इस जन्ममें फिर कभी कुछ कहनेका अवसर मुझे न मिले तो भी मैं उसे श्रेष्ठ समझूँगी। इसलिये, हे प्रभो! आज मेरा मान आप रख लें। इसके बाद फिर मरनेमें भी मुझे कोई दुःख न रहेगा।

इसके उपरान्त कपड़ा बदलेका ध्यान उसे हुआ। उसने दासियोंसे एक साधारण वस्त्र माँग लिया। वही पहनकर सभामें जानेके लिये तैयार हुई। नन्दाने यह देखकर पूछा—यह क्या?

रमा—आज मेरे लिये श्रृंगार करनेका दिन नहीं है। ईश्वर यदि मुझे फिर कभी श्रृंगार करनेका दिन देंगे तो मैं श्रृंगार करूँगी, नहीं तो यही अंतिम है। यह सुनकर नन्दाने और कुछ कहना उचित नहीं समझा।

तीसरा परिच्छेद

ठीक समयपर महाराज सीतारामराय सभामें आये। नकीबने स्तुति किया। गीत-वाद्य उसदिन कुछ नहीं हुआ।

तदुपरान्त श्रृंखला-बद्ध गङ्गाराम सभामें लाया गया। उसको देखनेके लिये बाहर खड़ी हुई जनता चंचल हो उठी। शांति-रक्षकोंने बड़ी कठिनाईसे उन्हें शांत किया।

तब राजाने गङ्गारामसे गम्भीर स्वरमें कहा—गङ्गाराम! तुम हमारे रिश्तेदार, प्रजा और वेतनभोगी कर्मचारी हो। मैं भी

तुमपर विशेष स्नेह और अनुग्रह करता था। एक वार मैंने तुम्हारे प्राण भी बचाये थे। इतनेपर भी तुमने मेरे साथ विश्वास-घात क्यों किया? आज तुमको राजदण्ड मिलेगा।

गङ्गारामने नम्रतापूर्वक कहा—किसी शत्रुने आपसे मेरी झूठी शिकायत की है। मैंने विश्वासघात नहीं किया है। महाराज! आप स्वयं मेरा विचार कर रहे हैं। इसलिये मुझे आशा है कि धर्मशास्त्रके अनुसार जबतक प्रमाण न मिल जायगा, तबतक आप मुझे किसी प्रकारका दण्ड न देंगे।

राजा—ऐसा ही होगा। धर्मशास्त्रानुसार जो प्रमाण प्राप्त हुआ है पहले उसे सुनो। फिर जो कुछ उत्तर देना हो दो। यह कहकर राजाने चन्द्रचूड़को आज्ञा दी कि आप जो कुछ जानते हैं उसें कहें।

तब चन्द्रचूड़, जो कुछ जानते थे उसे, विस्तारके सहित सभामें कहने लगे। उसे सुनकर उपस्थित जनता समझ गयी कि जिस दिन मुसलमान दुर्गपर आक्रमण करनेके लिये नदी पार कर रहे थे, उस दिन चन्द्रचूड़के बहुत कहनेपर भी गङ्गारामने दुर्ग-रक्षाकी कोई चेष्टा नहीं की थी। चन्द्रचूड़की बातें समाप्त होनेपर राजाने गंगारामसे पूछा—नराधम! इसका क्या उत्तर देता है।

गङ्गारामने हाथ जोड़कर कहा—यह ब्राह्मण पण्डित हैं, युद्धके विषयमें क्या जान सकते हैं? मुसलमान न तो इस पार आये और न दुर्गपर ही आक्रमण किया। यदि वे ऐसा करते और मैं उनको न हटाता तो पण्डितजी जो कुछ कहते हैं उसे मैं मान लेता। महाराज! दुर्गमें मैं भी रहता था, इसलिये दुर्गपतनसे मुझे क्या लाभ होता?

राजा—क्या लाभ होता, इसे एक दूसरे मनुष्यसे सुनो।

यह कहकर राजाने चाँदशाह फकीरको आज्ञा दी कि आप जो कुछ जानते हैं उसे कहें।

तब चाँदशाहने दुर्ग-आक्रमणके पहले उस रात्रिकी घटना, जब गङ्गाराम तोराबखाँ के निकट गया था, कह सुनाई। राजाने गङ्गारामसे फिर पूछा—इसका क्या उत्तर देते हो?

गङ्गाराम—मैं उस रातको तोराबखाँके पास गया था सही, परन्तु मेरा वहाँ जानेका अभिप्रायः यह था कि विश्वासघातक बन, उसको कुपथमें घसीट किलेके नीचे लाकर मार डालूँ।

राजा—इसके लिये क्या तोराबखाँसे कुछ पुरस्कार भी माँगा था?

गङ्गाराम—यदि पुरस्कार न माँगता तो उसका विश्वास मेरे ऊपर कैसे जमता?

राजा—क्या पुरस्कार माँगा था?

गङ्गाराम—आधा राज्य।

राजा—और कुछ?

गङ्गाराम—और कुछ भी नहीं।

तब राजाने चाँदशाह फकीरसे पूछा कि आप इसके बारे में भी कुछ जानते हैं?

चाँदशाह—जानता हूँ।

राजा—क्या जानते हैं?

चाँदशाह—मैं मुसलमान फकीर हूँ, मैं तोराबखाँके पास कभी-कभी जाता था, वह भी मेरा आदर करते थे। मैं उसकी बात न कभी आपसे कहता था और न कभी आपकी बात उससे। इसलिये मैं पक्ष विशेषका व्यक्ति नहीं समझा जाता था। अब वह मर गये, इसलिये अब उनकी बात कहना कुछ अनुचित नहीं है। जिस दिन उन्होंने महाराजके हाथों परास्त

होकर मधुमतिके तीरसे प्रस्थान किया था, उस दिन उनसे रास्तेमें भेट हुई थी। उस समय गङ्गारामके विश्वासघातके विषयमें उनसे बातचीत हुई थी। गङ्गारामने उनसे छल किया है, यह समझकर उन्होंने स्वयं मुझसे इन बातोंको कहा था। गङ्गारामने आधा राज पुरस्कारमें माँगा था, इसके अतिरिक्त उसने और भी कुछ माँगा था, परन्तु उसे कहते हुए मुझे बड़ा भय लगता है। यदि आप मुझे अभयदान दें तो मैं कह सकता हूँ।

राजा—आप निर्भय होकर कहें।

चाँदशाह—द्वितीय पुरस्कारमें उसने माँगा था महाराजकी छोटी रानी।

दर्शक-मण्डली समुद्रकी भाँति गर्ज उठी—गङ्गारामको गालियाँ देने लगी। शान्ति-रक्षकोंने बड़े मुश्किलसे शांति की। गङ्गारामने कहा—महाराज! यह असम्भव बात है। आप जानते हैं, मेरा विवाह हो चुका है, इसके अतिरिक्त मैं नगर-रक्षक हूँ, यदि स्त्रियोंपर मेरी अभिलाषा होती तो मेरे लिये वह दुष्प्राप्य नहीं थीं। मैंने महाराजकी छोटी रानीको कभी देखा भी नहीं है, फिर उनको कैसे माँग सकता हूँ?

राजा—तब तुम कुत्तेकी तरह रातको छिप-छिपकर मेरे अंतःपुरमें जाते क्यों थे?

गङ्गाराम—मैं कभी नहीं गया।

तब उस पाण्डेयजी पहरेवालेको बुलाया गया। उन्होंने दाढ़ी हिला-हिलाकर कहा—गङ्गाराम रोज आधी रातको मुरलाके साथ उसका भाई बनकर अंतःपुरमें जाता था।

यह सुनकर गङ्गारामने कहा—महाराज! यह सम्भव नहीं है। मुरलाके भाईको ही इस व्यक्तिने वहाँ जाने दिया होगा!

तब पाण्डेयजीने उत्तर दिया कि वह गङ्गारामको भलीभाँति

पहचानते थे, पर कोतवालको वह चिढ़ा कैसे सकते थे? इस लिए चीन्हकर भी वह अनजान बन जाते थे।

गङ्गारामने देखा कि धीरे-धीरे मामला बिगड़ रहा है। एक आशा उसके मनमें यह उदय हुई कि मुरला स्वयं कभी इन बातोंको प्रकाशित नहीं करेगी, क्योंकि ऐसा करनेसे वह भी अपराधिनी समझी जायगी। यह सोचकर गङ्गारामने कहा—महाराज! मुरलाको बुलाकर पूछें तो सच बातें आप ही खुल जायँ।

बिचारा गङ्गाराम नहीं जानता था कि मुरलाको भी महारानी श्री नन्दा देवीने पहलेसे ही अपने हाथोंमें कर लिया था। मुरलाको समझा दिया था कि महाराज स्त्री-हत्या नहीं करते। तुझे मृत्युका भय नहीं है। वह स्त्रियोंको शारीरिक दंड भी नहीं देते। इसलिये तुझे सजाका कोई विशेष डर नहीं है। कुछ-न-कुछ तो सजा तेरी होगी ही, परन्तु यदि तू सच बात कह देगी तो तेरी सजा बहुत कम होगी। मुरला भी इन बातोंको समझ गयी थी; इसलिये उसने सच कहना ही उचित समझा। अतएव उसने सब बातें सच-सच कह दीं, कुछ भी छिपाया नहीं।

मुरलाकी बातें सुनकर गङ्गारामके सिरपर मानो वज्र गिर पड़ा, तथापि उसने आशा-त्याग नहीं किया। उसने कहा—महाराज! यह स्त्री अत्यन्त व्यभिचारिणी है। मैंने इसको नगरमें कई बार पकड़ा था तथा दंड भी दिया था। जान पड़ता है कि यह इसी कारण मिथ्या अभियोग मुझपर लगा रही है।

राजा—गङ्गाराम! फिर भला मैं किसकी बातपर विश्वास करूँ? क्या स्वयं महारानीकी बातें विश्वास-योग्य समझते हो?

गङ्गारामने मानो हाथोंमें स्वर्ग पाया। उसको निश्चय

विश्वास था कि रमा कभी भी इस सभामें नहीं आवेगी, और यदि आ भी जायगी तो इतने मनुष्योंके बीचमें कुछ कह न सकेगी। गङ्गारामने कहा—हाँ! अवश्य विश्वास-योग्य समझता हूँ। उनकी बातोंसे मैं यदि दोषी समझा जाऊँ, तो मुझे अवश्य उचित दंड दें।

राजाने अंतःपुरकी ओर देखा। तब गङ्गारामने विस्मित होकरके देखा कि बहुत धीरे-धीरे डरे हुए बालककी तरह, एक मलिन वेश-धारिणी रमणी घूँघट काढ़े सभामें आ रही है। जिसका रूप गङ्गारामके रोम-रोम में अङ्कित था, उसे देखते ही गङ्गारामने पहचान लिया। वह अत्यन्त भयभीत हो गया। दर्शक-मण्डलीमें बड़ा कोलाहल मच गया। शांति-रक्षकोंने फिर उन्हें सम्भाला। रमाने आकर पहले राजाको फिर गुरु चन्द्रचूड़को भूमिष्ट होकर प्रणाम किया और घूँघट खोलकर सबके सामने खड़ी हो गयी। उसके इस मलिन वेषमें भी रूप-राशि फूटी पड़ती थी। चन्द्रचूड़ने देखा कि राजा कुछ कह नहीं सकते, सिर नीचा किये बैठे हैं। तब उन्होंने ही रमासे कहा—महारानी! इस गङ्गारामका विचार हो रहा है। यह व्यक्ति क्या कभी आपके अन्तःपुरमें गया था? यदि गया हो तो बतलावें कि क्यों गया था, आपने इससे क्या कहा था, सब स्पष्ट कहें। राजाकी आज्ञा है, और मैं तुम्हारा गुरु हूँ मैं भी तुम्हें आज्ञा देता हूँ, सब बातें सच-सच कह दो। रमाने सिर ऊँचा करके गुरुसे कहा—मैं कभी झूठ नहीं कहूँगी। मैं यदि झूठ बोलती तो यह राजसिंहासन कभीका नष्ट हो गया होता।

बाहर दर्शक-मण्डली जय-ध्वनि कर उठी, जय, महारानी-की जय!

रमाने साहस पाकर कहा—मैं क्या कहूँ गुरुदेव ! मैं राज-महिषी हूँ—राजाका भृत्य मेरा भी भृत्य है—मैं जो आज्ञा-दूँगी राजाका भृत्य भला उसे पालन क्यों न करेगा ? मैंने राज-कार्यके लिये कोतवालको बुला भेजा था। कोतवाल आकर मेरी आज्ञा सुन गया था। उसका विचार ही क्या, और मुझे कहना ही क्या !

इन बातोंको सुनकर इस बार दर्शक-मण्डलीने जयध्वनि नहीं की। बहुतोंने मुँह फुला लिया, बहुतसे आपसमें काना-फूसी करने लगे—"कबूल है"। तब चन्द्रचूड़ने कहा—महारानी, ऐसा कौनसा राज-कार्य था जिसके लिये आपको रातके समय कोतवालको बुलाना पड़ा।

रमाने कहा—तब सब बातें सुनें। यह कहकर रमाने देखा कि पुत्र कहाँ हैं ? पुत्र सुसज्जित होकर धायकी गोदमें सामने बैठा था। उसका मुख देखनेसे रमाके हृदयमें साहस हुआ। तब उसने सब बातें विस्तारसे कहना आरम्भ किया।

पहले वह धीरे-धीरे दूरके संगीतकी भाँति कहने लगी, जिसको सबने नहीं सुना। बाहर दर्शक-मण्डली कहने लगी—माता! हमलोग कुछ नहीं सुन पाते—हम भी सुनना चाहते हैं। अतः रमा और भी कुछ स्पष्ट कहने लगी। उसके बाद जब वह पुत्र-विपत्तिकी शंकासे, इस साहसके काम करनेका वर्णन करने लगी और रह-रहकर पुत्रका चन्द्रमुख देखने लगी, तब मातृ-स्नेहके तरंगसे उसका हृदय भर गया और स्नेहकी तरङ्ग उठने लगी। उस समय उसका स्वर ऐसा जान पड़ता था जैसे कोई अप्सरा तीन तान सम्मिलित मन-मुग्धकारी संगीत गा रही हो। श्रोताओंके कानोंमें उसके शब्द अमृत-तुल्य जान पड़ने लगे। सब मुग्ध होकर उसकी बातें सुनने लगे। फिर

उसने सहसा धायके गोदसे पुत्रको लेकर सीतारामके चरणों-पर डाल दिया और हाथ जोड़कर पुनः कहना आरम्भ किया। महाराज! आपको और भी संतान हैं, पर मुझे और कोई नहीं है। महाराज! आपके पास राज है—परन्तु मेरा राज यही बालक है। आपके लिए धर्म है, कर्म है, यश है और स्वर्ग है, परन्तु मैं मुक्तकण्ठ से कहती हूँ कि मेरा धर्म, मेरा कर्म, मेरा यश और मेरा स्वर्ग केवल यही बालक है। महाराज! यदि मैं अपराधिनी होऊँ, तो मुझे दण्ड दे? यह सुनकर दर्शक-मण्डली आँखोंमें आँसू भरकर बार-बार जय-ध्वनि करने लगी। परन्तु सब जगह भले-बुरे दोनों ही प्रकारके लोग रहते हैं। इसलिये जब अधिकांश जनता जय-ध्वनि कर रही थी, उस समय बहुत लोग चुप थे। जब जय-ध्वनि बन्द हो गयी तब, कोई-कोई अर्ध-स्फुट स्वरसे कहने लगे—मुझे तो इन बातोंपर विश्वास नहीं होता। कोई-कोई वृद्धा कहने लगीं—रातको महलमें चुपचाप आदमी बुलाकर भी यह सती बनना चाहती है। कोई कहने लगे—राजा चाहे इन बातोंसे भुलावेमें आ जायँ, पर मैं तो इसपर विश्वास नहीं कर सकता। कोई-कोई कहने लगे—रानी होकर यह ऐसा काम करेगी तो, भला हम गरीब दुखिया क्या करेंगे?

यह सब बातें सीतारामके कानोंतक पहुँच गयीं। तब राजाने रमासे कहा—प्रजावर्ग तो तुम्हारी बातोंपर विश्वास नहीं करता।

रमाने यह सुनकर सिर नीचा कर लिया। उसके आँखोंसे आँसुओंकी प्रबल धारा बहने लगी। परन्तु उसने अपनेको सम्भालकर राजासे कहा—जब लोग मेरी बातोंपर विश्वास नहीं करते, तब मेरी एकमात्र गति यही है कि आपकी इस राज-

पुरीके कलंक-स्वरूप इस जीवनको अब न रक्खूँ। आप मेरे लिये चिता बनानेकी आज्ञा दें, मैं सबके सामने उसमें जल मरूँ। इसमें मुझे कुछ भी दुःख नहीं है। लोग मुझे कलंकिनी समझते हैं। इसलिये मरनेसे मेरा यह दुःख छूट जायगा। परन्तु, महाराज! आपसे एक निवेदन है कि, क्या आप भी मुझे अविश्वासिनी समझते हैं? यदि आप ऐसा समझते हैं तो (रमाके आँखोंसे अश्रुधारा फिर बहने लगी) मेरा जल-मरना भी वृथा होगा। आप यदि इन लोगोंके सामने कहें, कि मुझे तुम्हारे प्रति अविश्वास नहीं है, तो मेरे लिये यह चिता भी स्वर्ग-तुल्य होगी। महाराज! परलोकके उद्धार-कर्त्ता, भूदेव-तुल्य मेरे गुरुदेव सामने बैठे हैं। मैं उनके सम्मुख इष्टदेवको साक्षी मानकर कहती हूँ कि—मैं अविश्वासिनी नहीं हूँ। जो गुरुसे बढ़कर मेरे लिये पूज्य हैं, जो मनुष्य होकर भी देवतासे बढ़कर मेरे लिये पूज्य हैं, वही पतिदेवता, आप स्वयं मेरे सामने बैठे हैं। मैं पतिदेवताको साक्षी मानकर कहती हूँ कि मैं अविश्वासिनी नहीं हूँ। महाराज! इस नारी-देहको धारण करके जो कुछ देश-सेवा, ब्राह्मण-सेवा, दान, व्रत, नियम मैंने किये हैं, यदि मैं विश्वासघातिनी होऊँ, तो उन सबके फलसे वंचित हो जाऊँ। पति-सेवाकी अपेक्षा स्त्रियोंके लिये और कोई पूज्य नहीं है, मनसा-वाचा-कर्मणा मैंने आजतक जो कुछ आपके चरणोंकी सेवा की है उसे आपही जानते हैं। मैं यदि अविश्वासिनी होऊँ तो मैं उन सब कर्मोंके फलोंसे वंचित हो जाऊँ। मैंने इस जीवनमें जो कुछ आशा, जो कुछ भरोसा और जो कुछ कामना अथवा जो कुछ इच्छा की है—यदि मैं अविश्वासिनी होऊँ तो वह सब निष्फल हो जाय। महाराज! स्त्रियोंके लिए स्वामि-दर्शनसे बढ़कर न कोई पुण्य है और न कोई सुख, यदि

मैं अविश्वासिनी होऊँ तो इस जन्ममें उस सुखसे भी वंचित हो जाऊँ। जिस पुत्रके लिये मैंने यह कलंक मोल लिया, जिसके बराबर जगतमें और कोई प्रिय नहीं, यदि मैं अविश्वासिनी होऊँ तो मैं उस पुत्र-मुख-दर्शनसे भी चिरवंचित हो जाऊँ। महाराज! और अधिक मैं क्या कहूँ। यदि अविश्वासिनी होऊँ तो मैं जन्म-जन्मांतरमें भी नारी-जन्म-ग्रहण करके स्वामि और पुत्रके मुख-दर्शनसे वंचित रहूँ।

रमा और कुछ न कह सकी। छिन्न लताकी भाँति सभामें गिरकर मूर्छित हो गयी। दासियाँ उसे उठाकर अंतःपुरमें ले गयीं। धायके गोदमें बालक रोने लगा। सभाके भी सभी लोग रोने लगे। गंगारामके हाथ-पैरकी बेड़ियाँ बज उठीं, दर्शक-मण्डली घोर आँधीसे हिलते हुए समुद्रकी तरंगकी तरह चंचल होकर कोलाहल मचाने लगी। शांति-रक्षक अनेक उपाय करनेपर भी उन्हें शांत न कर सके।

उस समय चारो ओरसे आवाज उठने लगी कि 'देखें, अब गंगाराम क्या कहता है? क्या इन बातोंको भी वह मिथ्या कहेगा? और यदि वह इन बातोंको भी झूठ कहे तो आओ, हम सबलोग मिलकर उसे टुकड़े-टुकड़े कर डालें।' गंगारामने देखा कि यदि इस समय लोगोंका मन फिरा न सका, तो मेरी रक्षा नहीं। गंगाराम बुद्धिमान था, वह जानता था कि प्रजा जैसा कहेगी, राजा भी वैसाही करेंगे। इसलिये उसने राजाको सम्बोधन करके लोगोंके मन फिरानेवाली बातें कहनी आरम्भ कीं!

महाराज! बात यह है कि आप स्त्रियोंकी बातोंपर विश्वास करेंगे अथवा मेरी? महाराज! क्या आपके इस राजको स्त्रियोंने स्थापित किया है, या मेरे जैसे स्वामि-भक्त राज-कर्मचारियोंने? महाराज! सभी स्त्रियाँ कुमार्गकी ओर जा सकती

हैं। राजरानियाँ भी विपथ-गामिनी हो सकती हैं, राजरानि यदि विपथ-गामिनी हों तो राजाका कर्त्तव्य है कि वह उनको भी त्याग दे। विश्वासी सेवक कभी विपथ-गामी नहीं हो सकता। स्त्रियाँ अपना दोष छिपानेके लिये सेवकोंपर दोषा-रोपण कर सकती हैं। यह महारानी रातको न जाने किस-किसके साथ मिलकर मुझे दोषी ठहराती हैं, परन्तु इन बातोंका प्रमाण क्या? महाराज! मेरी रक्षा करें!

गंगाराम अपनी बातें समाप्त भी न कर पाया था कि वह अत्यन्त डरकर "महाराज रक्षाकरो, रक्षाकरो" कह अत्यन्त भयभीत हो व्याकुल होउठा। सबने देखा—गंगाराम थर-थर काँप रहा है। उस समय सभाने आश्चर्य्य और भयके साथ देखा कि, एक अपूर्व मूर्ति जटाजूट-धारिणी गेरुआ वस्त्र पहने ज्योतिर्मयी, साक्षात् सिंहवाहिनी दुर्गाकी तरह, हाथोंमें त्रिशूल लिये गंगारामको त्रिशूलकी नोकका लक्ष बनाकर अपनी तेज चालसे सभा-मंडप पार करके आरही हैं। उन्हें देखते ही समुद्रकी तरह चंचल जन-समूह एकाएक निस्तब्ध हो गया। गंगारामने एक दिन रातको, इसी मूर्तिको देखा था। आज फिर इस विपत्ति-कालमें जब वह छल-कपटसे निरपराधिनी रमाका सर्वनाश करना चाहता था, उस समय इस मूर्तिको देखकर उसने सोचा कि स्वयं दुर्गा उसका वध करनेके लिये आई हैं। इसीलिये वह भयसे व्याकुल होकर "रक्षाकरो, रक्षाकरो" के शब्द कह उठा था। इधर राजा और उधर चन्द्र-चूड़नेभी उस रात्रिमें देखी हुई देवी-तुल्य मूर्तिको देखकर पह-चान लिया और उसे नगरकी राजलक्ष्मी समझकर खड़े हो गये। उसी समय सभाके सभी लोग खड़े होगये।

जयन्तीने किसीकी ओर भी न देख, तेजीके साथ गङ्गारामके

मैंने आकर गङ्गारामकी छातीमें वह अभिमंत्रित त्रिशूलका नोक लगा दिया और केवल इतना ही कहा—अब कहो !

त्रिशूल केवल गङ्गारामके शरीरमें छू भर गया, पर तौभी उसका शरीर शिथिल होगया। गङ्गारामने सोचा—यदि मैं अब एक शब्द भी झूठ कहूँगा तो यह त्रिशूल मेरे हृदयको चीर डालेगा। उसने उस समय अत्यन्त भयभीत होकर नम्रतापूर्वक जो कुछ सच बातें थीं, सबके सामने कहनी आरम्भ की। जबतक उसकी सब बातें समाप्त न हो गयीं तबतक जयन्तीने उसकी छातीपरसे त्रिशूल न हटाया। गङ्गारामने उस समय रमाकी निर्दोषिता, अपना मोह, लोभ और फौजदारके साथ मिलना तथा विश्वासघात आदिका सब ब्यौरेवार वर्णन कह सुनाया।

तब जयन्ती वापस चली गयी। जिस समय वह जाने लगी, उस समय सभाके सभी लोगोंने सिर झुकाकर उस देवी-तुल्य मूर्तिको प्रणाम किया। सबने सम्मान-सहित उसके लिए मार्ग छोड़ दिया। कोई उससे कुछ पूछने अथवा उसके साथ जानेका साहस न कर सका। वह किधर और कहाँ चली गयी, इसका पता कोई न लगा सका।

जयन्तीके चले जानेपर राजाने गङ्गारामसे कहा—अब तुमने अपना सब अपराध अपने ही मुखसे स्वीकार कर लिया। ऐसे कृतघ्नको मृत्युके अतिरिक्त और कोई दंड देना उचित नहीं है। इसलिये तुम राजदंडसे प्राण-त्याग करनेके लिये तैयार हो जाओ। गङ्गारामने फिर कुछ न कहा। सिपाही उसे पकड़कर ले चले। मृत्यु-दंडकी आज्ञा सुनकर सबलोग चकित होगये। कोई कुछ न बोला। सब चुपचाप अपने-अपने घर चले गये। घर जाकर सबने रमाको साक्षात लक्ष्मी कहकर उसकी प्रशंसा की। रमाका सब कलंक मिटगया।

चौथा परिच्छेद

राजाने मुरलाका सिर मुड़ा गधेपर बिठाकर नगरके बाहर निकाल देनेकी आज्ञा दी। उनकी यह आज्ञा उसी समय पालन की गयी। मुरलाके जाते समय एक झुंड बालकोंका और कुछ रसिक लोग उसके पीछे दल बाँधकर ताली पीटते और गीत गाते उसके साथ चले। गंगाराम-जैसे कृतघ्नके लिये शूलीपर चढ़ानेके अतिरिक्त दूसरा दंड उस समयकी राजनीतिमें नहीं था। इसलिये उसके प्रति यही आज्ञा दी गयी। परन्तु उसकी मृत्यु कुछ दिनोंके लिये रोक दी गयी, क्योंकि राजाका राज्याभिषेक शीघ्रही होनेवाला था। सीताराम अपने बाहुबलसे हिन्दू-राज्य स्थापित करके राजा हुए थे, किन्तु उनका अभिषेक अबतक नहीं हुआ था। हिन्दू-शास्त्रानुसार वह होना अत्यन्त आवश्यक था। चन्द्रचूड़ने जब यह प्रसंग उठाया तो सीताराम भी उनसे सहमत होगये। उन्होंने सोचा कि इस प्रकारका एक उत्सव करनेसे प्रजावर्ग सन्तुष्ट होगी और उनकी राज्यभक्ति भी बढ़ेगी। इसलिये बड़े समारोहके साथ राज्याभिषेककी तैयारी होने लगी। नन्दा और चन्द्रचूड़ दोनोंने ही सीतारामसे अनुरोध किया कि इस समय एक मंगल कार्य उपस्थित है, ऐसे समय गंगारामको शूली चढ़ाना उचित नहीं है। क्योंकि यदि उससे अमंगल न भी हो, तो भी लोगोंके मनके आनन्दके कम होजानेकी सम्भावना है। इन बातोंसे राजा भी सहमत होगये। असल बात यह थी कि सीतारामकी भी आंतरिक इच्छा नहीं थी, कि गंगारामको शूली दी जाय, परन्तु

राज-धर्म-पालनके लिये और राज-शासनके लिये आवश्यक समझकर ही उन्होंने यह आज्ञा दी थी। इच्छा न होनेका कारण यह था कि गंगाराम श्रीका भाई था। सीताराम श्रीको अबतक भूले न थे। इतने दिनोंतक बहुत खोजनेपर भी न पाकर अन्तमें निराश होकर राज-काजमें मन लगाकर भुलानेकी चेष्टा कर रहे थे। अतएव फिर राजकी ओर मन लगानेका उद्योग यह कर रहे थे। इसीलिये वह दिल्ली जाकर बादशाहके दर्बारमें उपस्थित हुए थे और बादशाहको सन्तुष्ट करके सनद प्राप्त किया था। इसीलिये उत्साहके साथ संग्राम करके उन्होंने 'भूषणा' पर अधिकार प्राप्त किया था और बंगालके दक्षिणमें इस समय उनका पूर्ण अधिकार हो गया था। परन्तु इतना होनेपर भी उनके हृदयपर श्रीका ही सम्पूर्ण अधिकार बना हुआ था। इसी कारण गंगारामका शूलीपर चढ़ाना इस समय रोक दिया गया। इधर अभिषेककी धूम मचगयी। बड़े समारोहसे तैयारी होने लगी। देश-विदेशसे लोग आ-आकर नगरमें भर गये। राजा, राजपुरुष, ब्राह्मण, पंडित, अध्यापक, ज्योतिषी, छोटे-बड़े बुलाये और बिना बुलाये, भिक्षुक सन्यासी साधु और असाधु लोगोंसे नगर भर गया। इन असंख्य मनुष्योंके मुख्य कामोंमें सबसे बड़ा काम प्रति दिनका भोजन था। भक्ष्य पदार्थ—पूड़ी, मिठाई, दही, दूधसे मानों नगरमें कीचड़ होगया। सीतारामके सब केलेके पेड़, पत्ता कट जानेके कारण, ठूठे हो गये थे। फूटे पुरवा, कसोरा और पत्तलोंसे किलेकी खाई और मधुमति नदी मानो भर गयी। रात-दिन बाजा-गाजा नाच-तमाशेके कारण लोगोंका सिर दर्द करने लगा।

इस अभिषेकका मुख्य काम दान देना था। सीताराम अभिषेकके दिन दिनभर कभी अपने हाथसे, कभी अपने अधीन

सेवकोंके हाथसे, सोना, चाँदी, वर्तन और वस्त्र देने लगे। बाहरके इतने मनुष्य आये थे कि दिनभर दान देते रहनेपर भी यह काम समाप्त नहीं हुआ। आधी राततक इसी प्रकार दान करके सीताराम अब वहाँ न ठहर सके। शेष मनुष्योंके विदा करनेका भार अपने कर्मचारियोंपर छोड़कर वह विश्राम करने अंतःपुर चले गये। जाती समय उन्होंने भय और विस्मय-के साथ देखा कि महलके दर्वाजेपर वही त्रिशूलधारिणी सुवर्णमयी राजलक्ष्मीकी मूर्ति खड़ी है।

राजाने भक्तिपूर्वक साष्टांग प्रणाम करके कहा—माँ! आप कौन है? मुझे दया कर बतलावें।

जयन्ती—मैं भिखारिणी हूँ। आपसे भिक्षा माँगने आई हूँ।

राजा—माता! आप मुझसे छल क्यों करती हैं? आप देवी हैं। मैंने आपको पहचान लिया। आप साक्षात कमला हैं। आप मेरे प्रति प्रसन्न हैं।

जयन्ती—महाराज! मैं एक साधारण स्त्री हूँ, अन्यथा आपके पास भिक्षा माँगने न आती। सुना है कि आज आप जो कोई जो कुछ माँगता है उसे वही देते हैं। मुझे आशा है कि मेरी मनोकामना आज निष्फल न होगी।

राजा—माता! आपके लिये ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो मैं न दे सकूँ। आपने एक बार मेरे राजकी रक्षा की थी, दूसरी बार मेरे कुल और मर्यादाकी रक्षा की है। आप चाहे देवी हों, अथवा मानवी, आपके लिये मैं अपना सभी कुछ दे सकता हूँ। आप क्या चाहती हैं, आज्ञा दें, मैं अभी उसे आपके सम्मुख उपस्थित करूँ।

जयन्ती—महाराज! गङ्गारामको शूली चढ़ानेकी आज्ञा हुई है और मैं उसकी प्राण-भिक्षा चाहती हूँ।

राजा—आप !

जयन्ती—क्यों महाराज, इसमें आश्चर्य्य क्या है !

राजा—गङ्गारामकी जाति नीच है। उसपर आपकी दया कैसे हुई ?

जयन्ती—मैं भिखारिणी हूँ, मेरे लिये सब बराबर हैं।

राजा—परन्तु आप ही तो उस दिन उसको त्रिशूलसे मारना चाहती थीं ? आपके ही द्वारा दो बार उसका बुरा अभिप्राय प्रकाशित हुआ था ? अधिक क्या कहूँ, यदि आप महारानीके प्रति उस दिन दया न करतीं, तो वह कदापि अपना अपराध स्वीकार न करता, अतएव उसको प्राण-दण्डकी आज्ञा भी न दी जा सकती। अब आप उससे विपरीत कार्य्य क्यों करना चाहती हैं ?

जयन्ती—महाराज ! मेरे ही कारण उसको प्राण-दण्डकी आज्ञा मिली थी। इसीलिये मैं ही उसकी प्राण-भिक्षा माँग रही हूँ। धर्मोद्धारके लिये, त्रिशूलसे अधर्मीके प्राण नाश करनेमें भी मैं कोई पाप नहीं समझती। परन्तु इस समय धर्मकी रक्षा हो गयी है। अब मनुष्य-हत्याके पापसे उद्धार होनेके लिये मैं व्याकुल हूँ। इसलिये गङ्गारामका प्राण-दान आप मुझे दें।

राजा—आपके लिये अदेय कुछ भी नहीं है। आप जो चाहती हैं उसे मैं आपको देता हूँ। गङ्गाराम इसी समय छोड़ दिया जायगा। परन्तु माता ! मैं आपको भिक्षा दूँ, इस योग्य मैं नहीं हूँ। मैं आपको भिक्षा नहीं दूँगा। गङ्गारामका जीवन मैं आपके हाथ बेचूँगा। दाम देकर उसे आपको खरीदना होगा।

जयन्ती (मुस्कुराकर)—क्या दाम देना होगा, महाराज ?

राज-भंडारमें ऐसे कौनसे धनका अभाव है जिसको यह भिखा-रिणी दे सकेगी ?

राजा—राज-भण्डारमें राजाका जीवन नहीं है, आपने उस मधुमति नदीके घाटपर तोपके पास खड़ी होकर स्वीकार किया था कि मैं जिसे खोज रहा हूँ उसे पाऊँगा। उसी अमूल्य वस्तुको मुझे दें और उसीके बदलेमें मैं गङ्गारामका जीवन आपके हाथ वेचूँगा।

जयन्ती—महाराज ! वह अमूल्य वस्तु क्या है ? आपको राज तो मिल गया ?

राजा—जिसके लिये मैं राज भी त्याग कर सकता हूँ, मैं वही चाहता हूँ।

जयन्ती—वह क्या है ?

राजा—श्री नामकी मेरी पहली रानी, मेरा जीवन-स्वरूप। आप देवी हैं, सब कुछ दे सकती हैं। मेरा जीवन मुझे देकर उसीके मूल्यमें गङ्गारामका जीवन खरीद लें।

जयन्ती—यह क्या महाराज ! आपकी तरह धर्मात्मा महाराजाधिराजके जीवनके साथ उस नराधम पापीके जीवन-का भला क्या बदला हो सकता है ? महाराज, कानी कौड़ीके बदले रत्नोंका ढेर !

राजा—माता ! बालकको जननी जितना देती है, क्या वह भी उतना ही कभी माताको दे सकता है ?

जयन्ती—महाराज ! आज आप अन्तःपुरका सब द्वार खुला रखें और अन्तःपुरके पहरेदारोंको आज्ञा दे देवें कि त्रिशूल देखते ही वे आनेवालेको मार्ग दे देवें। आपके शयन-गृहमें आज रातको ही मूल्य पहुँच जायगा। आप गङ्गारामको छोड़नेकी आज्ञा दें।

राजाने हर्षके साथ कहा—गङ्गारामको अभी मुक्त कर देता हूँ। यह कहकर अनुचरवर्गको आज्ञा दी कि गङ्गारामको अभी छोड़ दो।

जयन्ती—मैं क्या इन्हीं अनुचरोंके साथ गङ्गारामके कारागारमें जा सकती हूँ?

राजा—आप जो चाहें कर सकती हैं। आपके लिये कुछ भी मनाही नहीं है।

पाँचवाँ परिच्छेद

अन्धेरे कुएँकी तरह गहरे कारागारमें गंगाराम हथकड़ी-बेड़ियोंसे जकड़ा हुआ अकेला पड़ा है। आधीरात हो जानेपर भी उसे नींद नहीं आई। जबसे उसने सुना है कि उसे शूलीपर चढ़ाया जायगा, तबसे न तो उसे नींद है और न भूख। प्राण क्षणभरमें निकल सकते हैं, मृत्यु इतनी भयंकर नहीं है। परन्तु कारागारमें अकेले पड़े रहकर रातदिन सामने मृत्युका चित्र देखने और उसीके ध्यानमें निमग्न रहनेकी अपेक्षा कठिन दण्ड संसारमें और कोई नहीं है। गंगारामको उस समय ऐसा जान पड़ता था कि मानो उसे कोई पल-पल भरमें शूलीपर चढ़ा रहा है। इससे बढ़कर दण्ड और क्या हो सकता है? मृत्युकी चिन्ता करते-करते उसकी सब चित्त-वृत्तियाँ निस्तेज हो गयी थीं। उसका मन अन्धकारमें डूब गया था, यहाँतक कि उसे क्लेशके अनुभव करनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी थी। उसके मनमें केवल दो बातें अबतक जाग रही थीं—भैरवीका भय, और रमापर क्रोध। भयकी अपेक्षा उसके मनमें क्रोध ही प्रबल है।

गङ्गाराम अब रमाके प्रति आसक्त नहीं है, इस समय गङ्गाराम-से बढ़कर रमाका आन्तरिक शत्रु और कोई नहीं है।

गङ्गाराम इस समय यदि रमाको पा जाय तो वह उसे अपने नखोंसे विदीर्ण करनेके लिये तैयार हो जाय। गङ्गारामको जब कुछ सोचनेकी शक्ति उत्पन्न हुई तब वह यही सोचने लगा कि मरतीसमय एक बार किस उपायसे रमाका सर्वनाश करके मरूं। शूलीपर चढ़नेके समय रमाके सम्बन्धमें कौनसा अश्लील अपवाद फैलाकर मरूँ; गङ्गाराम यही सोच रहा था। जिस समय उसके मनसे इस चिन्ताका जाल टूट जाता था, उस समय वह जड़-पिंडकी तरह चुपचाप पड़ा रहता था। कभी-कभी वह कारागारके बाहर अभिषेकके उत्सवका कोलाहल सुनता था। जो रसोईदार ब्राह्मण रोज उसके लिये नमक-भात ले आता था, उससे गङ्गारामने इस उत्सवका वृत्तान्त सुना था। जब उसने सुना कि राज्यके सब लोग एक बड़े भारी उत्सवमें निमग्न हैं—केवल वही अकेला इस अन्धेरे कारागारमें कीड़े-मकोड़ोंसे पीड़ित होकर पड़ा है, उस समय वह मनही मन कहने लगा कि रमाको भी ऐसा ही स्थान कब मिलेगा।

जैसे अन्धकारमें बिजली चमक उठती है, उसी प्रकार गङ्गा-रामके मनमें भी एकाएक एक बात याद आ जाती थी। यदि श्री जीती होती! श्रीने एकबार मेरे प्राण बचाये थे, इस बार भी यदि वह चाहती तो क्या मेरे प्राणोंकी भिक्षा उसे न मिलती, मैं चाहे कितना ही बड़ा पापी क्यों न होऊँ, श्री मुझे कभी त्याग न कर सकती। हा! मेरी ऐसी बहन भी मर गयी!

आधी रातको एकाएक कारागारका द्वार झनझनाकर खुल गया। गङ्गारामके प्राण सूख गये। उसने सोचा, इस गम्भीर

रात्रिमें कारागारका द्वार क्यों खुल रहा है। क्या और भी कोई नई विपत्ति आनेवाली है ?

आगे-आगे दीपक लिये हुए सिपाहियोंने प्रवेश किया। गङ्गाराम चकित होकर उनकी ओर देखने लगा, उनसे कुछ पूछ न सका। इसके उपरान्त उसने जयन्तीको देखा। उसको देखते ही वह चिल्ला उठा, "रक्षा करो, रक्षा करो" मैंने क्या किया है ?

जयन्तीने कहा—वत्स ! तुमने क्या किया है, यह तो तुम्हीं जानते हो। परन्तु मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी। श्री तुझे याद है न?

गङ्गाराम—श्री ! श्री यदि जीती होती !

जयन्ती—श्री जीती है। उसीके अनुरोधसे मैंने महाराजसे तुम्हारे जीवनकी भिक्षा माँग ली है। भिक्षा मुझे मिलगयी है, तुमको छुड़ाने आई हूँ। भागो, गंगाराम यहाँसे शीघ्र भागजाओ ! कल सवेरे इस राज्यमें मुख न दिखाना, नहीं तो मैं तुम्हें बचा न सकूँगी। गङ्गारामने इन बातोंको समझा या नहीं इसमें सन्देह है। पर उसने इन बातोंपर विश्वास नहीं किया। उसने देखा कि सिपाही उसकी हथकड़ी-बेड़ी खोल रहे हैं। वह चुपचाप देखने लगा। उसने पूछा माता ! तुमने क्या मेरी रक्षा की ?

जयन्तीने कहा—बेड़ी खुल गयी, अब यहाँसे चले जाओ। गङ्गाराम तुरंत वहाँसे भाग निकला और उसी रात्रिके ही समय उस नगरको छोड़कर चला गया।

छठवाँ परिच्छेद

गङ्गारामके छोड़नेको और जयन्तीके कथनानुसार राज-महलके द्वार खुले रखनेकी आज्ञा देकर सीताराम शयन-गृहमें आकर पलंगपर लेट गये। नन्दा उसी समय आकर पैर दबाने लगी। राजाने पूछा—रमा कैसी है?

रमाकी पीड़ा कुछ अधिक नहीं है, यह सोचकर नन्दाने कहा—कुछ ऐसी बुरी हालत तो नहीं है।

राजा—आज मैं अधिक रात्रि होजानेके कारण उसे देखने न जासकूँगा। इस समय मैं बहुत थक गया हूँ, मेरे बदले आज तुम उसके पास चली जाओ, मैं उसकी जिस प्रकार सेवा करता वैसी ही तुम भी करना, और मैं जिस कारण आज वहाँ नहीं जा सकता, वह उससे कह देना।

इन बातोंको सुनकर बहुतसे पाठक सीतारामको धिक्का-रेंगे। परन्तु सीताराम अब वही सीताराम नहीं है। जिस सीतारामने हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करनेके लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था, वही सीताराम आज राजपालन करना छोड़ श्रीकी खोजमें लग गये हैं। जिस सीतारामने अपने प्राण देकर भी शरणागत गङ्गारामके प्राणोंकी रक्षा की थी, उसी सीतारामने आज राजा होकर राजनीतिके ज्ञाता होकर भी श्रीके लोभसे गंगरामको छोड़ दिया। जो प्रजावत्सल था, वही आज आत्मवत्सल होगया।

नन्दा समझ गयी कि राजा आज अकेले रहना चाहते हैं। वह बिना कुछ कहे वहाँसे चली गयी। तब सीताराम पलंगपर पड़े-पड़े श्रीकी बाट जोहने लगे।

सीताराम दिनभर आज परिश्रम करते-करते थक गये थे। और किसी दिन ऐसी दशामें सेजपर पड़तेही उन्हें नींद आ जाती, परन्तु आजकी बात निराली है। जिसके लिये राज्य-सुख और राज्यका भार छोड़कर इतने दिनोंतक देश-देश और नगर-नगरमें भ्रमण किया है, जिसकी चिन्ताने अग्निकी तरह रात-दिन उनके हृदयको जलाया है, आज उसीसे भेंट होगी। इसलिये सीताराम जागते रहे।

परन्तु निद्रा देवी भी भुवन-विजयिनी हैं। चाहे कोई कितनाही विपत्ति-ग्रस्त क्यों न हो, कभी-न-कभी उसे निद्रा आही जाती है। सीताराम विपति-ग्रस्त नहीं है, वह सुखकी आशामें निमग्न हैं। सीतारामको एक बार तनिकसी झपकी लग गयी। परन्तु मनमें जब चंचलता रहती है, तब निद्रा अधिक देरतक नहीं ठहरती। क्षणभरमें ही सीतारामकी आँखे खुल गयीं। आँख उठाकर उन्होंने देखा तो सामने गेरुआ वस्त्र और रुद्राक्षकी माला पहने बाल खोले एक सुन्दर मूर्ति दिखाई पड़ी।

सीतारामने पहले उसे जयन्ती समझकर अत्यन्त घबड़ा-हटके साथ पूछा—क्यों? श्री कहाँ है? परन्तु तुरन्त ही उन्होंने देखा कि यह जयन्ती नहीं, श्री है? श्रीको पहचानते ही, श्री! श्री! ऐ श्री! ऐ मेरी श्री! कहकर जोरसे पुकारते हुए सीता-रामने उठकर दोनों हाथ फैला दिया। परन्तु उस समय उनका सिर घूमने लगा, वह मूर्छित होकर गिर पड़े। क्षणभरमें आप ही आप उनकी मूर्च्छा भंग हुई।

तब सीताराम मुँह ऊपरको उठा टकटकी लगाकर श्रीकी ओर देखने लगे। उस समय उनके मुखसे कोई बात नहीं निकल रही थी। जान पड़ता था कि आँखोंकी तृप्ति हुये विना

मुँहसे कोई बात नहीं निकलेगी। देखते-देखते उनका आनन्दसे विकसित मुख-मंडल उतना प्रफुल्लित न रहा। उनके मुहँसे एक लम्बी साँस निकल पड़ी। राजाने मेरी श्री कहकर पुकारा था, परन्तु जान पड़ता है कि उन्होंने देखा कि यह मेरी श्री नहीं है। उन्होंने देखा कि स्थिर मूर्ति धैर्य्य-शालिनी, अश्रु-विन्दुसे शून्य, प्रकाशमान रूप-रश्मिसे घिरी हुई महामहिमामयी कोई देवीकी प्रतिमा है। यह श्री नहीं है!

हाय! मूर्ख सीताराम तो अपने लिये रानी खोजता था—वह इस देवीको लेकर क्या करेगा?

सातवाँ परिच्छेद

राजाकी बातें श्रीने सब सुनीं, और श्रीकी सब बातें राजाने भी सुनी। जिस प्रकार सर्वस्व त्यागकर सीताराम श्रीके लिए देश-देशांतरमें घूमते रहे, उन सब बातोंको सीतारामने श्रीसे कहा। श्रीने अपनी बातें भी कुछ-कुछ कहीं, परन्तु सब नहीं।

इसके उपरान्त श्रीने पूछा—अब मुझे क्या करना होगा?

यह प्रश्न सुनकर सीतारामकी आँखोंमें आँसू भर आये। इतने दिन बाद स्वामीको पाकर श्री पूछती है कि अब मुझे क्या करना होगा! सीतारामने सोचा, उत्तर दे दूँ 'वृक्षपर रस्सी लटका दो, मैं उसे गलेमें डालकर फाँसी लगालूँ'।

परन्तु यह न कहकर सीतारामने कहा—मैं आज पाँच वर्षोंसे अपने लिये रानी खोज रहा हूँ। अब तुम मेरी राज-महिषी होकर राज्यपुरीको सुशोभित करो।

श्री—महाराज! मैंने नन्दाकी प्रशंसा बहुत सुनी है।

तुम्हारा सौभाग्य है कि तुमने ऐसी रानी पाया है। अब दूसरी रानीकी चाहना न करो।

सीताराम—तुम बड़ी हो। नन्दा चाहे कैसी ही हो, अपना पद तुम क्या नहीं ग्रहण करती?

श्री—जिस दिन तुम्हारी रानी होनेसे मैं वैकुण्ठकी लक्ष्मी होना भी न चाहती, वह दिन मेरा चला गया।

सीताराम—यह क्या? चला क्यों गया? कैसे चला गया?

श्री—मैं संन्यासिनी हूँ, मैंने सब कर्मोंका त्याग कर दिया है।

सीताराम—सुहागिनी स्त्रियोंको संन्यास ग्रहण करनेका अधिकार नहीं है। पति-सेवा ही उनका मुख्य धर्म है।

श्री—जिसने सब कर्मका त्याग कर दिया है, उसके लिये पति-सेवा भी धर्म नहीं है, देव-सेवा भी उसका धर्म नहीं है।

सीताराम—कोई सब कर्मोंका त्याग नहीं कर सकता। तुम भी ऐसा नहीं कर सकती। गंगारामका जीवन बचाकर क्या तुमने कर्म नहीं किया? मुझसे मिलकर क्या तुमने कर्म नहीं किया?

श्री—किया है, परन्तु ऐसा करनेसे मेरा संन्यास भ्रष्ट होगया है, यदि एक बार धर्म भ्रष्ट होगया तो क्या मैं सदाके लिये धर्म-भ्रष्ट हो जाऊँ?

सीताराम—स्वामीके साथ रहना स्त्रियोंके लिये क्या धर्म-भ्रष्ट होना है। ऐसी बुरी शिक्षा तुमको किसने दी? चाहे जिसने दी हो, पर इसका उपाय मेरे हाथ है। मैं तुम्हारा स्वामी हूँ, तुम्हारे ऊपर मेरा अधिकार है। उसी अधिकारके भरोसे मैं तुम्हें जाने न दूँगा।

श्री—तुम मेरे स्वामी हो, और तुम मेरे राजा भी हो।

इसके अतिरिक्त तुमने मेरा उपकार किया है, इस कारण यदि तुम मुझे जाने न दोगे तो मैं जा न सकूँगी।

सीताराम—मैं स्वामी हूँ, मैं राजा हूँ और मैं उपकारी हूँ, इसीसे मैं जाने न दूँगा तो तुम जा न सकोगी। पर यह क्यों नहीं कहती कि मैं तुमको प्यार करता हूँ, इसीसे मैं यदि तुम्हें न छोड़ूँ तो तुम जा न सकोगी? स्नेहका वन्धन भला कैसे काटोगी?

श्री—महाराज! मेरा वह भ्रम अब दूर हो गया। अब मैंने समझ लिया है कि जो प्रेम करता है, उसे उस प्रेम करनेमें सुख होता है। पर जिसपर प्रेम किया जाता है, उसे उस प्रेमसे क्या लाभ? तुम मिट्टीके ठाकुर बनाकर उसपर फूल-चन्दन चढ़ाते हो, तुम्हें उससे अवश्य सुख होता है, परन्तु उस मिट्टीके ठाकुरको भला उससे क्या लाभ?

सीताराम—कैसी भयानक बात है!

श्री—भयानक नहीं है। यह बात अमृतमयी है। ईश्वर सर्वव्यापक है। ईश्वरमें प्रीति करना ही जीवोंके लिये सुख और धर्म है। इसलिये सब जीवोंपर प्रेम करना चाहिये। परन्तु ईश्वर निर्विकार है, उसके लिये सुख-दुःख नहीं है। ईश्वरका जो अंश आत्मा और जीवमें है वह भी वैसा ही है। ईश्वरमें अर्पित जो प्रीति है उससे उसको सुख-दुःख कुछ नहीं होता। परन्तु प्रेम करनेसे हमलोग जो सुखी होते हैं, यह केवल मायाके कारण!

सीताराम—श्री! मैं देखता हूँ, किसी पाखंडी संन्यासीके हाथमें पड़कर अज्ञानवश तुमने कुछ थोड़ीसी व्यर्थकी बातें रट ली हैं। ऐसी बातें स्त्रियोंके मुखसे अच्छी नहीं लगतीं। जो अच्छी बातें हैं, उन्हें मैं बतलाता हूँ, सुनो। मैं तुम्हारा स्वामी हूँ, मेरे साथ रहना ही तुम्हारा धर्म है। तुम्हारे लिये और कोई

दूसरा धर्म नहीं है। मैं राजा हूँ, सबके धर्मकी रक्षा करना ही मेरा कर्तव्य है। और स्वामीका भी कर्तव्य है कि स्त्रीको धर्म-मार्गपर चलावे। इसलिये तुम्हारे धर्ममें मैं तुम्हें प्रवृत्त करूँगा। अब मैं तुम्हें जाने न दूँगा।

श्री—यह तो मैंने पहले ही कहा है कि तुम मेरे स्वामी हो, तुम राजा हो और तुम उपकारी हो। तुम्हारी आज्ञा मुझे शिरोधार्य्य है। परन्तु मुझे इतना ही कहना है कि मुझसे आपको सुख न मिलेगा।

सीताराम—तुमको देखनेसे ही मैं सुखी होऊँगा।

श्री—और एक भिक्षा मेरी यह है कि यदि आप मुझे अपने घर रखना चाहते हैं, तो मुझे इस राजमहलमें स्थान न देकर मेरेलिये एक पृथक् कुटी तैयार करा दें। मैं संन्यासिनी हूँ, राजमहलमें मैं सुखसे न रह सकूँगी। और इससे लोग आपकी भी हँसी उड़ावेंगे।

सीताराम—और कुटीमें राजमहिषीको रखनेसे क्या लोग हँसी न उड़ावेंगे?

श्री—वहाँ मुझे कोई राजमहिषी न समझेगा।

सीताराम—क्या मेरे साथ तुम्हारी भेंट न होगी?

श्री—यह आपकी इच्छापर निर्भर है।

सीताराम—तुम्हारे साथ मैं भेंट करूँगा और तुम राज-महिषी नहीं हो, यह जाननेपर लोग तुम्हें क्या कहेंगे?

श्री—जानती हूँ, लोग मुझे राजाकी उपपत्नी समझेंगे। महाराज! मैं संन्यासिनी हूँ, मुझे अपने मानापमानका विचार नहीं है। लोग जो चाहें कहें, मेरा मान-अपमान आपके ही हाथ है!

सीताराम—सो कैसे?

श्री—मैं तुम्हारी सहधर्मिणी हूँ, मेरे साथ धर्माचरणके सिवा अधर्माचरण न करियेगा। धर्मसे भिन्न जो इन्द्रिय-परितृप्ति है वह अधर्म है। इन्द्रिय-तृप्ति पशुवृत्ति है। पशुवृत्तिके लिये विवाहकी व्यवस्था ऋषियोंने नहीं की है। पशुओंका विवाह नहीं होता। धर्मके ही लिये विवाह किया जाता है। राजर्षि लोग कभी शुद्ध चित्त हुये बिना सहधर्मिणीका सहवास नहीं करते थे। इन्द्रिय-परायणता पाप है। आप जब निष्पाप होकर शुद्ध चित्तसे मुझसे वार्तालाप करेंगे; तब मैं इस गेरुवे वस्त्रको छोड़ूँगी। जबतक मैं इस गेरुवे वस्त्रको न छोड़ूँ, तबतक, महाराज! तुमको पृथक आसनपर ही बैठना होगा।

सीताराम—मैं तुम्हारा प्रभु हूँ, मेरी ही बात चलेगी।

श्री—एक बार चल सकती है, क्योंकि तुम बलवान् हो। परन्तु मेरा भी एक बल है। मैं वनवासिनी हूँ, वनमें हमलोगोंको अनेक विपत्तियाँ उठानी पड़ती हैं। ऐसी विपत्ति भी कभी-कभी आ पड़ती है, कि उससे उद्धार नहीं हो सकता। उस समय अपनी रक्षाके लिये हम लोग अपने साथ विष रखती हैं। मेरे पास भी विष है। आवश्यकता पड़नेपर मैं उसे खा लूँगी।

हाय! यह श्री तो सीतारामकी श्री नहीं है!

आठवाँ परिच्छेद

सीताराम यह समझकर भी न समझ सके। उनके मनमें किसी प्रकार भी बोध न हो सका। जिसका प्रेमपात्र मर जाता है, वह भी मृत देह के पास बैठकर कुछ देरतक विश्वास नहीं करता कि अब उसमें प्राण नहीं हैं। पागल लियरकी तरह दर्पण खोजता फिरता है। कि देखें दर्पणमें निःश्वासका दाग

पड़ता है या नहीं। सीताराम इतने दिनोंतक मनमें श्रीकी एक मूर्ति गढ़कर उसकी आराधना कर रहे थे। बाहरकी श्री चाहे जैसी हो, परन्तु भीतरकी श्री वैसी ही है। बाहरकी श्री-को ही तो सीतारामने हृदयमें बिठा रखा था, वह बाहरकी श्री तो बाहर ही है, तब भला हृदयकी श्रीसे उसमें भेद क्या? भेद समझकर सीताराम एक बार भी विचार कर न सके। लोगोंका विश्वास और सब बातोंमें चाहे जो हो, पर लोग समझते हैं कि मनुष्य जैसा है वैसा ही रहता है। परन्तु मनुष्य कितनी बार मरता है, उसे लोग समझ नहीं सकते। एक ही देहमें कितनी बार पुनर्जन्म होता है, इसका कभी ध्यान भी नहीं आता। सीतारामने यह नहीं समझा कि, वह श्री तो मर गयी यह किसी दूसरी श्रीने उसी श्रीके शरीर में जन्म ग्रहण किया है। उन्होंने सोचा कि यह श्री मेरी ही श्री है। इसीलिये श्रीकी कठोर बातों-पर भी उन्होंने ध्यान नहीं दिया। ध्यान देनेकी शक्ति भी उस समय उनमें न थी। श्रीको छोड़नेपर सब कुछ छोड़ना पड़ता।

श्री किसी प्रकार भी राजमहलमें रहनेपर राजी न हुई। तब सीतारामने चित्त-विश्राम नामका एक छोटा सा मनोहर प्रमोद-भवन श्रीके रहनेके लिये बनवा दिया। श्री वहाँ व्याघ्र-चर्म बिछाकर जा बैठी। राजा रोज उससे मिलने जाने लगे। पृथक आसनपर बैठकर उससे बातचीत करके लौट आते थे। इससे राजाके लिये बड़ा विषमय फल फलने लगा।

बातचीत किस प्रकारकी होती थी? श्रीके लिये अबतक उन्होंने जो दुःख उठाया था, श्रीके सिवा उनके जीवनमें और कुछ प्रिय नहीं है, राजा यही सब प्रेमकी कहानी कहते थे। किन देशोंमें कितने आदमी उसको खोजनेके लिये भेजे थे, किन-किन देशोंमें स्वयं खोजते फिरे, यही सब बातें नित्य होती

थीं। कितने ही पर्वतोंकी, कितने ही जंगलोंकी और कितने ही जंगली पशु-पत्ती तथा फल-फूलोंकी चर्चा श्री बराबर किया करती थी। परमहंस ब्रह्मचारियोंकी बातें, कितने ही धर्म अधर्म, कर्म अकर्मकी बातें, कितने ही पौराणिक उपन्यासोंकी बातें, कितने ही देश-विदेशके राजाओंकी बातें, तथा कितने ही देशाचार और लोकाचारकी बातोंकी आलोचनाएँ भी हुआ करती थीं।

सुनते-सुनते अलग आसनपर बैठे रहनेपर भी राजाके लिये बड़ी कठिनाई उपस्थित हुई। श्रीकी बातें बड़ी मनोमोहिनी थीं। और उसकी बातोंसे भी बढ़कर वह स्वयं मनोमोहिनी थी। आग तो लग ही चुकी थी, इस बार घर भी जल गया, श्री तो सदासे ही मनोमोहिनी थी। जिस स्त्रीने वृत्तकी डालपर खड़ी होकर अंचल हिलाकर रण-विजय किया था, यह श्री, रूपमें उससे भी बढ़कर रूपवती है। शरीरका स्वास्थ्य और मनकी शुद्धता-से ही रूपकी वृद्धि होती है। श्रीके शरीरका स्वास्थ्य और मन-की शुद्धि सैकड़ों गुणा बढ़ गयी थी। तुरंतका फूला हुआ प्रातः-कालके पुष्पकी तरह उसका स्वास्थ्य कहींसे अपूर्ण, अपुष्ट, अंग-हीन विवर्ण और मलिन नहीं था। उसका रूप सब जगहसे चिकना, सम्पूर्ण शीतल, सुन्दर और मनोहर था। इसके अति-रिक्त उसका चित्त शांत, इन्द्रिय-विकार-रहित, चिन्ता-रहित, वासना-रहित, भक्तियुक्त, प्रीतियुक्त, और दयामय था, इसलिये उसके सौन्दर्य्यमें भी कहींसे विकार नहीं था। उसमें कहीं उसकी एक भी रेखा देख नहीं पड़ी थी, इन्द्रिय-भोगकी तनिक सी भी छाया नहीं पड़ी थी, कहींसे चिन्ताका चिह्न नहीं पड़ा था, इसलिये वह सब जगहसे मधुर, मनोहर और सुखमय था। इस भुवनेश्वरी मूर्तिके सामने वह सिंहवाहिनी मूर्ति भला कहाँ ठहर सकती है! तिसपरसे वह मनोहर बातें—नाना देश-देशां-

तरोंकी, नाना विषयोंकी, नाना प्रकारकी मनोरंजक कुतूहल उपजानेवाली ज्ञानसे भरी बातें—ये दोनों मोह एकत्र मिलनेसे भला कौन ऐसा व्यक्ति है, जिसके मनमें चोभ उत्पन्न न हो? सीतारामके मनमें बहुत दिनोंसे आग लग रही थी, अब उसका मनरूपी घर जलने लगा। श्रीसे ही सीतारामका सर्वनाश उपस्थित हुआ।

पहले सीताराम रोज सन्ध्या समय यहाँ आते और एक पहर श्रीसे बातचीत करके चले जाते थे। धीरे-धीरे रात अधिक होने लगी। पृथक आसनपर बैठनेपर भी राजाको जब तक भूख और निद्रा न सताती थी तबतक वह वहाँसे लौटते न थे। ऐसा करनेसे जब कुछ अधिक कष्ट जान पड़ने लगा, तब सीतारामने चित्त-विश्राममें ही सन्ध्या-कृत्य और आहार, तथा रात्रिमें शयन भी करने लगे। वह आहार और शयन भी पृथक घरमें उन्हें करना पड़ता था। श्रीके व्याघ्र-चर्मके निकट वह जा नहीं सकते थे। पर तो भी उनकी साध पूरी न हुई। सबेरे राजमहलमें लौटती समय दिन-पर-दिन अब उन्हें देर होने लगी। श्रीके साथ थोड़ी देरतक सबेरे भी वे बिना बात-चीत किये जा न सकते थे। जब अधिक देर होने लगी, तब दोपहरका भोजन भी चित्त-विश्राममें होने लगा। राजा भोजन करनेके उपरान्त थोड़ी देर सोकर तीसरे पहर एक बार राज-काज देखनेके लिये राजदर्बारमें जाने लगे। धीरे-धीरे अब यहाँ तक होने लगा कि किसी दिन जाते, और किसी दिन बातचीत-में ऐसा लग जाते कि जाना न होता था। अंतमें ऐसी अवस्था उत्पन्न हुई कि जैसे ही जाते तैसे ही थोड़ी देरमें घूम-फिरकर लौट आते, क्योंकि चित्त-विश्राममें ही राजा रहने लगे। कभी-कभी राज-भवनमें जाकर घूम आते थे।

इस ओर चित्त-विश्राममें किसीको आनेकी आज्ञा नहीं थी। चित्त-विश्रामके अंतःपुरमें कीट-पतङ्ग भी नहीं जा सकते थे, इसलिये राजकार्यके साथ राजाका सम्बन्ध प्रायः छूट गया।

नवाँ परिच्छेद

रामचन्द्र और श्यामचन्द्र दो गरीब गृहस्थ महम्मदपुरमें रहते थे। एकान्तमें सन्ध्या-समय रामचन्द्रके बैठकमें बैठ, वे दोनों तम्बाकूके सहारे आपसमें बातचीत कर रहे थे। उनकी बात-चीतका कुछ अंश पाठकोंको सुनना होगा।

रामचन्द्र—अच्छा भाई, क्या बतला सकते हो, चित्त-विश्रामका असल मतलब क्या है?

श्यामचन्द्र—क्या जाने भाई! यह सब बातें राजा-महाराजाओंके यहाँ होती ही रहती हैं। हम गृहस्थोंके यहाँ भी इन बातोंसे भला कौन बचा है, फिर राजा-महाराजाओंकी बातोंसे हमें क्या प्रयोजन? पर है क्या कि हमारे महाराजको अच्छाही कहना होगा—क्योंकि उनकी मात्रा अभी बहुत कम है। केवल उनके यहाँ यही एक आई है।

रामचन्द्र—हाँ यह तो ठीक है, पर क्या जानते हो, हमारे महाराज वैसे नहीं है, वह परम धार्मिक हैं, इसीसे मैं पूछता हूँ। मैं कहता हूँ, अबतक तो यह सब बातें नहीं थीं।

श्यामचन्द्र—राजा भी अब वैसे नहीं हैं, लोग तो ऐसा ही कहते हैं। मनुष्य सदा एकसा नहीं रहता। धन-दौलत बढ़नेसे मन भी इधर-उधर बहँकता है। पहले हमलोग रामराज्यमें वास करते थे, पर जबसे भूषणापर अधिकार हुआ तबसे क्या वही हालत है?

रामचन्द्र—ठीक कहते हो। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि, चित्त-विश्रामकी व्यवस्था जबसे हुई है, तभीसे यह सब बातें अधिक बढ़ गयीं हैं। पर महाराजको इस प्रकार वशमें करना भी सहज बात नहीं है। वह स्त्री भी साधारण नहीं जान पड़ती। न जाने कहाँसे उड़ती हुई आकर राजाके सिरपर बैठ गयी है।

श्यामचन्द्र—सुना है कि यह एक भैरवी है। कोई-कोई कहते हैं कि वह डाइन है। डाइनें अनेक माया जानती हैं, मायासे वह भैरवी-वेष धारण करके घूमती हैं। कोई-कोई कहते हैं उसका एक जोड़ा है, वह उड़ा करता है। उसको बहुत कम लोग देख सकते हैं।

रामचन्द्र—तब तो बड़ा अनर्थ हुआ! राज्य डाइनके हाथमें पड़ गया! अब इस राज्यकी भलाई क्या होसकती है?

श्यामचन्द्र—रंग-ढंगसे तो भलाई नहीं दिखाई पड़ती। राजा तो अब राज-काज नहीं देखते। जो कुछ करते हैं तर्कालंकारजी, परन्तु वह लड़ाई झगड़ेकी बात क्या जाने? इधर नवाबकी फौज शीघ्रही आनेवाली है।

रामचन्द्र—आने दो, मृण्मय तो हैं।

श्यामचन्द्र—तुम भी जैसे हो भाई, दूसरेको क्या पड़ी है? जिसका जो काम है वह उसीसे हो सकता है। देखा नहीं उस बार गङ्गारामने क्या किया था? इसबार कौन जानता है कि मृण्मय भी वैसा न करेंगे? यह यदि मुसलमानोंके संग मिल जायँ थो हम लोगोंका ठिकाना कहाँ लगेगा? सबलोग सपरिवार हलाल किये जायँगे।

रामचन्द्र—यह तो ठीक कहते हो। इसीसे तो धीरे-धीरे सब लोग खिसक रहे हैं। उस दिन तिलक घोष सपरिवार जसोर

चले गये। पूछनेसे जवाब दिया कि यहाँ चीज-वस्तु बड़ी महँगी है। देखते-देखते और भी कई लोग हमारे पड़ोससे चले गये।

श्यामचन्द्र—हाँ भाई, देखो तुमसे कहता हूँ, किसीसे कहना नहीं, मैं भी शीघ्र ही यहाँसे खिसक जाऊँगा।

रामचन्द्र—हाँ! तो मैं ही अकेला यहाँ पड़ा-पड़ा अपनेको हलाल क्यों कराऊँ? पर मुश्किल यह है कि यह सब घर-द्वार, चीज-वस्तु बड़े रुपये लगाकर खरीदी गयी हैं, इनको छोड़कर जानेमें बड़ा दुःख होता है।

श्यामचन्द्र—पर किया क्या जाय, पहले प्राणोंकी रक्षा की जाय या घर-द्वार की? अच्छी बात है, यह राज अगर बचा रहेगा तो फिर यहाँ लौट आयेंगे। घर-द्वार तो कहीं भागा नहीं जाता।

दसवाँ परिच्छेद

श्री—महाराज! आप तो सदा चित्त-विश्राममें ही रहते हैं, राज्य कौन करता है?

सीताराम—तुम्हींको अपना राज्य समझता हूँ। तुमसे जितना सुख मिलता है, राज्यसे क्या उतना सुख मिल सकता है?

श्री—छीः छीः महाराज! क्या इसीलिये आप हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करनेमें प्रवृत्त हुए थे? मेरे लिये हिन्दू-साम्राज्य, और अपना धर्म आप क्यों खो रहे हैं? क्या मैं इनसे भी बढ़कर हूँ? यह क्या राजा सीतारामके लिये उचित है?

सीताराम—राज्य तो स्थापित हो चुका।

श्री—पर इस चालसे क्या वह ठहरेगा?

सीताराम—किसकी सामर्थ्य है जो उसे नष्ट करे।

श्री—आप ही नष्ट कर रहे हैं। राजाका राज्य और विधवा-का ब्रह्मचर्य दोनों समान हैं। यत्नपूर्वक यदि इनकी रक्षा न की जाय तो ये ठहर नहीं सकते।

सीताराम—पर रक्षा तो की जा रही है।

श्री—आप राज्य-रक्षा कैसे करते हैं? आप तो सदा मेरे ही पास बैठे रहते हैं।

सीताराम—मैं राज-काज नहीं देखता, सो बात नहीं है। प्रायः प्रतिदिन, मैं राजदर्बारमें जाता हूँ। मैं क्षणभरमें जितना देख सकता हूँ, उतना दूसरे लोग दिनभरमें भी नहीं देख सकते। इसके अतिरिक्त, तर्कालंकारजी हैं, मृण्मय हैं, वे सब-लोग इन कामोंमें पूर्ण दक्ष हैं। उनके रहते यदि मैं कुछ भी न देखूँ तो भी काम चल सकता है।

श्री—एक बार तो उनके रहते ही राज्य हाथ से निकला जाता था। दैवयोगसे यदि आप उस दिन रातको यहाँ न आजाते तो राज्य न रहता। फिर आप क्यों केवल उनके ऊपर भरोसा करते हैं।

सीताराम—मैं तो यहीं हूँ, कहीं जाता तो नहीं। यदि फिर विपत्ति आवेगी तो फिर उसकी रक्षा करूँगा।

श्री—जबतक आपका यह विश्वास रहेगा, तबतक आप कोई यत्न न करेंगे, और बिना यत्न किये कोई कार्य्य सफल नहीं होता।

सीताराम—तुमने यत्न करनेमें क्या त्रुटि देखी?

श्री—मैं स्त्री हूँ, संन्यासिनी हूँ, मैं राज-काजके विषयमें क्या जानूँ, पर मुझे इस विषयमें बड़ी शङ्का हो रही है। मुर्शिदा-बादका समाचार क्या आपको कुछ मिला है? तोराबखाँ

गया, भूषणा गयी, बारहो जमींदारी गयी, क्या नवाब इतनेपर भी चुप रहेंगे ?

सीताराम—इसका सोच न करो। मुर्शिदकुलीखाँ जबतक अपना खजाना ठीक किस्तवार पाते जायँगे, तबतक वह कुछ न कहेंगे।

श्री—पर क्या खजाना वह पाते जा रहे हैं ?

सीताराम—हाँ, भेजनेका प्रबन्ध कर दिया है। पर इस बार नहीं भेजा गया है, इधर कुछ खर्च अधिक होगया है।

श्री—तब क्या वह चुप बैठे हैं ?

सीताराम सिर नीचा करके कुछ देर तक चुप रहे। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा—वह क्या करेंगे, या क्या करते हैं, इसका समाचार मुझे नहीं मिला है।

श्री—महाराज ! चित्त-विश्राममें रहनेके कारण क्या यह समाचार लेना भी आप भूल गये ?

सीताराम थोड़ी देरके लिए चिन्तामें निमग्न हो गये। उन्होंने कहा—हाँ श्री ! जान पड़ता है ऐसा ही हुआ। श्री ! तुम्हारा मुँह देखनेपर मैं सब भूल जाता हूँ।

श्री—मुझे अपना मुँह फिर छिपाना पड़ेगा, नहीं तो सीताराम-रायके यशमें कलंक-कालिमा लग जायगी। धर्म-राज्य नष्ट हो जायगा। अब मैं आपसे भिक्षा माँगती हूँ। मुझे आज्ञा दें, मैं फिर वनमें चली जाऊँ।

सीताराम—जो होना हो सो हो। मैंने सोच लिया है कि या तो मुझे तुम्हें छोड़ना होगा या राज्य। मैं राज्य छोड़ सकता हूँ, पर तुम्हें नहीं।

श्री—तब ऐसा ही करें। राज्य किसी उपयुक्त मनुष्यके

हाथमें देकर आप संन्यास ग्रहण कर लें और मेरे साथ वनमें चले चलें।

सीताराम चिन्ता-सागरमें डूब गये। राजाके मनमें उस समय भोग-लालसा अत्यन्त प्रबल हो रही थी। यदि पहले होता तो सीताराम राज्य छोड़ सकते थे। परन्तु अब, वह सीताराम नहीं है। राज्य-भोग करनेसे सीतारामका मन मलिन हो गया है। इस कारण सीताराम राज्यका परित्याग न कर सके।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

उस दिन सभामें रमा जब मूर्च्छित होकर गिर पड़ी थी और उसकी दासियोंने उसे ले जाकर महलमें सुला दिया था तबसे अबतक रमा उठी नहीं। प्राणपणसे उसने अपने सती नामकी रक्षाकी, नामकी रक्षा तो हुई, पर जान पड़ता है उसके प्राण अब न बचेंगे।

अब उसका रोग पुराना हो गया है, पर उसकी हालतका वर्णन आरम्भसे ही मैं करता हूँ। राजा-रानियोंकी चिकित्सामें त्रुटि नहीं होती। पहलेसे ही वैद्योंने चिकित्सा करनी आरम्भ की। बहुतसे वैद्य-राजाके यहाँ नौकर थे; पर उनको कुछ काम नहीं था। प्रायः नौकर-चाकरोंको चूर्ण, पाचक खिलाकर और दासियोंको पुष्टई देकर अपना समय बिताते थे। अब छोटी रानीको बीमार पाकर वैद्य लोग बड़े अमीर हो गये। पहले तो रोग-निर्णय करनेमें ही महाउत्पात मच गया। मूर्च्छा-वायु, अम्ल पित्त, हृदरोग, इत्यादि नाना प्रकारके रोगोंका

लक्षण सुनते-सुनते राज-कर्मचारियोंके नाकोंदम हो गया। कोई निदानकी दोहाई देता था तो कोई वाग्भट्ट को, कोई चरकसंहिताका वचन दोहराता तो कोई शुश्रुत-संहिताका, पर रोगका निर्णय किसीसे हो न सका।

वैद्यलोग केवल शास्त्रोंके वचन सुनाकर ही निश्चिन्त हो गये, ऐसी निन्दा मैं उनकी न करूँगा। उन लोगोंने नाना प्रकारकी औषधियोंकी व्यवस्था की। किसीने वटिका, किसीने चूर्ण, किसीने घृत और किसीने तैल बतलाया। किसीने कहा—औषधि बनाना होगा। कोई बोला मेरे पास जैसी औषधि तैयार है, वैसी अब नहीं बन सकती। पर जो हो, राजाके यहाँ रानीकी बीमारीमें, चाहे औषधिका प्रयोजन हो या न हो, किन्तु नई औषधि न बने, ऐसा नहीं हो सकता। औषधि तैयार होनेसे दस आदमियोंको कुछ उपार्जन करनेका अवसर मिलेगा। इसलिये औषधि बनानेकी धूम मच गयी। कहीं इमामदस्तेमें जड़ें पीसी जाने लगीं, कहीं ओखलीमें छाल कूटी जाने लगीं, कहीं हाड़ीमें कुछ उबाला जाने लगा, कहीं औषधियोंमें भावना दी जाने लगी। यह सब देखकर राजमहलकी एक दासीने कहा—रानी होनेपर यदि रोग हो तो वह भी अच्छा।

जिसके लिये औषधिकी इतनी धूम मची थी, उसके साथ औषधिका संबंध बहुत कम था। वैद्यलोग औषधि एकट्ठी नहीं करते थे, यह बात नहीं है। इस काममें वैद्योंकी कोई त्रुटि नहीं थी। पर रमाके दोषसे वैद्योंका सब परिश्रम व्यर्थ हो गया। रमा औषधि नहीं खाती थी। मुरलाके बदले, यमुना नामकी एक दासी, रानीकी प्रधान दासी बना दी गयी थी। यमुनाको कुछ बूढ़ी देखकर नन्दाने उसे इस पदपर नियुक्त किया था। मैं ऐसा नहीं कह सकता कि यमुना

अपनेको बूढ़ी समझती थी। सुनता हूँ किसी खास नौकरसे इस विषयमें उसका सम्पूर्ण मतभेद था। तो भी मोटी बात यह है कि जमुना कुछ पुरानी चालसे चली थी। वह रमाकी भलीभाँति सेवा करती थी। रोगीकी सेवामें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं करती थी। रमाके लिये वैद्यलोग जो औषधियाँ दे जाते थे, वह पहले उसीके हाथमें पहुँचती थी; सेवन करानेका भार भी उसीके ऊपर था। परन्तु सेवन कराना उसके सामर्थ्यके वाहर था। रमा किसी प्रकार भी औषधि नहीं खाती थी। इधर रोग भी कुछ कम नहीं हुआ, धीरे-धीरे बढ़ता ही गया। रमा अब सिर भी नहीं उठा सकती। यह देखकर यमुनाने निश्चय किया कि यह सब समाचार बड़ी रानीसे जाकर कह देना चाहिए। इसलिये रमासे जाकर उसने कहा—मैं बड़ी महारानीके पास जाती हूँ, औषधि वह अपने ही हाथसे आकर खिलायेंगी।

रमा—यमुना! मौतके समय अब मुझे क्यों दुःख देती हो; आ, तेरे लिये मैं कुछ प्रबन्ध कर दूँ।

यमुना—क्या प्रबन्ध करोगी, रानी माँ?

रमा—तू औषधियाँ मेरे हाथ बेचेगी? मैं एक-एक रुपया देकर एक-एक गोली खरीदनेके लिये राजी हूँ।

यमुना—यह क्या रानी माँ! आपकी ही औषधि आपके हाथ मैं कैसे बेचूँगी?

रमा—यदि तू रुपया लेकर मेरे हाथ औषधि बेच देगी, तो तेरा अधिकार उसपर न रह जायगा। फिर चाहे मैं उसे खाऊँ या न खाऊँ, तू फिर कुछ न कह सकेगी।

यमुनाने कुछ देर तक सोचा। वह बड़ी बुद्धिमती थी। उसने मन-ही-मन विचार किया कि यह तो मरेगी ही, फिर

मैं रुपया क्यों छोड़ूँ? उसने कहा—महारानी! तुम यदि औषधि लेना चाहती हो, तो चाहे रुपया देकर लो अथवा यों ही लो, लेती क्यों नहीं? और यदि तुम्हें न खाना हो तो औषधियोंका मेरे पास पड़े रहनेसे ही क्या लाभ?

इस प्रकार बात-चीत तय हो गयी। यमुनाने रुपये लेकर रमाके हाथ औषधियाँ बेचनी आरम्भ की। रमाने कुछ औषधियोंको पिकदानीमें फेंक दिया, और कुछ तकियाके नीचे छिपा दिया, क्योंकि वह उठ नहीं सकती थी कि दूसरी जगह रखती।

इधर धीरे-धीरे उसका शरीर क्षीण होने लगा। नन्दा रोज रमाको देखने आती, घड़ी दो घड़ी वहाँ बैठकर बात-चीत करके चली जाती थी। नन्दाने देखा कि रमाके मुख-पर मृत्युकी छाया पड़ रही है, और जिसकी छाया पड़ रही है वह भी पास ही है। नन्दाने सोचा, हाय! राजदर्बार-के वैद्योंको क्या पिशाचिनियोंने ग्रस लिया है? नन्दाने तुरन्त वैद्योंको बुला भेजा। सब वैद्योंके आनेपर नन्दाने परदेकी आड़-से उन लोगोंको बहुत कुछ बुरा-भला कहा। और कहा यदि रोग आराम नहीं कर सकते तो मासिक वेतन क्यों लेते हो?

उनमेंसे एक प्राचीन वैद्यने कहा—माता! वैद्य औषधि दे सकते हैं, परमायु नहीं दे सकते।

नन्दाने कहा—तब मुझे न तो औषधियोंकी आवश्यकता है और न वैद्योंकी। तुम लोग अपने-अपने देशमें लौट जाओ।

वैद्यलोग बड़े उदास हो गये। वह प्राचीन वैद्य बड़े विज्ञ थे, उन्होंने कहा—महारानी! हम लोगोंका अदृष्ट बहुत ही मंद है, इसीसे ऐसा हो रहा है। नहीं तो मैंने जो औषधि दी है, वह साक्षात रामवाण है। मैं अब आपसे कहता हूँ कि

रानीको तीन दिनमें मैं आराम कर सकता हूँ, यदि एक बातका आप वचन दें तो।

नन्दा—क्या चाहते हो ?

तब वैद्यने कहा—"मैं स्वयं बैठकर औषधियाँ खिलाऊँगा।" बूढ़ेका विश्वास था कि रानी औषधि नहीं खातीं, मेरी औषधि खानेसे भला रोगी मर सकता है !

नन्दाने यह स्वीकार किया, और वैद्योंको विदा किया। उसके उपरान्त रमाके पास आकर उसने यह सब बातें कहीं। रमा तनिक हँसी, अधिक हँसनेकी शक्ति उसमें नहीं थी।

नन्दाने पूछा—हँसी क्यों ?

रमाने फिर वैसे ही हँसकर कहा—औषधि नहीं खाऊँगी।

नन्दा—छीः ! बहिन ! यदि इतने दिनोंतक तुमने औषधि खाई, तो और तीन दिन खानेमें क्या हानि है ?

रमा—मैंने औषधि नहीं खाई।

नन्दा चिहुँक उठी और उसने कहा—यह क्या ? बिलकुल नहीं खाई ?

रमा—सब तकियेके नीचे है।

नन्दाने तकिया उठाकर देखा, तो सब औषधि उसके नीचे दिखाई पड़ी। तब नन्दाने कहा—क्यों बहिन ! आत्मघात क्यों करती हो ? कलंक तो मिट गया।

रमा—तो औषधि खा लूँगी।

नन्दा—अब कब खाओगी ?

रमा—जब राजा मुझे देखने आवेंगे।

रमाकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। नन्दाकी आँखोंसे भी आँसू बहने लगे। अब सीताराम रमाको देखने

नहीं आते। सीताराम चित्त-विश्राममें ही रहते हैं। नन्दाने आँखें पोंछकर कहा—इस बार आते ही तुम्हें देखने आवेंगे।

बारहवाँ परिच्छेद

"इस बार आते ही तुमको देखने आवेंगे," यह बात कहकर नन्दाने रमाको जो भरोसा दिया था, उसी भरोसेके सहारे रमा अबतक किसी प्रकार बची थी, परन्तु जान पड़ता है कि अब वह न बचेगी। नन्दाने जो भरोसा दिया था उसे वह भी याद कर रही थी, परन्तु राजाको नहीं पकड़ पाती थी। यदि कभी राजासे भेंट हो भी जाती थी तो "आज नहीं कल" कहकर राजा चले जाते थे। नन्दाने मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर रखी थी कि वह सीतारामके ऊपर क्रोध न करेगी। उसने सोचा कि राजाके सिर तो चुड़ैल सवार है ही, अब मेरे सिर भूत न चढ़े, इसीमें भला है। यदि मेरे सिर भी क्रोधका भूत सवार हो जायगा तो इस परिवारकी कौन रक्षा करेगा? इसीसे नन्दाने सीतारामपर क्रोध नहीं किया और अपना कर्त्तव्य-कार्य्य प्राणपणसे करने लगी। परन्तु चुड़ैलके ऊपर उसे बड़ा क्रोध हुआ। नन्दा नहीं जानती थी कि यह चुड़ैल श्री ही है। सीतारामके अतिरिक्त इस बातको और कोई नहीं जानता था। नन्दाने कई बार पता लगानेके लिये आदमी भेजा था; परन्तु, सीतारामकी आज्ञाके बिना चित्त-विश्राममें एक मक्खिका भी प्रवेश नहीं कर सकती थी। इसलिये कुछ भी पता न लग सका। परन्तु शहरमें यह शोहरत फैल गयी थी कि चुड़ैल दिनमें परम सुन्दरी स्त्रीका रूप धारण करके कामकाज करती है, रात्रिमें सियारिनका रूप धारण करके श्मशानमें घूमती

हुई नर-माँस भक्षण करती है। इन बातोंके सुननेसे नन्दाने अत्यन्त भयभीत होकर चन्द्रचूड़जीसे सब बातें कह दीं। चन्द्रचूड़ने अच्छे-अच्छे तान्त्रज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर राजाके उद्धारके लिये तान्त्रिक यज्ञ कराया। परन्तु इन उपायोंसे चुड़ैलका नाश नहीं हुआ। तान्त्रिकने कहा,—"मनुष्यके द्वारा इसका कुछ उपाय नहीं हो सकता। यह साधारण चुड़ैल नहीं है। यह कैलास-निवासिनी, साक्षात् भगवतीकी सहचरी है। इसका नाम विशालाक्षी है। यह भगवान शंकरके आपसे कुछ दिनोंके लिये मनुष्य लोकमें रहनेके लिये आई है। आपका अंत होते ही स्वयं चली जायगी।" यह सुनकर चन्द्रचूड़ और नन्दा बड़े दुःखी और चिन्तित हुए, तो भी नन्दाने मन ही मन सोचा, चाहे वह भगवतीकी सहचरी हो, चाहे कोई भी हो, मैं एक बार यदि उसे पाऊँ तो अपने नखोंसे उसका माथा चीर डालूँ। इसीसे नन्दा सीतारामके ऊपर क्रोध न कर सकी। सीताराम भी कभी-कभी जब राजमहलमें आते थे, तब नन्दासे भेंट कर जाते थे। उस समय नन्दा रमाकी हालत सीतारामसे कहती थी और कहती थी कि, "वह बड़ी व्याकुल है, तुम एक बार जाकर उसे देख आओ।" सीताराम जाता हूँ या जाऊँगा कहकर चले जाते थे। पर आज नन्दा उन्हें जबर्दस्ती पकड़कर बैठ गयी। उसने कहा—आज देख आओ, नहीं तो इस जन्ममें फिर कभी उसे न देख सकोगे।

इसीसे सीतारामको रमाको देखने जाना ही पड़ा। सीतारामको देखकर रमा बहुत रोई। पर सीतारामका उसने तनिक भी तिरस्कार नहीं किया। वह कुछ कह न सकी। हृदय में कुछ अनुताप हुआ या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता। परन्तु सीताराम स्नेह-सूचक सम्बोधन करके उसको रोगसे

छूट जानेका भरोसा देने लगे। धीरे-धीरे रमा प्रसन्न हो गयी और ज़रा ज़रा हँसने लगी। परन्तु वह हँसी कैसी थी! उसकी हँसी देखकर सीतारामको शंका हुई कि अब इसके मृत्युमें अधिक विलम्ब नहीं है।

सीताराम पलंगपर बैठे थे, वहीं रमाका पुत्र आ गया। रमाकी आँखोंसे फिर आसूँ बहने लगे। आँसुओंसे उसका कपोल भींग गया। बालक भी माताको रोते देखकर रोने लगा। रमाने इशारेसे सीतारामसे कहा—एक बार इसे गोदमें ले लो। सीतारामने पुत्रको गोदमें ले लिया। तब रमा क्षीण कंठसे कहने लगी—माताके अपराधसे पुत्रका त्याग न करना। यही आपसे मेरी अंतिम भिक्षा है। बड़ी रानीके हाथ इसें सौंप जाऊँगी, ऐसा सोचा था; परन्तु अब ऐसा न करके तुम्हारे ही हाथों इसे सौंप जाती हूँ। मेरी बात आप स्वीकार करेंगे?

सीतारामने कलके पुतलेकी तरह इसे स्वीकार किया। रमाने तब सीतारामसे और भी निकट आकर बैठनेके लिये इशारा किया। सीताराम उसके और भी निकट बैठ गये। रमाने इनके चरण छूकर चरणकी धूलि अपने सिरपर लगाई। उसने कहा—इस जन्ममें तो मैं आपसें विदा होती हूँ। आशीर्वाद दें कि दूसरे जन्ममें भी मैं आपको ही पाऊँ।

इसके उपरान्त उसकी बोली बन्द हो गयी। श्वास बड़े ज़ोर-ज़ोरसे चलने लगा। आँखोंकी ज्योति मन्द हो गयी। मुखपर की काली छाया और भी काली हो गयी। अंतमें सब अन्धकार हो गया। सब ज्वाला ठंढी हो गयी। रमा चली गयी।

तेरहवाँ परिच्छेद

जिस दिन रमा मरी, उस दिन सीताराम चित्त-विश्राममें नहीं गये। अबतक इतना अधःपतन उनका नहीं हुआ था। जब सीताराम राजा नहीं हुए थे, और जब दुबारा श्रीको नहीं देखा था, तबतक सीताराम रमाको बड़ा प्यार करते थे। नन्दासे भी बढ़कर उससे प्रेम करते थे। वह प्रेम तो चला गया। क्यों गया, सीतारामने कभी यह नहीं सोचा। आज उन्हें कुछ सोच उत्पन्न हुआ। उन्होंने सोचकर देखा कि इसमें रमाका अपराध कुछ नहीं है; दोष उन्हींका है। मन-ही-मन वह अपनेको धिक्कारने लगे।

इसीसे उनका मिजाज खराब हो गया। चित्त प्रसन्न करनेके लिये श्रीके पास जानेकी प्रवृत्ति उन्हें नहीं हुई। क्योंकि श्रीके साथ इस आत्म-ग्लानिका सम्बन्ध अत्यन्त निकट था। रमाके प्रति इस निष्ठुरताका कारण श्री ही है। श्रीके पास जानेसे आग और भी भड़केगी। इसीसे वह श्रीके पास न जाकर नन्दाके पास गये। परन्तु नन्दाने उस दिन एक भूल की। नन्दा बहुत चिढ़ गयी थी। चुड़ैल हो या स्त्री, जिस पापिष्ठाके लिये राजाने नन्दाका अनादर अबतक किया था, उसके लिये नन्दा अबतक क्रोधित नहीं हुई थी। परन्तु रमाका अनादर करनेके कारण ही वह मर गयी, इसलिये राजाके ऊपर नन्दाको बड़ा क्रोध हुआ। उस क्रोधमें अपना अपमान भी मिल गया। उसे इतना अधिक क्रोध हुआ कि अनेक चेष्टा करनेपर भी वह अपने क्रोधको छिपा न सकी।

रमाका प्रसंग उठनेपर नन्दाने कहा—महाराज! तुम्हीं रमाके मृत्युके कारण हो।

नन्दाने केवल यही कहकर क्रोध प्रकट किया। परन्तु इतनेसे ही, आग जल उठी। क्योंकि ईंधन पहलेसे ही तैयार था। एक तो आत्म-ग्लानिसे सीतारामका मिजाज पहलेसे ही खराब था, किसी प्रकार अपने निकट अपनी ही सफाई करनेकी चेष्टा कर रहे थे, तिसपरसे नन्दाका यह उचित तिरस्कार वाणकी तरह उनके हृदयको वेध गया। "महाराजा तुम्हीं रमाके मृत्युके कारण हो", यह सुनकर राजा गर्ज उठे। उन्होंने कहा—ठीक है। मैं ही तुमलोगोंकी मृत्युका कारण हूँ। मैंने अपने प्राणपणसे अपना रक्त बहाकर तुम लोगोंको राज-रानी बना दिया, इसीसे क्यों न कहोगी कि मैं ही तुम लोगोंकी मृत्युका कारण हूँ। जब रमाने गंगारामको बुलाकर मेरी मृत्युका कारण होनेकी चेष्टा की थी, क्यों तब तो कुछ तुमलोगोंने नहीं कहा था?

यह कहकर राजा क्रोधित होकर महलके बाहर चले आये। वहाँ चन्द्रचूड़, राजाको रमाके लिये शोक-संतप्त समझकर उनको ढाढ़स देनेके लिये अनेक बातें कहने लगे। राजाका मिजाज उस समय गर्म तेलकी तरह होरहा था, राजाने उनकी बातोंका कोई विशेष उत्तर नहीं दिया। चन्द्रचूड़ने भी एक भूल की। उन्होंने सोचा, रमाकी मृत्युसे राजाके मनमें अनुताप हुआ है, इस समय यदि चेष्टा करनेसे चुड़ैलकी ओरसे इनका मन फिर जाय तो ऐसा करना उचित है। इसीसे चन्द्रचूड़ने भूमिका बाँधनेके अभिप्रायः से कहा—महाराज! आप यदि छोटी रानीके प्रति कुछ ध्यान देते तो वह आराम होसकती थी।

जलती हुई आग इस फूँकसे और भी जल उठी। राजाने

कहा—"क्या आपका विश्वास है कि मैं ही छोटी रानीकी मृत्युका कारण हूँ ?

चन्द्रचूड़का वास्तवमें यही विश्वास था। उन्होंने सोचा, "यह बात राजासे साफ-साफ कह देना ही उचित है। अपना दोष न देखनेसे किसीके चरित्रका संशोधन नहीं होता। मैं इनका गुरु और मंत्री हूँ, मैं यदि इनसे साहस करके इन बातोंको न कहूँगा तो भला दूसरा कौन कहेगा ?" इसलिये चन्द्रचूड़ने कहा—हाँ, मेरी कुछ-कुछ तो ऐसी ही धारणा है।

सीताराम—ऐसी ही धारणा है ? पर सोचकर देखिये, यदि मैं लोगोंकी मृत्यु-कामना करता तो इस समय इस राज्यमें एक मनुष्य भी न रह सकता।

चन्द्रचूड़—मैं यह नहीं कहता कि आप किसीकी मृत्यु-कामना करते हैं। परन्तु आपके मृत्यु-कामना न करनेपर भी जो आपके लिये रक्षणीय है, उसकी रक्षा यदि आप न करेंगे तो अवश्य ही उसकी मृत्यु होजायगी। केवल छोटी रानी ही क्यों, आपके देख-भालके बिना, जानपड़ता है कि आपका सारा-राज्य चला जाना चाहता है। ये बातें आपसे कई दिनसे कहना चाहता था, परन्तु आपको अवसर न मिलनेसे अब तक नहीं कहा।

राजाने मन-ही-मन कहा—सभी लोग कहते हैं कि देख-भालकी कमी है। पर ये लोग करते क्या हैं ? पर प्रकाश्य रूपसे उन्होंने कहा—देख-भालकी कमी क्यों है ? आपलोग क्या करते हैं ?

चन्द्रचूड़—हमलोग जो कर सकते हैं, करते हैं। पर हम लोग राजा नहीं है। जिन कामोंमें राजाकी आज्ञा न होनेसे काम नहीं चलता, उसको हमलोग नहीं कर सकते। मेरी प्रार्थना

है कि कल प्रातःकाल आप एक बार दर्बारमें बैठें, मैं आपको सब समझा दूँ, कागज-पत्र दिखाकर आपसे आज्ञा ले लूँ।

राजाने मन ही मन कहा—"तुम्हारे गुरुपनमें कुछ अधिकता होगयी है। मेरी भी इच्छा है कि तुमको कुछ सिखाऊँ।" प्रकाश्य रूपसे कहा—अच्छा, देखा जायगा।

चन्द्रचूड़के तिरस्कारसे मारे क्रोधके राजाका सब अङ्ग जल रहा था, केवल गुरुके ख्यालसे ही सीतारामने उनसे कुछ अधिक नहीं कहा। परन्तु मारे क्रोधके उस दिन रातको उन्हें नींद नहीं आई। प्रातःकाल उठते ही प्रातःकृत्य करके वह दर्बारमें जा बैठे। चन्द्रचूड़ने कागज-पत्रोंका ढेर लाकर उनके सामने उपस्थित किया।

चौदहवाँ परिच्छेद

जिस बातको चन्द्रचूड़ राजासे कहना चाहते थे, वह यह है कि चाहे कितना ही बड़ा राज्य क्यों न हो और कितने ही बड़े राजा क्यों न हों, रुपये न होनेसे कोई राज्य नहीं चलता। हम लोग इस समय देखते हैं कि जैसे हमारी तुम्हारी गृहस्थी रुपयेके विना नहीं चलती, वैसे ही अंग्रेजोंका इतना बड़ा राज्य भी विना रुपयेके नहीं चल सकता। रुपयेके अभावसे ही रोम-साम्राज्य नष्ट हो गया, प्राचीन सभ्यता अन्धकारमें मिल गयी। सीतारामके राज्यमें भी एकाएक रुपयेका अभाव होगया।

सीतारामको रुपयेका अभाव होना अनुचित है, क्योंकि सीतारामकी आमदनी पहलेसे कई गुणा बढ़ गयी थी। भूषणाका फौजदारी इलाका उन्हींके हाथोंमें आगया। बारह जमीन्दारी उनके हाथ आगयी थी। उनके अधिकारमें जो सब इलाके

थे, उनका कर, उन इलाकेवालोंको जो दिल्लीके बादशाहको देना पड़ता था, उसके-वसूल करनेका भार भी सीतारामको मिल गया था। सीतारामने अबतक उस करमें से एक कौड़ी भी मुर्शिदाबादमें नहीं भेजा था। जो कुछ वसूल किया था, उसे अपने ही काममें ला रहे थे। तब भला उन्हें रुपयेकी कमी क्यों पड़ रही थी?

लोगोंकी आमदनी बढ़नेसे ही खर्च बढ़ जाता है। भूषणा दखल करनेमें कुछ खर्च बढ़ा था। बारह जमीन्दारी दखल करनेमें भी कुछ हुआ था। अब फौज भी अधिक रखनी पड़ती है—क्योंकि न जाने कब कौन विद्रोही हो जाय, न जाने कब कौन चढ़ाई कर बैठे, इसलिये खर्च बढ़ रहा है। अभिषेकमें भी कुछ खर्च हुआ था। इसलिये जितनी आय हुई थी, उतना ही व्यय भी हुआ।

परन्तु जितनी आमदनी होती है उतना ही यदि खर्च हो तो कमी नहीं होती। कमीका कारण वास्तवमें चोरी है। राजा अब स्वयं कुछ देख-भाल नहीं करते—चित्त-विश्राममें ही समय बिताते हैं। इसीसे राज-कर्मचारी राज-भण्डारके रुपये लेकर जिसकी जैसी इच्छा होती है वैसा ही करता है। उन्हें मना कौन करे? चन्द्रचूड़जी मना करते हैं, परन्तु उनकी बात कोई मानता नहीं। चन्द्रचूड़जीने कई एक बड़े-बड़े राज-कर्मचारियोंकी चोरी पकड़ी थी, सोचा था कि इस बार जिस दिन राजा दर्बारमें बैठेंगे, उस दिन बही-खाता सब उनके सामने रख दूँगा। परन्तु राजा किसी प्रकार, कभी वशमें नहीं आते थे। काम-काज जो रहता है, महाशय आप ही करें, कहकर राजा किसी प्रकार जान छुड़ाकर चित्त-विश्राममें चले जाते हैं। चन्द्रचूड़ने निराश होकर अंतमें स्वयं कई कर्मचारियोंको

निकालनेकी आज्ञा दी। उन लोगोंने उस आज्ञाको हँसकर उड़ा दिया, कहा—पण्डितजी! जब धर्मकी व्यवस्था लेनी होगी, तब आपकी बात सुनूँगा। राजाके हस्ताक्षर और मुहरके साथ परवाना दिखलावें, अन्यथा घर जाकर सन्ध्या पूजा करें।

राजाका हस्ताक्षर और मुहर पाना कुछ कठिन बात नहीं थी। आजकल राजाके सामने कोई कागज रख देनेसे ही वह उसपर हस्ताक्षर कर देते थे। पढ़नेका अवकाश उनको नहीं था, क्योंकि चित्त-विश्राममें जानेके लिये वह उत्सुक रहते थे। इसलिये चन्द्रचूड़ने इन अपराधियोंके बरतर्फीके परवानेपर राजाका हस्ताक्षर करा लिया। राजाने बिना पढ़े ही उसपर सही कर दी।

परन्तु इससे भी चन्द्रचूड़का कार्य्य सिद्ध नहीं हुआ। प्रधान अपराधी खजांची दर्बारमें उपस्थित था; उसने देखा कि राजाने बिना पढ़े ही हस्ताक्षर कर दिया। राजाके चले जानेपर उसने कहा—इस हुकुमको नहीं मानते। यह तुम्हारा हुकुम है—राजाका नहीं। राजाने इस कागजको पढ़कर देखा भी नहीं है। जब राजा स्वयं विचार करके हम लोगोंको बरतरफ करेंगे, तब हम लोग जायँगे, अभी नहीं। कोई गये नहीं। खूब चोरी करने लगे। खजाना उनके हाथमें था, इसलिये चन्द्रचूड़ उनका कुछ कर नहीं सके।

इसीसे आज चन्द्रचूड़ने राजाको धर पकड़ा है। राजदर्बारमें जब राजा बैठ गये तो अपराधियोंके सामने ही चन्द्रचूड़ बही-खाता सब राजाको समझाने लगे। राजा इस समय सभी लोगोंपर क्रोधित थे, उसपरसे चोरीकी अधिकता देखकर क्रोधसे अधीर हो उठे। उन्होंने आज्ञा दी कि सब अपराधियोंको शूलीपर चढ़ा दो।

यह आज्ञा सुनकर तमाम दर्बार काँप उठा। चन्द्रचूड़के सिरपर तो मानो वज्र ही गिर पड़ा। उन्होंने कहा कि यह क्या महाराज! थोड़ा पापके लिये इतना भारी दण्ड?

राजाने क्रोधसे अधीर होकर कहा—थोड़ा पाप कैसा? चोरके लिये शूलीपर चढ़ानेकी ही व्यवस्था है।

चन्द्रचूड़—इसमें कई ब्राह्मण भी हैं। ब्रह्म-हत्या आप कैसे करेंगे?

राजा—ब्राह्मणोंका नाक-कान काट कर, उनके सिरपर, लोहा तपाकर उससे, चोर लिख कर छोड़ दे। और सबोंको शूलीपर चढ़ना ही होगा।

यह आज्ञा देकर राजा चित्त-विश्राममें चले गये। आज्ञाके अनुसार अपराधियोंको दंड दिया गया। नगरमें हा-हाकार मच गया। बहुतसे राज-कर्मचारी काम छोड़कर भाग गये।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

चोरी तो बन्द हो गयी, परन्तु रुपयेका अभाव दूर नहीं हुआ। राज्यकी अवस्था राजासे कहना अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु राजाको पाना कठिन है। पानेपर भी बातचीत करनेका साहस नहीं होता। चन्द्रचूड़ने खोजते-खोजते फिर एक दिन राजाको घेरा और कहा—महाराज! एक बार इन बातोंपर यदि आप ध्यान न देंगे, तो यह राज्य अब न रहेगा।

राजा—रहे तो अच्छी बात है, न रहे न सही। अच्छा सुनता हूँ, बताइये क्या हुआ?

चन्द्रचूड़—सिपाही सब नौकरी छोड़कर चले जारहे हैं।

राजा—क्यों?

चन्द्रचूड़—वेतन नहीं पाते !

राजा—क्यों नहीं पाते ?

चन्द्रचूड़—रुपयेके अभावसे ।

राजा—अब भी चोरी चल रही है क्या ?

चन्द्रचूड़—नहीं, चोरी तो बन्द होगयी है। परन्तु इससे क्या होगा? जो रुपया चोरके पेटमें चला गया है, वह तो लौटा नहीं ।

राजा—क्यों, तहसील-वसूली नहीं होती ?

चन्द्रचूड़—एक पैसा भी नहीं ।

राजा—इसका क्या कारण ?

चन्द्रचूड़—जिनके प्रति वसूलीका भार है, वे कहते हैं कि वसूली करनेपर यदि हिसाबमें गड़बड़ होगा तो शूलीपर चढ़ना होगा, इससे वसूली कौन करे ?

राजा—उनको बरतरफ कर दें ।

चन्द्रचूड़—नये आदमी कहाँसे मिलेंगे ? और नये आदमी-से क्या तहसील-वसूलीका काम हो सकता है ।

राजा—तब उन लोगोंको कैद करलें ।

चन्द्रचूड़—सर्वनाश ! तो फिर वसूली कौन करेगा ?

राजा—यदि पन्द्रह दिनमें बकाया सब अदा न करें, तो उन्हें कैद कर लें ।

चन्द्रचूड़—सब तहसीलदारोंका भी दोष नहीं है, देनेवाले भी बहुतसे नहीं दे रहे हैं ।

राजा—क्यों नहीं देते ?

चन्द्रचूड़—कहते हैं, मुसलमानी राज्य जब होगा तब देंगे । अभी देकर क्या दोहरा कर दें ?

राजा—जो रुपया न दें और जिनके यहाँ बाकी निकले, उनको भी कैद करना होगा ।

चन्द्रचूड़ मुँह बाकर रह गये। अंतमें कहा—महाराज! कारागारमें इतनी जगह कहा है।

राजा—बड़ा-बड़ा छप्पर डाल देंगे। यह कहकर बाकीदार और तहसीलदार दोनोंको ही कैद करनेके हुकुमनामेपर हस्ताक्षर करके राजा चित्त-विश्राममें चले गये। चन्द्रचूड़ने मन-ही-मन शपथ ली कि अब कभी राजासे राजकाज-सम्बन्धी कोई बात न रहेंगे।

इस आज्ञासे देशमें हा-हाकार मच गया। सब कारागार भर गये। चन्द्रचूड़ छप्पर डालकरके भी कैदियोंको न रख सके। बाकीदार और तहसीलदार दोनों ही देश छोड़-छोड़कर भागने लगे। जो बाकीदार नहीं थे, वह भी उनके साथ ही भागने लगे।

इसीसे कहते हैं कि पहले आग तो लग ही चुकी थी, अब घर जलने लगा। यदि श्री न आती तो सीतारामकी इतनी अवनति होती या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता; क्योंकि सीतारामने अपने मनमें पक्का विचार कर लिया था कि वह राज्य-शासनमें मन लगाकर श्रीको भूल जायेंगे—यह बात मैं पहले लिख चुका हूँ। कुसमयमें श्रीने आकर राजासे भेंट की, इसलिये राजाका पहला विचार बालूके बाँधकी तरह आसक्तिके वेगसे बह गया। राज्यमें मन लगानेसे ही यह सब आपत्ति छूट जाती, यह मैं नहीं कहता; परन्तु यदि श्री आई थी, तो वह यदि नन्दाकी तरह राजमहलमें महारानी होकर रहती, और नन्दाकी तरह राजाके काम-काजमें सहायता करती; तो भी सीतारामकी इतनी अवनति कदाचित न होती। क्योंकि केवल ऐश्वर्य्य-मदसे जो अवनति हो रही थी, श्री और नन्दाकी सहायतासे वह भी कुछ कम हो जाती। इसके अतिरिक्त श्री यदि

राजमहलमें महारानी होकर न रहती और चित्त-विश्राममें राजाकी उपपत्नीकी ही तरह रहती, तो भी संन्यासिनीकी तरह न रहकर, उपपत्नीकी तरह रहती तो इतना प्रमाद न बढ़ता। आकांक्षा पूर्ण होनेसे उसकी मोहिनीशक्ति भी बहुत कुछ कम हो जाती। कुछ दिन बाद राजाको ज्ञान हो सकता था। इसके अतिरिक्त, यदि श्री संन्यासिनी होकर ही रहती, तो भी साधारण संन्यासिनीकी तरह यदि रहती तो इतनी विपत्ति न आती, परन्तु इस इन्द्राणीकी तरह, संन्यासिनी व्याघ्र-चर्मपर बैठकर अपनी बातोंसे सुधावृष्टि करती रहे, और सीताराम कुत्तेकी तरह पृथक बैठकर उसके मुखकी ओर देखा करें, यह कैसे हो सकता है? तिसपर वह सीतारामकी विवाहिता स्त्री है। पाँच वर्षसे सीताराम उसके लिये अपने प्राणतक लगा दिये हैं। इस दुःखकी बराबरी क्या हो सकती है? इसीसे सीतारामका सर्वनाश होने लगा। पहले केवल आग सुलगी थी, अब घर जलने लगा। सीताराम अब संयम न रख सके, मन ही मनमें उन्होंने संकल्प किया कि श्रीके ऊपर अब बल-प्रयोग करना होगा।

पर जिसको प्यार किया जाता है, उसपर बल-प्रयोग अत्यन्त नीच लोग भी नहीं कर सकते। श्रीके ऊपर राजाका जो प्रेम था, वह इस समय इन्द्रिय-परायणतामें बदल गया था। परन्तु प्रेम अबतक उनका गया नहीं था। इसीसे बल-प्रयोग करनेकी इच्छा रहते हुए भी सीताराम उसे न कर सके। बल-प्रयोग करूँ या नहीं, इस बातका निश्चय करनेमें सीतारामके प्राण मानों निकल रहे थे। जबतक सीताराम इसका निश्चय न कर सके, तबतक सीताराम एक प्रकारसे ज्ञान-शून्यावस्थामें थे। उसी भयानक बुद्धि-विपर्ययके समय राजकर्मचारी शूलीपर चढ़ाये गये और तहसीलदार कर्मचारी-

लोग कारागार भेजे गये, बाकीदार लोग भी कैद किये गये, प्रजा सब राज्य छोड़कर भाग गयी, राज रसातलको जाने लगा।

अंतमें सीतारामने निश्चित किया कि, श्रीके प्रति बल-प्रयोग ही करेंगे। यह बात मनमें निश्चित करके कार्यमें ज्योंही उसे परिणत करना चाहते थे, त्योंही अकस्मात एक उपद्रव उपस्थित हो गया। चन्द्रचूड़ जीने राजासे एक दिन भेंट करके कहा—महाराज! मेरी इच्छा अब तीर्थ-भ्रमण करनेकी है। यदि आप आज्ञा दें, तो मैं जाऊँ।

इन बातोंसे राजाके सिरपर मानों वज्र गिर पड़ा। चन्द्रचूड़के जानेसे उन्हें निश्चय श्रीको परित्याग करना पड़ेगा, अन्यथा, राज-परित्याग करना होगा। इसलिये राजा चन्द्रचूड़को तीर्थ यात्रा करनेसे रोकनेकी चेष्टा करने लगे।

अब चन्द्रचूड़का पक्का विचार यह हो गया था कि, इस पाप-राज्यमें न रहेंगे, इस पापी राजाका काम अब न करेंगे। इसलिये वह सहजमें सहमत नहीं हुए, बहुतसी बातचीत हुई। चन्द्रचूड़ने राजाको बहुत धिक्कारा। राजाने भी उत्तर-प्रतिउत्तर किया। अंतमें चन्द्रचूड़ फिर रहनेके लिये तैयार हो गये, परन्तु बात ही बात में अधिक रात्रि हो गयी। इससे राजा उस दिन चित्त-विश्राममें जा न सके। इधर चित्त-विश्राममें उस दिन रात्रिको एक घटना और हुई।

सोलहवाँ परिच्छेद

दैवयोगसे उस दिन चित्त-विश्रामके द्वारपर एक भैरवी दिखाई पड़ी। अब चित्त-विश्राम एक छोटासा प्रमोद-गृह होनेपर भी राजमहलके समान था। कई एक द्वारपाल दर्वाजेपर बैठे रहते थे। भैरवीने द्वारपालोंसे भीतर जानेकी आज्ञा माँगी।

द्वारपालोंने कहा—यह राजमहल है, यहाँ एक रानी रहती हैं, किसीके भीतर जानेकी आज्ञा नहीं। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि राजाओंकी उपपत्नियोंको भी भृत्य लोग रानी ही कहते हैं।

भैरवी—यह जानती हूँ। राजा भी मुझे जानते हैं। मुझे जानेकी मनाही नहीं—तुम लोग जाकर राजासे कह दो।

द्वारपाल—राजा इस समय यहाँ नहीं हैं, राजमहलमें गये हैं।

भैरवी—तब जो रानी यहाँ रहती हैं, उन्हींसे जाकर कहो। क्या उनकी आज्ञासे जाने न दोगे?

द्वारपाल एक दूसरेका मुँह निहारने लगे। चित्त-विश्रामके अंतःपुरमें कभी कोई प्रवेश नहीं कर सकता था। राजाकी इस विषयमें कड़ी आज्ञा की। रानीकी भी मनाही थी। राजाके न रहनेपर दो-एक स्त्रियाँ नन्दाकी भेजी हुई, भीतर जाना चाहती थीं; परन्तु रानीको खबर देनेपर उन्होंने भीतर आनेकी आज्ञा नहीं दी थी। फिर रानीको कैसे खबर दें! पर इस भैरवीकी मूर्त्तिको देखनेसे जान पड़ता है कि यह मनुष्य नहीं है। न जाने इसको भगा देनेसे कोई उपद्रव न खड़ा हो जाय!

द्वारपालोंने सात-पाँच करके दासीद्वारा भीतर खबर भेजदी। भैरवी आई हैं, यह सुनते ही श्रीने उसी समय उनको आनेकी आज्ञा दी। जयन्ती भीतर गयी।

उसे देखते ही श्रीने कहा—तुम आगई तो अच्छा ही हुआ। इस समय मुझे तुम्हारी सलाहकी बड़ी आवश्यकता थी।

जयन्ती—मैंने तो कहा था कि ऐसे ही समय मैं तुम्हारी खोज-खबर लेने आऊँगी। अब यहाँका समाचार बतलाओ? नगरमें मैंने सुना है कि राज्यमें बड़ी गड़बड़ी मची है और तुम्हीं इसकी कारण हो। पाठशालाओंमें भी मैंने सुना है, छात्र-लोग रघुवंशके उन्नीसवें सर्गका श्लोक कह रहे हैं। बात क्या है?

श्री—इसीसे तो मैं तुम्हें खोज रही थी। श्रीने तब आदिसे अंततक सब बातें कह दीं। सुनकर जयन्तीने कहा—तब तुम अपना कर्त्तव्य-कर्म क्यों नहीं करती?

श्री—उसे तो मैं नहीं जानती?

जयन्ती—राजमहलमें जाओ। वहाँ राज-महिषी होकर रहो। वहाँ राजाकी प्रधान मंत्री होकर उनको धर्म-मार्गपर चलाओ। वह तुम्हारा ही काम है!

श्री—यह तो मैं नहीं जानती। महिषीका कर्त्तव्य तो मैंने नहीं सीखा है। संन्यासिनीका धर्म तुमने मुझे सिखाया है। जिसको मैं नहीं जानती, और जिसको मैं नहीं कर सकती, उसे करनेसे सब चौपट हो जायगा। संन्यासिनीके महारानी होनेसे क्या कल्याण हो सकता है?

जयन्तीने सोचकर कहा—यह तो मैं नहीं कह सकती। तुम्हारे द्वारा रानीका कर्त्तव्य-पालन न होसकेगा, ऐसाही जान पड़ता है, नहीं तो इतनी खराबी कभी हो सकती?

श्री—एक दिन था, जब मैं रानीका कर्त्तव्य-पालन कर सकती थी। जिस दिन अंचल हिलाकर मुसलमानी सेनाका नाश मैंने किया था, उसदिन वह शक्ति मेरेमें थी, परन्तु भाग्य-से वह मार्ग बन्द हो गया, वह शिक्षा मुझे नहीं मिली। मेरा भाग्य मुझे उलटे रास्ते वनवासमें लेगया। अब मैं संन्यासिनी हूँ। कौन जानता है कि फिर मेरा भाग्य लौटेगा?

जयन्ती—पर अब उपाय क्या?

श्री—भागनेके अतिरिक्त दूसरा उपाय तो मुझे अब नहीं दिखाई पड़ता, वह केवल राजाके लिये या राज्यके ही लिए मैं ऐसा नहीं कहती। मैं अपने लिये भी ऐसा कहती हूँ। राजाको रातदिन देखते-देखते मनमें ऐसी धारणा होती है कि, मैं ही इनकी धर्मपत्नी हूँ, मैं ही इनकी रानी हूँ।

जयन्ती—यह तो ठीक ही है।

श्री—इससे तो पुरानी बात मुझे याद आ जाती है। मैं क्या फिर प्रेमके फन्देमें पड़ूँ? इसीसे मैंने कहा था कि राजाके साथ भेट न करना ही अच्छा है। मेरे शत्रु राजाके सहित बारह हैं।

जयन्ती—और ग्यारह शत्रु तो तुम्हारे शरीर में ही हैं और उन्हीं के लिये तो तुमने संन्यास धारण किया है। जो ईश्वरको तुमने समर्पणकर दिया था उसे फिर तुमने छीन लिया। अब अपनी चिन्ता भी तुमने सीखा। क्या इसीको संन्यास कहते हैं?

श्री—इसीसे तो मैं कहती हूँ कि मेरे लिये भागना ही उचित है।

जयन्ती—उचित तो है।

श्री—राजा कहते हैं कि यदि मैं भाग जाऊँगी, तो वह आत्मघात कर लेंगे।

जयन्ती—पुरुषोंकी यह सब बातें स्त्रियोंको घुलानेके लिये होती हैं। कामवाणसे घायल मनुष्योंका यह प्रलाप है।

श्री—क्या इस बातका डर नहीं है?

जयन्ती—डर हो भी तो क्या? राजाके जीने-मरनेसे तुम्हें क्या? वह तुम्हारे स्वामी हैं, क्या इसीलिये इतना सोच है? क्या इसीको संन्यास कहते हैं?

श्री—यह हो या न हो, पर राजाके मरनेसे ही क्या सर्व-भूतका कल्याण होगा?

जयन्ती—राजा नहीं मरेंगे, डरो मत। लड़के खिलौना खो जानेसे रोते हैं, पर मरते नहीं! तुम ईश्वरमें अपने कर्मों-को अर्पण करके, अपने चित्तको वशमें करनेका प्रयत्न करो।

श्री—तब तो यहाँसे मुझे चली जाना चाहिए।

जयन्ती—हाँ, इसी समय।

श्री—कैसे जाऊँ? द्वारपाल मुझे जाने क्यों देंगे?

जयन्ती—तुम्हारा वह गेरुआ वस्त्र, रुद्राक्ष, त्रिशूल सब यहाँ है, भैरवी बनकर भाग जाओ, द्वारपाल कुछ न कहेंगे।

श्री—वे समझेंगे कि तुम जाती हो। पर उसके बाद तुम कैसे जाओगी?

जयन्तीने हँसकर कहा—यह कैसा मेरा सौभाग्य है! इतने दिनों बाद मेरे लिये सोच करनेवाला एक आदमी तो दिखाई पड़ा! मैं यदि नहीं जा सकूँगी तो इसमें हानि क्या है, बहिन?

श्री—राजाके हाथोंमें पड़ जाओगी। सम्भव है, राजा तुम्हारे ऊपर क्रोध करें।

जयन्ती—क्रोध करके वह मेरा क्या करेंगे? राजाकी क्या सामर्थ्य है कि संन्यासिनीका अनिष्ट कर सकें?

जयन्तीके ऊपर श्रीको पूरा विश्वास था। इसलिये श्रीने तर्क-वितर्क न करके पूछा—तुम्हरे साथ फिर कब भेंट होगी?

जयन्ती—तुम सीधी गाँव में चली जाओ। वहाँ राजाके पुरोहितके साथ भेंट करना। अपना त्रिशूल मुझे देती जाओ, और मेरा त्रिशूल तुम लो। उस गाँवमें राजाके पुरोहित मेरे शिष्य हैं। तुम जो कुछ कहोगी, वह उसे करेंगे। उनसे कहना कि तुमको वह अत्यन्त गुप्त स्थानमें छिपा रखें। क्योंकि तुम्हारे लिये बहुत ढूँढ़-खोज होगी। वह तुमको राजपुरीमें छिपा रखेंगे, वहीं तुम्हारे साथ भेंट करूँगी।

तब श्रीने जयन्तीके पैरोंकी धूलि ली और वनवासके लिए चली गयी। द्वारपालोंने कुछ न कहा।

सत्रहवाँ परिच्छेद

रामचन्द्र—बड़ी भयानक घटना है! लोग घबड़ा उठे हैं।

श्यामचन्द्र—इसीसे तो भैया! इस राज्यमें एक क्षण भी रहना उचित नहीं है।

रामचन्द्र—पर तुम तो आज कितने दिनोंसे जानेकी तैयारी कर रहे हो, गये क्यों नहीं?

श्यामचन्द्र—जा ही रहा हूँ! सब लड़के-बालोंको नलडांगा भेज दिया है। पर यहाँ मेरा कुछ लहना पड़ा है, उसे जहाँतक हो सकेगा वसूल करके तब जाऊँगा। पर वसूल किससे करूँ, देनेवाले भी तो सब भाग गये हैं।

रामचन्द्र—अच्छा इस बार यह नई घटना कैसी? इतना बखेड़ा क्यों मचा है, कुछ जानते हो? सुनता हूँ कि कैदखानेमें

कैदी अँटते नहीं, नये छप्परोंमें भी नहीं अँटते। अब क्या गोशालाओंसे गौओंको बाहर निकाल उसमें कैदियोंको रखेंगे?

श्यामचन्द्र—घटना क्या है, क्या यह नहीं जानते? वह चुड़ैल भाग गयी है।

रामचन्द्र—वह तो सुना है। अच्छा, वह चुड़ैल तो इतनी जप-पूजा, होम-यज्ञसे भी नहीं गयी थी, अब आप ही कैसे भाग गयी?

श्यामचन्द्र—क्या वह अपनेसे गयी है? (धीरे-धीरे कानोंमें) कहते हुये रोएँ खड़े होते हैं! वह देवताके भगानेसे भागी है।

रामचन्द्र—वह कैसे?

श्यामचन्द्र—क्या तुमने नहीं सुना है! इस नगरमें एक देवी रहती हैं? वह कभी-कभी दर्शन देती हैं, बहुतोंने उन्हें देखा है। क्यों, जिस दिन छोटी रानीकी परीक्षा हुई थी, उस दिन क्या तुम वहाँ नहीं थे?

रामचन्द्र—हाँ! हाँ! वह वही हैं! अच्छा, बतलाओ वह कौन हैं?

श्यामचन्द्र—वह क्या किसीसे अपना परिचय देती हैं? पर है क्या कि दस आदमी दस तरहकी बातें कहते हैं!

रामचन्द्र—क्या कहते हैं।

श्यामचन्द्र—कोई कहते हैं वह इस नगरकी राज्य-लक्ष्मी हैं। कोई कहते हैं वह स्वयं लक्ष्मीनारायणजीके मंदिरसे कभी-कभी रूप धारण करके निकलती हैं। कोई कहते हैं, वह स्वयं दसभुजी दुर्गा हैं। दुर्गाजीके मंदिरमें जाकर अन्तर्धान होते बहुतोंने उनको देखा है।

रामचन्द्र—ऐसा ही होगा। नहीं तो वह भैरवी-वेष क्यों

धारण करेंगी ! उस सभामें तो उन्होंने भैरवी-वेष धारण किया था।

श्यामचन्द्र—वह चाहे जो हों, हम लोगोंका सौभाग्य है कि हमलोगोंने उनको उस दिन देखा था। परन्तु राजाकी बुद्धि ऐसी बिगड़ गयी है कि—

रामचन्द्र—हाँ जी, भला वह चुड़ैल कैसे गयी, यह तो बतलाओ ?

श्यामचन्द्र—उस देवीने देखा कि इस चुड़ैलसे राज्यका अमङ्गल हो रहा है, इसीलिये एक दिन भैरवी-वेषसे त्रिशूल धारण करके उसको मारने गयी।

रामचन्द्र—ओफ ! इसके बाद ?

श्यामचन्द्र—उसके बाद और क्या ? देवीजीकी कराल मूर्ति देखते ही वह ताड़के वृक्षकी तरह विकट मूर्ति धारण करके घोर गर्जन करती हुई न जाने कहाँ आकाशमें उड़ गयी, किसीने उसे देखा भी नहीं।

रामचन्द्र—इन बातोंको किसने कहा ?

श्यामचन्द्र—और कौन कहेगा ? जिसने देखा था, वे ही लोग कहते थे। पर राजा उस चुड़ैलके माया जालमें ऐसे जकड़ गये हैं कि उसके चले जानेसे चित्त-विश्रामके जितने द्वारपाल और दास-दासियाँ थीं सबको पकड़कर कैद कर लिया है। उन्हीं लोगोंने इन सब बातोंको प्रकाशित किया है। वे लोग कहते हैं कि महाराज ! हम लोगोंका क्या कसूर है। देवताके सामने भला हम क्या कर सकते हैं ?

रामचन्द्र—यह गप्प तो नहीं है ?

श्यामचन्द्र—यह क्या गप्प हो सकती है ?

रामचन्द्र—हो सकती है। कदाचित चुड़ैल मुर्दा-उर्दा खाने-

के लिये रातको कहीं चली गयी हो और लौटकर न आई हो। अब राजाके डरसे अपना प्राण बचानेके लिये यह गप्प बना-कर वे लोग कहते हों।

श्यामचन्द्र—भला यह क्या बनाई हुई बात है? उन लोगोंने अपनी आँखोंसे देखा था कि, उसके, मूली की तरह लम्बे-लम्बे दाँत, सनकी तरह बाल, कठौतीकी तरह आँख और घड़ियाल-की तरह जीभ, घड़ेकी तरह दोनों स्तन; और बादलके गर्जनकी तरह साँस थे। उसके बोलनेसे ऐसा जान पड़ता था कि पृथ्वी फट जायगी?

रामचन्द्र—सर्वनाश! यह तो बड़ी अद्भुत घटना है! पर हाँ, तुम क्या कहते थे कि राजाकी बुद्धि बिगड़ गयी है?

श्यामचन्द्र—मैं बतलाता हूँ, सुनो। यह तो निरापराधी निर्दोषियोंको कैद करनेकी बात हुई। उसके उपरान्त उस चुड़ैलको खोज लानेके लिये राजाने चारो ओर न जाने कितने आदमियोंको भेजा है। पर मनुष्योंकी क्या सामर्थ्य है कि उसको खोज सकें, क्योंकि वह तो अपने स्थानको चली गयी है। कोई उसको खोज नहीं सकता। सब लोग आकर हाथ जोड़ कर कहते हैं कि उसको खोज नहीं सके।

रामचन्द्र—इसपर राजाने क्या कहा?

श्यामचन्द्र—जो कोई लौटकर कहता है कि पता नहीं लगा, उसीको राजा कैद कर लेते हैं। इस प्रकार कैदखाना भर गया। इधर राज-कर्मचारियोंके मनमें ऐसा भय समाया है कि घर-द्वार स्त्री-पुत्रोंको छोड़कर वे सब भाग रहे हैं। देखा-देखी नगरके लोग और दूकानदार भी भाग रहे हैं।

रामचन्द्र—तो वह देवी क्या करती हैं? उनके कृपा-कटाक्ष करनेसे ही तो सब अपराधियोंकी रक्षा हो सकती है।

श्यामचन्द्र—वह साक्षात भगवती हैं। उन्होंने इन घटनाओंको देखकर भैरवीका वेष धारणकर राजाको दर्शन दिया और राजासे कहा—महाराज ! निरपराधियोंको न सताओ। निरपराधियोंको सतानेसे राज नहीं रहता। इन लोगोंका कोई अपराध नहीं है। मैंने ही उसे भगाया है। क्योंकि उसके कारण राजका अमङ्गल हो रहा था। इसमें यदि कुछ अपराध है तो मेरा ही। यदि आपको दंड देना हो तो उन्हें छोड़ दें और मुझे ही दण्ड दें।

रामचन्द्र—इसके बाद ?

श्यामचन्द्र—इसीसे तो मैं कह रहा था कि राजाकी बुद्धि बिगड़ गयी। उस चुड़ैलके भागते ही राजाका मिज़ाज ऐसा गरम हो गया है कि चील-कौवे भी उनके पास नहीं जा सकते; तर्कालंकारजी और बड़ी रानी भी उनके पास गयीं थीं, पर झिड़की सुनकर चली आईं।

रामचन्द्र—यह क्या ! गुरुको फटकार ! ऐसा करनेसे तो राजा निर्वंश हो जायँगे।

श्यामचन्द्र—इसमें क्या सन्देह। हाँ, इसके बाद क्या हुआ, सो तो सुनो। गरम मिज़ाजके प्रथमावस्थामें ही देवीने जाकर राजाको दर्शन दिया और जो सब बातें कह चुका हूँ, उन्हें राजासे कहा। उन बातोंको सुनते ही पहले राजाकी आँखें लाल होगयीं, फिर उनको अपने ही हाथसे मारनेके लिये तैयार हो गया। पर ऐसा न करके उन्होंने जो किया है, वह और भी भयंकर है ?

रामचन्द्र—क्या किया ?

श्यामचन्द्र—देवीजीको कैद कर लिया है और आज्ञा दी है कि तीन दिनमें यदि वह चुड़ैल न मिल जायगी तो, सब

प्रजाके सामने उस देवीको नङ्गी करके डोमसे बेंत लगवाई जायगी।

रामचन्द्र—अहँ! देवताका वह क्या बिगाड़ सकते हैं! पर राजा क्या पागल हो गये हैं? अच्छा देवीजी क्या सचमुच जेलखानेमें हैं? उनको कैद करनेकी भला किसे सामर्थ्य है?

श्यामचन्द्र—देवताओंका चरित्र भला कौन जान सकता है? राजाका राजत्वकाल अब समाप्त हो चला है, इसीसे देवीजी छल करके अपने धाममें जानेकी चेष्टा कर रही हैं। राजाने उन्हें कैद करनेकी आज्ञा दी और देवीजीने भी प्रसन्नतापूर्वक कारागारमें प्रवेश किया। सुनते हैं कि रातको कारागारमें बड़ा कोलाहल होता है। देवता लोग आकर देवीकी स्तुति करते हैं, ऋषिगण आकर वेदपाठ और मन्त्रपाठ करते हैं। पहरेदार लोग बाहरसे यह सब सुनते हैं, परन्तु द्वार खोलते ही वे सब देवता और ऋषि अन्तर्धान हो जाते हैं। (कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि जयन्ती स्वयं रातको स्तोत्र-पाठ करती है, पहरेवाले यही सुनते हैं)।

रामचन्द्र—इसके बाद क्या हुआ?

श्यामचन्द्र—आज तीन दिन हो गये। राजाने मुनादी फिरवा दी है कि 'कल एक चोर स्त्रीको वेइज्जत करके बेंत मारी जायगी। जिसकी इच्छा हो देखने आ सकता है'। तुमने नहीं सुना क्या!

रामचन्द्र—कैसी दुर्बुद्धि है! तर्कालंकारजी कुछ क्यों नहीं कहते? बड़ी रानी भी कुछ क्यों नहीं कहतीं? झिड़की खानेके डरसे क्या राजाके पास नहीं जा सकतीं?

श्यामचन्द्र—उन लोगोंने बहुत कुछ कहा-सुना। राजाने कहा—अच्छी बात है, वह यदि देवी होगी, तो अपनी रक्षा

आपही कर लेगीं, तुम लोगोंको उसमें दखल देनेकी क्या आवश्यकता है और यदि साधारण भी होगीं तो मैं राजा हूँ, चोरको दंड देना मेरा कर्तव्य है, तुमलोगोंको इसमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है।

रामचन्द्र—हाँ यह बात तो राजाने बेजा नहीं कही है, ठीक ही तो कही। पर देखे कल क्या होता है, कल चलकर देखना होगा। तुम चलोगे?

श्यामचन्द्र—चलूँगा क्यों नहीं? सभी लोग जायँगे? ऐसी घटना देखने भला कौन नहीं जायगा।

अठारहवाँ परिच्छेद

आज जयन्तीको बेंत लगेगी। राज्यमें घोषणा कर दी गयी है कि उसको नंगी करके बेंत मारी जायगी। सवेरेसे ही लोगोंने आना आरम्भ कर दिया। थोड़े समयमें ही किला लोगोंसे भर गया। अब लोग समाते नहीं थे। धीरे-धीरे धक्काधुक्की और ठेलम-ठेला होने लगा। इस किलेमें एक दिन और भी ऐसी ही भीड़ जिस दिन रमाका विचार हुआ था, हुई थी। आज जयन्तीको दंड दिया जायगा। विचारकी अपेक्षा दंड देखनेके लिये अधिक लोग आये थे। नन्दा भी खिड़कीसे देख रही थी। काले-काले बालोंके अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। केवल किसी-किसी स्त्रीके सिर पर आँचल और किसी किसी पुरुषके माथे पर साफ़ा बँधा था। जान पड़ता था कि काले समुद्रमें सफेद फेन बह रहा है। रमाकी परीक्षाका दिन नन्दाको याद आ गया, परन्तु उस दिनसे आजमें इतना भेद था कि उस दिन जनता बड़ी चंचल और क्षुब्ध थी, राजकर्मचारी

बड़ी कठिनाईसे शांति-रक्षा कर रहे थे, परन्तु आज सब लोग शांत हैं, सभीके मनमें राजके अमंगलकी आशंका हो रही है। सबलोग डर गये हैं। आजकी यह भीड़ सिंह-व्याघ्र-विमर्दित जंगलसे भी अधिक भयानक दिखाई पड़ती है।

इस वृहद दुर्ग-प्रांगणके बीचमें एक ऊँचा मंच बनवाया गया। उसपर एक काला बलवान विकटाकार डोम साक्षात कालकी तरह एक बड़ीसी बेंत हाथमें लिये खड़ा था। जयन्तीको उस मंचपर चढ़ाकर, सबके सामने उसे नंगी करके यही डोम बेंत मारेगा। ऐसी ही राजाज्ञा है।

जयन्तीको अबतक वहाँ नहीं लाया गया है। राजा भी अभी नहीं आये हैं—राजाके आनेपर वह लायी जायगी। मंचके सामने राजाके बैठनेके लिये सिंहासन रखा है। उसको घेरकर चोपदार और सिपाही लोग खड़े हैं। आज मंत्रीलोग सभा अनुपस्थित हैं। ऐसी बुरी घटना देखनेकी उनकी इच्छा नहीं है। राजाने भी उन्हें बुलवाया नहीं।

राजा कब आवेंगे, वह देवी कब आवेंगी और कब क्या होगा, इसी आसरे से जन-समूह-उत्सुक होकर एक ओरसे दूसरी ओर देख रहा था। ऐसे समय एकाएक नकीबकी आवाज सुनाई पड़ी। बंदीलोग राजाकी स्तुति करने लगे। दर्शकोंने जाना कि राजा आ रहे हैं। राजाकी वेश-भूषामें आज कुछ भी सुन्दरता नहीं थी। वैशाखकी संध्याके मेघकी तरह राजाकी मूर्ति आज बड़ी भयंकर जान पड़ती थी। उनकी बड़ी-बड़ी आँखें लाल हो रही थीं। उनका विशाल वक्षस्थल हिल रहा था। पानीसे भरे हुए, उतरते बादलकी तरह राजा आकर सिंहासनपर बैठ गये। किसीने आज 'महाराजाधिराजकी जय' नहीं कहा।

तब वह जन समूह सिर ऊँचा करके इधर-उधर देखने लगा। उस समय पहरेदार लोगोंने जयन्तीको लेजाकर मंच-पर खड़ी कर दिया। उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो किसी महलकी छतपर पूर्ण चन्द्र उदय हुआ है। उस समय हजारों दर्शक ऊँचा मुँह करके स्थिर आँखोंसे, उस गेरुआ वस्त्र-धारण करनेवाली अपूर्व ज्योतिर्मयी देवीको देखने लगे। उसकी उन्नत ललित, मधुर और उज्ज्वल देहको और उसके देव-दुर्लभ धैर्य्य तथा शांतिको देखकर सभी दर्शक मुग्ध हो गये। उन्होंने देखा कि सूर्य्यकी नवीन किरणोंसे खिले हुए कमलकी तरह उसका मुख इस समय भी प्रसन्न है। उसके अधरपर मन्द-मन्द मधुर सर्वविपत्ति-संहारिणी-हँसीको देखकर सबने हाथ जोड़ कर भक्ति-भावसे प्रणाम किया। जब कुछ लोगोंने देखा कि दूसरे कुछ लोग जयन्तीको देखकर प्रणाम कर रहे हैं, तब उनके मनमें भी भक्ति उत्पन्न हो गयी। तब वे लोग भी 'माताजीकी जय! जय लक्ष्मी माताकी जय!' इत्यादि जय-ध्वनि करने लगे। यह जय-ध्वनि धीरे-धीरे प्रांगण-के एक ओरसे दूसरी ओर पर्वत-श्रेणीपर वज्रनादकी तरह फैलने लगी। अंतमें उपस्थित सब लोग एक साथ तुमुल जय-ध्वनि कर उठे। उनके जयनादसे नगर काँप उठा। डोमके हाथसे बेंत गिरपड़ी। जयन्ती मनही मन कहने लगी—हे जगदीश्वर! यह जय-ध्वनि तुम्हारे ही लिये हो रही है। तुम्हींने स्वयं इस जन-समूहका रूप धारण किया है। तुम्हीं इन मनुष्योंके कंठमें रहकर अपनी जय-ध्वनि आपही कर रहे हो! हे जगन्नाथ! यह तुम्हारी ही जय है! मैं कौन हूँ!

क्रोधित राजाने और भी क्रुद्ध होकर मेघकी भाँति गरजते हुए डोमको आज्ञा दी कि, कपड़ा उतारकर बेंत लगाओ।

उसी समय चन्द्रचूड़ तर्कालंकारने एकाएक आकर राजा-का दोनों हाथ पकड़ लिया। उन्होंने कहा—महाराज! रक्षा करो। मैं फिर कभी आपसे और कोई भिक्षा न माँगूगा, इस बार मुझे यह भिक्षा दें—इसको छोड़ दें।

राजा—(व्यंगके साथ) क्यों, क्या देवीकी इतनी सामर्थ्य नहीं है कि अपनेको छुड़ाकर चली जाय! इस दुष्टाको उचित दण्ड मिल रहा है।

चन्द्रचूड़—चाहे यह देवी न हो, पर स्त्री तो है।

राजा—स्त्रियोंको भी राजा दण्ड दे सकते हैं।

चन्द्रचूड़—क्या आप यह जय-ध्वनि नहीं सुन रहे हैं? इस जय-ध्वनिमें आपका राज-यश डूब रहा है।

राजा—पण्डितजी! आप अपने कामपर जायँ। आज आपका पोथी-पत्रा क्या नहीं है? चन्द्रचूड़ चले गये। तब डोमने फिर राजाकी आज्ञा पाकर बेंत उठा लिया, बेंतको ऊँची किया और जयन्तीके मुखकी ओर देखा। बेंत नीची करके फिर उसने राजाकी ओर देखा और फिर उसने जयन्तीकी ओर देखा—अंतमें बेंत फेंककर खड़ा हो गया।

राजाने वज्रकी तरह कड़ककर कहा—क्यों! क्या हुआ?

डोम—महाराज! मुझसे यह काम नहीं होगा?

राजा—तुमको शूलीपर चढ़ना होगा।

डोमने हाथ जोड़कर कहा—महाराजकी आज्ञासे मैं शूली-पर चढ़ सकूँगा, परन्तु यह काम न कर सकूँगा।

तब राजाने अनुचरोंको आज्ञा दी कि इस डोमको पकड़-कर ले जाओ और कैद कर दो।

नौकर लोग डोमको पकड़नेके लिये मञ्चपर जब चढ़ने लगे, तब जयन्तीने सीतारामसे कहा—इस बिचारेको न सतावें,

आपकी जो आज्ञा है उसका मैं स्वयं पालन करती हूँ, डोम या जल्लादकी आवश्यकता नहीं है। इतनेपर भी जब सिपाही डोमको पकड़नेके लिये आने लगे, तब जयन्तीने उससे कहा—बेटा! तू मेरे लिए क्यों दुःख उठाता है? मैं संन्यासिनी हूँ, मेरे लिए दुःख-सुख दोनों ही बराबर हैं, बेंतसे मेरा क्या हो सकता है। नङ्गी होनेमें भी मुझे कोई लज्जा नहीं है, क्योंकि संन्यासियोंके लिये नंगे होना और वस्त्र पहनना दोनों ही बराबर है। तू क्यों दुःख उठाता है, बेंत उठा।

डोमने बेंत नहीं उठाई। तब जयन्तीने उस डोमसे कहा—बेटा! तूने मुझे स्त्री समझकर मेरी बातोंपर विश्वास नहीं किया, इसलिये मेरी बातोंका प्रमाण देख ले। यह कहकर जयन्तीने स्वयं बेंत उठा ली और दाहिने हाथसे उसे पकड़कर उस विशाल जनताके सामने, अपने खिले हुये लाल-कमलकी तरह छोटे हाथको फैलाकर बड़े जोरसे उसपर बेंत मारी। बेंत लगनेसे वहाँका माँस कट गया और उसमेंसे रक्तकी धारा बहने लगी। जयन्तीका गेरुआ वस्त्र और मंच रक्तसे भर गया। यह देखकर लोग हा-हाकार करने लगे। जयन्तीने हँसकर उस डोमसे कहा—देख बेटा! क्या संन्यासिनीको कहीं चोट लगती है? तू क्यों डरता है? डोमने एक बार रक्त बहते हुए उस घावकी ओर देखा, दूसरी बार फिर उसने जयन्तीके प्रसन्न मुखकी ओर देखा। अंतमें पीछे फिरकर अत्यन्त भयसे विह्वल होकर वह मंचकी सीढ़ीसे उतरकर एक सांसमें भागा। भीड़में न जाने कहाँ जा छिपा, फिर उसको कोई देख न सका।

राजाने नौकरोंको आज्ञा दी कि दूसरे जल्लादको बुला लाओ, जो मुसलमान हो। अनुचर यमके सदृश एक कसाईको बुला लाये। यह महम्मदपुरमें तो गाय नहीं काटने पाता था,

पर नगरके बाहर बकरा-भेंड आदि काटकर बेंचता था। यह कसाई बड़ा बलवान और बदशकल था। राजाकी आज्ञा पाते ही, मञ्चपर चढ़ गया, बेंत हाथसे लेकर जयन्तीके सामने खड़ा हो गया। बेंत उठाकर उसने जयन्तीसे कहा—कपड़ा उतार, तेरा गोश्त टुकड़ा-टुकड़ा करके हम दुकानमें बेचेंगे।

जयन्तीने तब प्रसन्न मुखसे जनसमूहको सम्बोधन करके कहा—राजाकी आज्ञासे इस मञ्चपर मैं नङ्गी की जाऊँगी। तुम लोगोंमें जो सती-पुत्र हों, अपनी-अपनी माताओंको याद करके थोड़ी देरतक अपनी-अपनी आँखें मूँद लें। जिनको कन्याएँ हैं, वह अपनी कन्याका स्मरण करके मुझ जयन्तीको कन्या समझकर आँखें मूँद लें। जो हिन्दू हैं—जिन्हें देवता और ब्राह्मणकी भक्ति है, वही आँखें मूँदें। पर जिनकी माता असती हैं, जिनका जन्म वेश्याके गर्भसे हुआ है, उनकी जो इच्छा हो करें, उनसे मुझे लज्जा नहीं है। मैं उन्हें मनुष्य नहीं समझती।

लोगोंने ये बातें सुनकर आँखें मूँदी हों या न मूँदी हों, पर जयन्तीने फिर आँखें खोलकर उनकी ओर देखा नहीं। उसका मन उस समय जगदीश्वरके चरणोंमें लगा था। वह ईश्वरके अतिरिक्त और किसीको देख नहीं रही थी। जयन्तीने केवल राजाकी ओर फिरकर कहा—मैं तुम्हारी आज्ञासे नङ्गी हो रही हूँ। तुम मेरी ओर न देखना। तुम राजराजेश्वर हो, तुम्हारी पशु-वृत्ति देखकर प्रजा क्या न करेगी? महाराज! मैं वनवासिनी हूँ, वनमें रहती समय अनेक बार नङ्गी होना पड़ता है। एकबार मैं बाघके मुँहमें पड़ गयी थी। बाघसे अपने शरीरकी रक्षा तो कर सकी थी, परन्तु वस्त्र नहीं बचा सकी। तुमको भी मैं तुम्हारा आचरण देखकर वैसा ही वन-पशु समझती हूँ। इसलिये तुम्हारे सामने मुझे लज्जा नहीं आती।

परन्तु तुम्हें लज्जित होना उचित है, क्योंकि तुम राजा और गृहस्थ हो; तुम्हारे रानी है; इसलिये आँखें मूँद लो।

जयन्तीका यह सब कहना वृथा हुआ। राजा उस समय क्रोधसे अंधे हो रहे थे। जयन्तीकी बातोंका कोई उत्तर न देकर उन्होंने कसाईसे कहा—जबर्दस्ती कपड़ा उतार लो।

तब जयन्ती और व्यर्थकी बातें न कहकर मञ्चके ऊपर बैठ गयी। जयन्ती अपने निकट आपही ठगी गयी। इस समय जयन्तीकी आँखोंमें आँसू आ गये। जयन्तीने सोचा था कि जब पृथ्वीके सब दुःख-सुखोंको मैंने त्याग दिया है, जब मेरे लिये दुःख और सुख समान हैं, तब मुझे लज्जा किस बातकी! इन्द्रियोंके साथ मेरे मनका जब कोई सम्बन्ध नहीं है, तब मरे लिये वस्त्र पहरना और उसका त्याग करना दोनों ही बराबर हैं। पाप ही लज्जा है, फिर मैं लज्जा क्यों करूँ? जगदीश्वरके अतिरिक्त मनुष्योंसे मुझे लज्जा काहेकी? मैं इस सभामें नङ्गी क्यों न हो सकूँगी?

इसीसे जयन्ती अबतक अपनेको विपत्ति-ग्रस्त नहीं समझती थी, बेंत लगनेको तो वह कोई चीज ही नहीं समझती थी। परन्तु इस समय जब नङ्गी होनेका समय आया, तब न जाने कहाँसे आकर लज्जाने इस इन्द्रिय-विजयिनी सुख-दुःख-वर्जिता जयन्तीको भी घेर लिया। इसीसे स्त्री जन्मको वह धिक्कार देकर मञ्चपर बैठ गयी। हाथ जोड़कर पवित्र मनसे जयन्ती आत्माका समाधान करके मन-ही-मन कहने लगी, हे दीनबन्धु! आज मेरी रक्षा करो। मैंने समझा था, इस पृथ्वीके सब दुःख-सुखोंको मैंने त्याग दिया है, किन्तु, हे दर्पहारी! मेरा दर्प चूर हो गया। आज मेरी रक्षा करो। हे प्रभो, मुझे नारी-देह क्यों दिया था? सब सुख-दुःख विसर्जन किया जा

सकता है, परन्तु नारी-देह रहते लज्जा त्याग नहीं की जा सकती। इसलिये आज मैं कातर होकर तुम्हें पुकारती हूँ। हे जगन्नाथ! मेरी रक्षा करो।

जबतक जयन्ती जगदीश्वरको पुकार रही थी, तबतक कसाई उसका अंचल पकड़कर खींच रहा था। यह देखकर समस्त जनता एक स्वरसे हा-हाकार करने लगी। लोग कहने लगे—महाराज! इस पापसे तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा, आपका राज्य रसातलको चला जायगा। राजाने इन बातोंपर ध्यान नहीं दिया। असहाय जयन्ती अपने अंचलको अपनी ओर खींच रही थी, उसकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे। उस समय यदि श्री होती तो वह यह देखकर अत्यन्त विस्मित होती, क्योंकि जयन्तीको आँखोंमें इसके पहले किसीने भी आँसू नहीं देखे थे। जयन्ती अपने रक्तसे भरे हुए हाथोंसे अपने अञ्चलको पकड़कर पुकार रही थी, हे जगदीश्वर! हे जगन्नाथ! दीनबन्धु, मेरी रक्षा करो।

जान पड़ता है कि जगदीश्वरने उसकी बातें सुनलीं। वह असंख्य जन-समूह हा-हाकार करते-करते, सहसा जय-ध्वनि कर उठा। रानीजीकी जय! महारानीकी जय!! देवीजीकी जय!!! उस समय जयन्तीके कानोंमें आभूषणोंकी ध्वनि सुनाई पड़ी। जयन्तीने मुख उठाकर देखा कि सामने अनेक नगर-निवासिनी स्त्रियोंको साथमें लेकर महारानी नन्दा मंचपर आ रही हैं। जयन्ती उठकर खड़ी होगई। वे सब नगर-निवासिनी स्त्रियाँ जयन्तीको घेरकर खड़ी हो गयीं। महारानी स्वयं जयन्तीको छिपाकर उसके सामने खड़ी हो गयीं। दर्शकगण बार-बार हर्ष-ध्वनि और जय-ध्वनि करने लगे। कसाईने जयन्तीका हाथ छोड़ दिया, परन्तु मंचसे उतरा नहीं। राजा-

ने अत्यन्त विस्मित और क्रुद्ध होकर कठोर शब्दोंमें नन्दासे कहा—यह क्या महारानी! नन्दाने कहा महाराज! मैं पति और पुत्रवती हूँ। मैं अपने जीवित रहते तुम्हें कदापि ऐसा पाप करने न दूंगी। नहीं तो मेरा सर्वनाश हो जायगा। राजाने पहलेकी ही तरह क्रुद्ध स्वरसे कहा—तुम्हारा स्थान अंतःपुरमें है, यहीं नहीं। तुम अंतःपुरमें चली जाओ।

नन्दाने उनकी बातोंका कोई उत्तर न देकर कहा—महाराज! मैं जिस मंचपर खड़ी हूँ, यह कसाई उसी मंचपर किस साहससे खड़ा है? उसको यहाँसे हट जानेकी आज्ञा दें।

राजाने कुछ न कहा। तब नन्दाने उच्चस्वरसे पुकारकर कहा—इस राजपुरीमें क्या मेरा कोई नहीं है, जो इस कसाईको यहाँसे हटादे?

तब हजारों दर्शक एक साथ मार-मार करते कसाईकी ओर दौड़े। वह मंचसे कूदकर भागनेकी चेष्टा करने लगा। परन्तु दर्शकोंने उसको पकड़ लिया और मारते-मारते उसे दुर्गके बाहर ले गये। फिर उसकी अनेक दुर्दशा करके छोड़ दिया।

नन्दाने जयन्तीसे कहा—माता! दया करके मुझे अभय दो। माता! मुझे बड़ा भय है। मा! मेरा अपराध क्षमा करो। एक बार अंतःपुरमें अपने चरणोंका रज देकर उसे पवित्र करो। मैं आपकी पूजा करूँगी।

तब रानी पुर-स्त्रियोंके साथ जयन्तीको लेकर अंतःपुरकी ओर चलीं। राजा कुछ कर न सके। वह सिंहासन से उठकर चले गये। तब महा कोलाहल करते हुए और नंदाको आशीर्वाद देते हुए दर्शकगण दुर्गसे बाहर निकलने लगे।

अंतःपुरमें जाकर जयन्ती क्षणमात्र भी वहाँ न ठहरी।

नन्दा अनेक विनय करके अपने हाथोंसे गंगाजल लेकर जयन्तीका पैर धोकर उसे सिंहासनपर बैठाने लगी। परन्तु जयन्तीने हँसकर कहा—मा! मैं मनसा-वाचा-कर्मणा आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हारा मंगल हो। क्षणमात्रके लिये भी सोच न करना कि, मैंने किसी प्रकारका क्रोध या दुःख किया है। ईश्वर न करे, परन्तु यदि कभी तुम्हारे ऊपर कोई विपत्ति आ पड़ेगी, तो मैं आकर तुम्हारी यथाशक्ति सहायता करूँगी। परन्तु राजपुरीमें संन्यासिनीके लिए स्थान नहीं है। इसलिये मैं अब जाती हूँ। नन्दा और पुर-स्त्रियोंने जयन्तीके पैरोंकी धूलि लेकर उसे विदा किया।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

राजाओंके अंतःपुरकी बातें बाहर जाती हैं सही, परन्तु ठीक-ठीक नहीं जातीं। स्त्रियोंके मुखसे जो बातें निकलती हैं, वह एक दूसरेके मुखसे फैलती-फैलती बहुत बड़ी हो जाती हैं। खासकर जहाँ जरासी भी विस्मयकी गंध रहती है, वहाँ वह बहुत ही बढ़ जाती है। जयन्तीके सम्बन्धमें आश्चर्य्य-जनक बातें पहले ही बहुतसी फैल गयीं थीं, जिन्हें हम लोग नागरिकोंके द्वारा पहले ही सुन चुके हैं। अब जयन्ती राजमहलमें प्रवेश करके ही चली गयी थी, यह सीधी-सीधी बात भी जिस प्रकार बाहर फैली, उससे लोगोंने यही समझा कि देवी अंतःपुरमें प्रवेश करके ही अन्तर्धान हो गयीं। फिर उन्हें किसीने देखा नहीं।

इसलिये लोगों को दृढ़ विश्वास हो गया कि वह नगरकी अधिष्ठात्री और रक्षा करनेवाली देवी हैं। राजाको छलकर

राज्य छोड़कर चली गयी हैं, इसलिये अब राज नहीं ठहरेगा। दुर्भाग्यसे इस समय एक अफवाह और उड़ी कि मुर्शिदाबादसे नवाबी फौज आरही है, इसलिये राज्यका नाश अति निकट है। इस विषयमें लोगोंको सन्देह नहीं रहा। नगरमें गठरी-मोटरी बाँधनेकी धूम मच गयी। बहुतसे लोग नगर त्याग करके चल दिये।

सीताराम इन बातोंका कोई समाचार न सुनकर, चित्त-विश्राम में जा अकेले रहने लगे। इस समय उनके चित्तमें क्रोध ही प्रबल था। वह क्रोध श्रीके ही ऊपर अधिक प्रबल हो उठा।

उद्भ्रान्त चित्त सीतारामने अपने कई एक नीच नौकरोंको आज्ञा दी कि राज्यमें जहाँ कहीं सुन्दरी स्त्रियाँ हों, मेरे लिये उन्हें चित्त-विश्राम में ले आओ। तब तो दल बाँधकर वे दुष्ट चारो ओर दौड़ पड़े। जो धनसे वशमें हुईं उनको धन देकर लाये, जो सती-साध्वी थीं, उन्हें बलपूर्वक लाने लगे। राजमें हा-हाकारपर और हाहाकार बढ़ गया।

यह सब देखकर चन्द्रचूड़जी किसीसे बिना कुछ कहे बोरिया-बँधना बाँधकर तीर्थ-यात्रा करने चले गये। इस जीवन-में फिर उन्होंने कभी महम्मदपुरमें पैर नहीं रखा।

मार्गमें जाते समय चाँदशाह फकीरसे उनकी भेंट हुई। फकीरने पूछा-पंडितजी आप कहाँ जारहे हैं?

चन्द्रचूड़—काशी। आप कहाँ जा रहे हैं?

फकीर—मक्का।

चन्द्रचूड़—तीर्थ-यात्राके लिये?

फकीर—जिस देशमें हिन्दू हैं, उस देशमें मैं अब न रहूँगा। यह बात मुझे सीतारामने सिखाई है।

बीसवाँ परिच्छेद

जयन्ती प्रसन्न मनसे महम्मदपुरसे बाहर निकली। उसके मनमें दुःख नहीं था, प्रत्युत बड़ा आनन्द था। मार्गमें जाते-जाते वह मन-ही-मन कहने लगी—हे जगन्नाथ! तुम्हारी दया अपार है! तुम्हारी महिमाका पार नहीं है! तुमको जो नहीं जानता, जो नहीं सोचता, उसीके लिए विपत्ति है! विपत्ति किसको कहते हैं, प्रभो! तुमने मुझे किस विपत्तिमें डाला था! वह तो वास्तवमें मेरे लिये परम सौभाग्यकी बात थी! मैं अबतक नहीं जानती थी कि मैं धर्म-भ्रष्ट हूँ, मेरे मनमें वृथा गर्व, अभिमान और अहंकार भरा था। जिस प्रकार अर्जुनने तुम्हें पुकारा था, उसी प्रकार मैं भी तुम्हें पुकारती हूँ, प्रभो! मुझे शिक्षा दो! मेरा शासन करो!

"यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे।
शिष्यस्तेऽहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम्॥"

जयन्तीने जगदीश्वरको सामने रखकर उनके साथ बात-चीत करना सीख लिया था। मनकी सब बातें खोलकर विश्व-पितासे कहना वह जानती थी। जैसे बालक अपने माँ-बापके निकट हट करते हैं, उसी प्रकार जयन्तीने भी परम पिता-के निकट हट करना सीख लिया था। अब जयन्तीने सीता-रामके लिये हट करना आरम्भ किया। सीतारामकी इस समय जैसी मति-गति है, उससे तो जान पड़ता है, उनके नाशका दिन अति निकट है। अब उनकी रक्षा होनी कठिन है। परन्तु हे अनन्त दयाके आधार, ईश्वर! आपके यहाँ क्या उनके लिये तनिक भी दया नहीं है? जयन्ती यही सोच रही

थी। वह सोच रही थी कि मैं जानती हूँ, पुकारनेसे वह अवश्य सुनते हैं। सीताराम उनको नहीं पुकारता, वह उन्हें पुकारना भूल गया है। नहीं तो ऐसी दुर्दशामें वह क्यों पड़ता ! पापीके लिये यही दंड है कि वह दयामय ईश्वरको पुकारना भूल जाय। इसीलिये सीताराम ईश्वरको पुकारना भूल गया है। वह उनको चाहे पुकारे या न पुकारे, पर मैं ही यदि उसकी ओरसे जगदीश्वरको पुकारूँ तो क्या वह न सुनेंगे ? मैं यदि अपने पिताके निकट हट करूँ कि इस पापी सीतारामको पापसे छुड़ाओ, तो क्या वह न सुनेंगे ! हे जगन्नाथ ! तुम्हारी जय हो ! तुम्हें सीतारामका उद्धार करना ही होगा।

इसके उपरान्त जयन्तीने सोचा कि जो चेष्टा-रहित है, उसकी पुकार भगवान् नहीं सुनते। मैं यदि स्वयं सीतारामके उद्धारके लिये कोई चेष्टा न करूँ, तो भगवान् मेरी बातोंको क्यों सुनेंगे? देखूँ, मैं क्या कर सकती हूँ। पहले श्रीको खोजना चाहिये। श्रीने भागकर अच्छा नहीं किया। पर यदि वह न भागती, तो भी क्या परिणाम होता, इसको कौन जानता है। मेरी क्या सामर्थ्य है कि भगवान्के निर्दिष्ट किये हुए कार्य-कारणका परिणाम समझ सकूँ।

तब जयन्ती श्रीके पास चली। यथा-समय श्रीसे भेंट हुई। जयन्तीने श्रीसे सब वृत्तान्त कह दिया। श्रीने उदास होकर कहा—राजाका अधःपतन निकट है। उनके उद्धारका क्या कोई उपाय नहीं है ?

जयन्ती—उपाय भगवान् हैं। वह भगवान्को भूल गये हैं। जिस दिन वह भगवान्को फिर याद करेंगे, उस दिनसे फिर उनकी उन्नति होने लगेगी।

श्री—इसका क्या उपाय है ? मैं जब उनके पास थी, तब

सदा भगवत्-चर्चा ही उनसे किया करती थी। और वह भी उसे मन लगाकर सुनते थे।

जयन्ती—तुम्हारे मुँहसे निकली हुई बातें जानकर ही वह उसे ध्यानसे सुनते थे, तुम्हारे मुँहकी ओर वह टकटकी लगाकर देखते थे, क्योंकि तुम्हारे रूप और स्वरपर वह मुग्ध थे। भगवत्-चर्चा उनके कानोंमें प्रवेश नहीं करती थी। उन्होंने क्या किसी दिन तुम्हारी इन बातोंका उत्तर दिया था? क्या किसी दिन किसी तत्त्वकी मीमांसा तुमसे पूछी थी? ईश्वरके गुण-गान करनेमें क्या उनका प्रेम किसी दिन देखा था?

श्री—नहीं। ये सब बातें तो मैंने नहीं देखी थीं।

जयन्ती—तब वह मन लगाकर तुम्हारी बातें केवल तुम्हारे सौन्दर्य्यके कारण सुनते थे, भगवत्-प्रेमके कारण नहीं।

श्री—तब इस समय क्या करना चाहिये?

जयन्ती—तुम क्या करोगी? तुमने तो कहा था कि मैं संन्यासिनी हूँ, मेरा कोई कर्म नहीं है?

श्री—जैसा तुमने मुझे सिखाया था, वही मैंने कहा था।

जयन्ती—मैंने क्या तुम्हें यही सिखाया था? मैंने क्या यह नहीं सिखाया था कि अनुष्ठेय-कर्ममें अनासक्त होकर फल-त्यागपूर्वक उसका निरन्तर अनुष्ठान करनेसे ही कर्मका त्याग होता है, अन्यथा नहीं?* स्वामीकी सेवा करना क्या तुम्हारा अनुष्ठेय-कर्म नहीं है?

श्री—तब भागनेके लिये तुमने राय क्यों दी थी?

जयन्ती—तुमने कहा था कि तुम्हारे शत्रु राजाके सहित

---

* कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलंचैव स त्यागः सात्विको मतः॥ गीता।

धारह हैं। यदि इन्द्रियाँ तुम्हारे वशमें नहीं हैं, तो तुम्हारी स्वामि-सेवा भी सकाम हो जाती। अनासक्त होकर कर्मानुष्ठान किये बिना कर्म-त्याग नही होता। इसीसे मैंने तुमसे भागनेके लिये कहा था। जिससे जो बोझ नही उठ सकता, उसको मैं वह भार उठानेके लिये नही कहती। "पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं" इत्यादि उपमा याद है न ?

श्री बड़ी लज्जित हो गयी। उसने सोचकर कहा—मैं इसका उत्तर दूँगी।

उस दिन और कुछ बातचीत नही हुई। श्रीने उस दिन जयन्तीसे फिर भेंट नहीं की। दूसरे दिन जयन्तीने उसे फिर घेरा और कहा मेरी बातोंका क्या उत्तर देती हो संन्यासिनीजी ?

श्री—एक बार मेरी और परीक्षा कर देखो।

जयन्ती—अच्छी बात है। तो महम्मदपुर चलो। तुम्हारा अनुष्ठेय कर्म क्या है उसे मार्गमें विचार करती चलेंगी।

दोनों उसी समय महम्मदपुरकी ओर चलीं।

गङ्गाराम गये, रमा गयीं, श्री गयी; जयन्ती गयी, चन्द्रचूड़ गये, चाँदशाह गये; तब भी सीतारामको ज्ञान न हुआ।

अब रह गये—मृण्मय और नन्दा। नन्दा इस बार बड़ी क्रोधित हुई, पतिभक्तिसे अब उसका क्रोध रुकता नहीं था। परन्तु नन्दाका अब कोई सहायक नहीं था। एक मृण्मय उसका सहायक हो गया था, इसलिये नन्दाने कर्त्तव्य निश्चित करनेके लिए एक दिन सबेरे ही मृण्मयको बुला भेजा। उसकी वह बुलाहट मृण्मय तक न पहुँची। मृण्मय अब संसारमें नहीं रह गया था। उसी दिन सबेरे उसकी मृत्यु होगयी थी।

सबेरे उठते ही मृण्मयने सुना कि मुसलमानी सेना महम्मदपुरपर आक्रमण करनेके लिये आ रही है। उनकी सेना

अब किले तक पहुँचना ही चाहती है। वज्रकी तरह यह समाचार मृण्मयके कानों तक पहुँचा। उन्होंने कोई युद्धकी तैयारी नहीं की थी। इस समय चन्द्रचूड़के वे गुप्तचर नहीं रह गये थे कि पहलेसे ही समाचार ला देते। समाचार पाते ही विशेष बातें जाननेके लिये मृण्मय स्वयं घोड़ेपर चढ़कर वहाँ गये। कुछ दूर जाकर वह मुसलमानी सेनाके सामने पड़ गये। वह भागना नहीं जानते थे, इसलिये मुसलमानोंके द्वारा मारे गये।

मुसलमानी सेनाने आकर सीतारामका दुर्ग घेर लिया। नगर छोड़कर नगर-निवासी भाग गये। चित्त-विश्राममें जहाँ सुन्दरियोंसे घिरे हुए सीताराम भोग-विलासमें उन्मत्त थे, वहीं सीतारामके पास समाचार पहुँचा कि मृण्मय मारे गये, मुसलमानी सेनाने आकर दुर्ग घेर लिया है। सीतारामने मन ही-मन कहा, तब आज अंत है, राजाका अंत है और जीवका भी अंत है। तब राजा सुन्दरियोंको छोड़कर उठ खड़े हुए। उन विलासिनियोंने कहा—महाराज! कहाँ जाते हो? हम लोगोंको छोड़कर कहाँ जाते हो?

सीतारामने चोपदारको आज्ञा दी कि इन्हें बेंत मारकर निकाल दो।

स्त्रियाँ खिल-खिलाकर हँसने लगीं। उनको रोककर भानुमति नामकी एक स्त्रीने राजाके सम्मुख जाकर कहा—महाराज! आज आपको मालूम हुआ होगा कि धर्म अवश्य ही अभी पृथ्वीपर है। हम लोग कुल-कन्यायें हैं हम लोगोंके कुल और धर्मका नाश करके आपने सोचा था कि इसका प्रतिफल न मिलेगा। हम लोगोंमेंसे किसीकी माता रोती होंगी, किसीके स्वामी रोते होंगे और किसीका बालक रोता होगा। क्या आपने सोचा था कि वह रुदन जगदीश्वरके कानों तक न

पहुँचेगा ? महाराज ! अब आप नगरमें मुख न दिखावें, वनमें चले जायँ ! आजसे याद रखें कि पृथ्वीपर अभी धर्म्म है।

राजा, इन बातोंका उत्तर न देकर घोड़ेपर चढ़ वायु-वेगसे उसे दौड़ाते हुए दुर्ग-द्वारपर जा पहुँचे। उनके पीछे वे युवतियाँ भी दौड़ीं। किसीने कहा—आओ भाई, राजाकी राजधानी चलकर लूट लें, सीताराम रायका सर्वनाश चलकर अपनी आँखोंसे देखें। किसीने कहा—सीताराम अब ईश्वरको स्मरण करेंगे, चलो हम लोग भी चलकर ईश्वरका भजन करें। ये सब बातें राजाके कानों तक नहीं पहुँचीं, क्योंकि भानु-मतिकी बातोंसे राजाका कान भर गया था। राजाने स्वीकार किया कि अभी धर्म पृथ्वीपर है।

राजाने जाकर देखा—मुसलमानी सेनाने अभी किलेको घेरा नहीं है, अभी केवल वह आ रही है। उसके आगे धूलि उड़ती हुई दिखाई पड़ती थी, झंडे फहरा रहे थे, और घुड़-सवार इधर-उधर दौड़कर अपने-अपने जगहपर जा रहे थे। सेनाका प्रधान अंश दुर्ग-द्वारके सामने आ रहा है। सीतारामने दुर्गमें पहुँचकर फाटक बन्द कर लिया।

तब राजा दुर्गके भीतर चारो ओर घूमने लगे। उन्होंने देखा कि सिपाही इस समय बिलकुल नहीं हैं। वह पहलेसे ही बहुत दिनका वेतन न पानेके कारण भाग गये थे। अब-तक जो थोड़ेसे रह गये थे, वे भी मृणमयकी मृत्यु और मुसल-मानोंकी चढ़ाईका समाचार सुनकर खिसक गये थे। दो-चार ब्राह्मण और राजपूत जो अत्यन्त स्वामि-भक्त थे, जो एक बार किसीका नमक खानेसे भूलते नहीं थे, वे ही अबतक किलेमें रह गये थे। सब मिलाकर इनकी संख्या पचाससे

अधिक नहीं थी। राजाने मन-ही-मन कहा—मैं बहुत पाप कर चुका। अब इनके प्राण बचा देना ही मेरा धर्म है।

राजाने देखा कि कोई राज-कर्मचारी अब नहीं है। सभी अपना-अपना धन और प्राण बचाकर भाग गये हैं। नौकर-चाकर भी कोई नहीं रह गया। केवल दो-एक बड़े पुराने दास-दासी अपने स्वामीके साथ प्राण-त्याग करनेके लिये पक्का विचार करके अबतक टिके हैं।

तब राजाने अन्तःपुरमें जाकर देखा कि, नातेदार, रिश्ते-दार जो इस नगरमें रहते थे, सभी अपने-अपने प्राण लेकर भाग गये हैं। वह बृहत् राज-भवन आज जंगलकी तरह सुन-सान और उजाड़ दिखलाई पड़ता है। राजाकी आँखोंमें आँसू आ गये।

राजा जानते थे कि नन्दा कभी यहाँसे न जायगी, उसके जानेका कहीं दूसरा स्थान भी नहीं है। वह आँखें पोंछते हुए नन्दाको खोजने चले। उसी समय मुसलमानोंकी तोपकी आवाज सुनाई पड़ने लगी। वे किलेको घेरकर उसे तोड़नेकी चेष्टा कर रहे थे। उस समय बाहरका भयंकर कोलाहल अंतः-पुरसे भी सुनाई पड़ने लगा। राजाने नन्दाके महलमें जाकर देखा—नन्दा जमीनपर पड़ी है, उसके चारों ओर उसके लड़के और लड़कियाँ तथा रमाका पुत्र बैठे रो रहे है। राजाको देख कर नन्दाने कहा—हाय! महाराज! यह आपने क्या किया?

राजा—जो कुछ भाग्यमें बदा था वही हुआ। मैंने पहले पतिघातिनी स्त्रीसे विवाह किया था, उसीके मोह-जालमें पड़कर मेरी ऐसी बुद्धि हुई।

नन्दा—महाराज! तब क्या वह श्री थी?

राजा—हाँ! मैं श्रीकी ही बात कह रहा हूँ।

नन्दा—जिसको हम लोग चुड़ैल समझते थे, वह क्या श्री थी ? अब तक आपने यह सब मुझसे कहा क्यों नहीं ?

नन्दाका मुँह इस महाविपत्ति-कालमें भी प्रफुल्लित हो उठा।

राजा—कहनेसे ही क्या होता ! वह चाहे चुड़ैल रही हो या श्री, पर परिणाम तो एक ही हुआ। अब मेरी मृत्यु निकट है।

नन्दा—महाराज ! शरीर-धारियोंके लिये मृत्यु निश्चित है, इसलिये मैं दुःख नहीं करती। पर लाखों सेनाओंके सेनापति होकर आप युद्ध करते-करते रण-भूमिमें प्राण-त्याग करते और मैं आपकी अनुगामिनी होती यह मेरे भाग्यमें बदा न था।

राजा—इस समय मेरे पास लाखोंकी सेना नहीं है। लाखोंकी कौन कहे, एक सौ सिपाही भी मेरे पास नहीं हैं। परन्तु मैं युद्धमें लड़कर मरूंगा, इससे मुझे कोई नहीं रोक सकेगा। मैं अभी फाटक खोलकर मुसलमानी सेनामें अकेला प्रवेश करूँगा। यहाँ केवल तुमसे कहने और शस्त्र लेनेके लिये आया हूँ।

नन्दाकी आँखोंसे प्रबल वेगसे अश्रुधारा बहने लगी। नन्दा ने उसे पोंछकर राजासे कहा—महाराज ! मैं यदि तुम्हें ऐसा करनेसे रोकूँ, तो मैं तुम्हारी दासी होने-योग्य नहीं। तुम अब सचेत हुए, यही मेरा बड़ा भाग्य है। पर यदि दो दिन पहले आप सचेत हुए होते, तो यह दुर्गति न होती। महाराज ! आप भी मरेंगे, और मैं भी मरकर तुम्हारा अनुकरण करूँगी, मैं सोचती हूँ कि इन अनाथ बालकोंकी क्या दशा होगी ? यह सब मुसलमानोंके हाथ पड़ जायँगे।

नन्दा और भी रोने लगी।

राजाने कहा—इसीलिये तुम्हें मरना न होगा। इनके लिए तुम्हें जीना होगा।

नन्दा—मेरे जीनेसे ही यह लोग कैसे बचगे ?

राजा—नन्दा ? इतने आदमी भाग गये, पर तुम क्यों नहीं भागी ? ऐसा यदि तुम करती तो वे विचारे बच जाते।

नन्दा—महाराज ! तुम्हारी महिषी होकर मैं किसके साथ भागती ? तुम्हारी पुत्र-कन्याओंको बिना तुमसे कहे मैं किसके हाथ सौंपतीं ? लड़के-बाले सब धर्मके ही लिए हैं। मेरे धर्म तुम्हीं हो। मैं तुमको छोड़कर पुत्र-कन्याओंको लेकर कहाँ जाती?

राजा—पर अब उपाय क्या है ?

नन्दा—अब उपाय नहीं है। अनाथ देखकर मुसलमान यदि लोगोंपर दया करें तो ठीक है, नहीं तो ईश्वरकी जो इच्छा होगी, वह होगा। महाराज, राजाके तेजसे इनका जन्म हुआ है। राजकुलके लिये सम्पत्ति और विपत्ति दोनों हैं। इस-लिए मैं इनके लिये विशेष चिन्तित नहीं हूँ। पर तुम्हें और कोई भी कापुरुष न कहे, इसीका मुझे अति सोच है।

राजा—तब ईश्वर जो करेंगे, वही होगा। इस जन्ममें मेरी तुम लोगोंके साथ यही अंतिम भेट है।

यह कहकर राजा युद्धके लिए सुसज्जित होनेके लिए अपने शस्त्रागारमें चले गये। नन्दा भी बालकोंको लेकर राजाके साथ ही शस्त्रगृहमें गयीं। राजा रण-सज्जासे अपनेको विभूषित करने लगे। नन्दा अपनी बालक-बालिकाओंको लेकर आँसू पोछती हुई उन्हें देखने लगी।

वीर-वेष धारणकर, सब अंगोंमें अस्त्र-शस्त्र बाँधकर सीता-राम फिर सीतारामकी ही तरह शोभा देने लगे। तब वह वीर दर्प व मृत्यु कामनासे अकेले दुर्ग-द्वारकी ओर चले। नन्दा फिर जमीनपर पड़कर रोने लगी।

सीतारामने अकेले दुर्ग-द्वारकी ओर जाते समय देखा कि

जिस वेदीपर जयन्तीको बेंत लगानेके लिये खड़ा किया था, उसी वेदीपर न जाने कौन दो मनुष्य बैठे हैं। उस मृत्युकामी योद्धाके हृदयमें भी भयका संचार हुआ। घबड़ाकर उन्होंने निकट आकर देखा कि गेरुआ वस्त्र और रुद्राक्ष धारण किये हुए, जयन्ती ही पैर लटकाकर बैठी है। उसके बगलमें वही भैरवी-वेष-धारिणी श्री बैठी है।

राजा उनको इस विपत्ति-कालमें, इस वेषमें बैठे देखकर कुछ डर गये। उन्होंने कहा—तुम लोग मेरे इस अंतिम समय-में यहाँ आकर क्यों बठी हो? तुम लोगोंकी मनोकामना क्या अब भी पूर्ण नहीं हुई?

जयन्तीने जरा हँस दिया। राजाने देखा श्रीकी आँखोंमें आँसू भरे हैं, वह कुछ कहना चाहती है, परन्तु गला भर आनेके कारण कुछ कह नहीं सकती। राजा उसके मुखकी ओर देखने लगे। श्रीने कुछ कहा नहीं।

तब राजाने कहा—श्री! तुम्हारा ही अदृष्ट फलीभूत हुआ। तुम्हीं मेरी मृत्युकी कारण हुई। तुमको अपनी प्राणहंत्री समझकर पहले मैंने त्याग करके अच्छा ही किया था। अब अदृष्ट फला। अब क्या यहाँ आई हो?

श्री—मैं अपना अनुष्ठेय-कर्म करने आई हूँ। आज तुम्हारी मृत्यु उपस्थित है। मैं तुम्हारे साथ मरने आई हूँ।

राजा—क्या संन्यासिनी भी किसीके साथ मरती हैं?

श्री—संन्यासी हो अथवा गृहस्थ, मरनेका अधिकार सभीको है।

राजा—संन्यासीके लिए कोई कर्म नहीं है। तुमने कर्मका त्याग किया है—तुम मेरे साथ क्यों मरोगी? मेरे साथ नन्दा जायगी। तुम संन्यास-धर्मका पालन करो!

श्री—महाराज अबतक यदि आपने मेरे ऊपर क्रोध नहीं किया, तो आज भी क्रोध न करें। मैं आपके निकट अपराधिनी हूँ, इस बातको मैंने इस अंतिम समयमें समझा है। मैं आपके पैरोंपर सिर रखकर—

श्री यह कहकर उस मंचसे उतर सीतारामके चरणोंपर गिर पड़ी और उच्चस्वरसे कहने लगी—मैं तुम्हारे चरणोंपर हाथ रखकर कहती हूँ, मैं अब संन्यासिनी नहीं हूँ। मेरा अपराध क्षमा करें। फिर क्या मुझे आप ग्रहण करेंगे।

सीताराम—तुम्हें तो मैंने बड़े आदरसे ग्रहण किया था, पर अब तो ग्रहण करनेका समय नहीं है।

श्री—समय है, मरनेका समय अभी यथेष्ट है।

सीताराम—तुम्हीं मेरी महिषी हो। श्रीने राजाके चरणोंकी धूलि ग्रहण की। जयन्तीने कहा—मैं भिखारिणी हूँ, आशीर्वाद देती हूँ, आजसे अनन्तकाल तक दोनों जय-युक्त हो।

सीताराम—माता! मैं तुम्हारे निकट घोर अपराधी हूँ, पर तो भी तुम मेरी दुर्दशा देखने यहाँ नहीं आई हो, यह बात तुम्हारे आशीर्वादसे ही जान पड़ती है। तुम यथार्थ देवी हो। बताओ! कौनसा प्रायश्चित करनेसे तुम मुझपर प्रसन्न होगी? वह सुनो! मुसलमानोंकी तोप गरज रही है! मैं अभी उसी तोपके मुखमें अपनी देह समर्पण करूँगा। क्या करनेसे तुम प्रसन्न होगी, उसे इसी समय बताओ।

जयन्ती—इसके पहले तो तुमने अकेले ही दुर्गकी रक्षा की थी।

राजा—आज वैसा नहीं हो सकता। जल और स्थलमें बड़ा भेद है। पृथ्वीपर ऐसा कोई मनुष्य इस समय नहीं है, जो अकेले इस दुर्गकी रक्षा कर सके।

जयन्ती—तुम्हारे पास तो इस समय भी पचास सिपाही हैं।

राजा—क्या आप यह भयंकर कोलाहल नहीं सुन रही हैं? शत्रुओंकी इस विशाल सेनाके आगे पचास सिपाही क्या कर सकते हैं? मैं अपने प्राणोंको जब इच्छा हो परित्याग कर सकता हूँ, परन्तु विना अपराध इन सैनिकोंकी हत्या कैसे करूँ? पचास सैनिकोंको लेकर युद्ध करनेसे मृत्युके अतिरिक्त और कोई परिणाम नहीं हो सकता।

श्री—महाराज! मैं और नन्दा मरनेके लिये तैयार है। परन्तु नन्दा और रमाके पुत्र तथा कन्याओंकी रक्षाका उपाय क्या होगा?

सीतारामकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। उन्होंने कहा—कुछ उपाय नहीं है। मैं इस समय क्या कर सकता हूँ?

जयन्तीने कहा—महाराज! असहायके एक ही सहाय हैं, आप क्या उनको नहीं जानते? जानते क्यों नहीं! जानते हैं, पर जान-बूझकर ऐश्वर्य्य-मदमें डूबकर आप उन्हें भूल गये थे, अब क्या वह निरुपायके उपाय, असहायके सहाय, अगतिके गति याद आते हैं?

सीतारामने सिर नीचा कर लिया। उस समय अनेक दिनोंके बाद वह निरुपायके उपाय, अगतिके गतिका स्मरण हो आया। काले बादल हवामें उड़ गये, उनके हृदयमें धीरे-धीरे सूर्य्य-किरणोंका विकाश होने लगा। चिन्ता करते-करते अनंत ब्रह्मांडके प्रकाशक भगवानकी महाज्योति प्रकाशित हो उठी। तब सीताराम मन-ही-मन कहने लगे—नाथ! दीनानाथ! अनाथोंके नाथ! निरुपायके उपाय, अगतिके गति! पुण्यके आश्रय! पापियोंके उद्धारकर्त्ता! मैं पापी हूँ, क्या इसलिये आप मेरे ऊपर दया न करेंगे?

सीताराम एकाग्र हो ईश्वरका ध्यान कर रहे हैं, यह देखकर जयन्तीने श्रीकी ओर इशारा किया। एकाएक दोनों मञ्चके ऊपर घुटने टेककर बैठ गयीं, और हाथ जोड़ आकाशकी ओर आँखें उठाये ईश्वरको पुकारने लगीं। गगन-विहारी-विनिन्दित कंठसे, उस दुर्गके चारो ओर प्रतिध्वनि करती हुईं, वे पुकारने लगीं—

त्वमादि देवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानं।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप॥

दुर्गके बाहर समुद्रकी तरह गरजती हुई मुसलमानी सेनाका कोलाहल और दुर्गकी प्राचीर तोड़नेके लिए तोपोंसे छुटे हुए गोलोंका भयंकर शब्द, खेतोंमें, जंगलोंमें और नदीपर चारो ओर प्रतिध्वनित हो रहे हैं। दुर्गमें उस प्रतिध्वनिके अतिरिक्त और कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता। उसमें साक्षात् ज्ञान और भक्ति-रूपिणी जयन्ती और श्रीके मुखसे निकली हुई यह महागीत, आकाशको विदीर्ण करती हुई, सीतारामके शरीरको रोमाञ्चित करती आकाशमें व्याप्त होने लगी—

"नमोनमस्तेऽस्तु सहस्र कृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमोनमस्ते।
नमः पुरस्तादथ पृष्ठ तस्ते नमोस्तु ते सर्व्वत एव सर्व्व॥"

सुनते-सुनते सीताराम मुग्ध हो गये—पास आती हुई-विपत्तिको भूल गये, हाथ जोड़कर आकाशकी ओर देखते हुए प्रेमसे विह्वल होकर आनंदके आँसू बहाने लगे। उनका चित्त फिर निर्मल हो गया। जयन्ती और श्री उसी आकाश-व्यापी कंठसे ईश्वर-स्तुति करने लगीं।

इसी समय दुर्गमें कोलाहल होने लगा। शब्द सुना गया, जय महाराजकी जय! जय महाराज सीतारामकी जय!!

बाईसवाँ परिच्छेद

पाठकोंसे कहना न होगा कि सिपाही दुर्गमें ही रहते थे। यह भी कह चुके हैं कि सिपाही लोग दुर्ग छोड़कर भाग गये हैं, केवल स्वामि-भक्त लगभग पचास सिपाही, जो ब्राह्मण और राजपूत जातिके थे, अब तक रह गये हैं। वे चुने हुए वीर पुरुष हैं, नहीं तो भला ऐसे विपत्ति-कालमें विना वेतन पाये केवल प्राण देनेके लिए क्यों रह जाते। अब वे बड़े ही दुःखी हो रहे हैं। इस ओर मुसलमानी सेना आ पहुँची है, बड़ा कोलाहल कर रही है। उनके तोपोंकी आवाजसे पृथ्वी काँप रही है, गोलोंकी मारसे दुर्गकी दीवारें फट रही हैं, तो भी इन लोगोंको युद्धके लिये सुसज्जित होनेकी आज्ञा नहीं दी जा रही है। राजा स्वयं आकर सब-कुछ देख गये, पर वह भी तो कोई आज्ञा नहीं दे गये। ये सिपाही केवल प्राण देनेके लिये यहाँ पड़े हैं, दूसरे पुरस्कारकी इच्छा इन्हें नहीं है, परन्तु वह भी मिल नहीं रहा है। उनसे कोई नहीं कहता है कि आओ! मेरे लिये प्राण-त्याग करो। इसीलिये वे अत्यन्त दुखित हो रहे हैं।

तब वे सब मिलकर आपसमें परामर्श करने लगे। रघुवीर मिश्र उनमें वृद्ध और ऊँचे दर्जेपर थे। रघुवीरने उन लोगोंको समझाया कि भाइयो! घरके भीतर मुसलमान आकर हम लोगोंको हलाल करेंगे, यह क्या अच्छा होगा? आओ, मरना हो तो चलकर मर्दोंकी तरह मरें! चलो, अस्त्र-शस्त्र बाँधकर हमलोग युद्ध करें। चाहे कोई आज्ञा दे या न दे, पर मरनेका अधिकार सबको है। मरनेके लिए आज्ञाकी क्या आवश्यकता है? महाराजका नमक हमलोगोंने खाया है, महाराजके लिए

हम लड़कर प्राण देंगे। इसके लिये यदि हमें आज्ञा न मिले तो क्या हम हथियार न उठावेंगे? चलो, आज्ञा हो या न हो, चलकर लड़ें!

उसकी इन बातोंपर सब सहमत हो गये, पर गयादीन पाण्डेयने प्रश्न किया कि हमलोग युद्ध किस प्रकार करेंगे? इस समय दुर्गकी रक्षा केवल तोपोंसे हो सकती है। परन्तु गोलन्दाज फौज तो सब भाग गयी। हम लोग तो तोप चलाना जानते नहीं। हम लोगोंको किस प्रकार लड़ना उचित है?

तब इस विषयपर विचार होने लगा। दुर्मतिसिंह जमादारने कहा--अधिक विचार करनेकी क्या आवश्यकता है? हथियार यहीं है, घोड़े भी मौजूद हैं, राजा भी यहाँ आ गये हैं। चलो, हमलोग हथियार बाँध, घोड़ेपर सवार हो, राजाके पास चलकर आज्ञा ले आवें। महाराज जो कुछ कहेंगे, वही किया जायगा।

इस प्रस्तावको सबने अच्छा समझकर स्वीकार किया। बहुत जल्द सब लड़ाईके लिए तैयार हो गये। अपने-अपने घोड़ोंको सबने सजा लिया। तब सब घोड़ोंपर चढ़ शस्त्रोंकी झनझनाहट करते, घोड़ोंको कुदाते, उच्च स्वरसे जयनाद, जय महाराजकी जय! जय राजा सीतारामकी जय! करने लगे। यही जयध्वनि सीतारामको सुनाई पड़ी थी।

तेईसवाँ परिच्छेद

वीरगण जय-ध्वनि करते हुए श्रेणीबद्ध होकर, जहाँ मञ्चके पास सीताराम खड़े थे और जहाँ जयन्ती और श्री हाथ जोड़ कर गगन-विहारी कोकिल-विनिन्दित कंठसे भगवानकी स्तुति गा रहीं थीं, वहीं आकर जयध्वनि करने लगे।

रघुवीर मिश्रने पूछा--महाराजकी क्या आज्ञा है? यदि आज्ञा हो तो हम लोग इन थोड़ेसे मुसलमानोको यहाँ-से भगा दें।

सीतारामने कहा--तुम लोग थोड़ी देर तक यहीं ठहरो, मैं आता हूँ।

यह कहकर राजा अंतःपुरमें चले गये। तबतक सिपाही लोग ध्यान लगाकर भक्ति-भावसे उन दोनों संन्यासिनियोंका स्वर्गीय गान सुनने लगे।

राजा थोड़ी देरमें एक पालकी साथ लेकर अंतःपुरसे बाहर निकले। हम पहले ही कह चुके हैं कि राजके कर्मचारी सब भाग गये थे। साथ ही यह भी कह चुके हैं कि दो-चार पुराने नौकर अब तक भी नहीं भागे थे। वही लोग पालकी लेकर आ रहे थे। पालकीमें नन्दा और बालक-बालिकाएँ थीं।

राजाने सिपाहियोंके पास जाकर, उनको श्रेणीबद्ध किया और प्राचीन प्रथानुसार एक बहुत छोटा सूचिव्यूह बनाया। उसके बीचमें नन्दाकी पालकी रखकर स्वयं सूचिव्यूहके आगे घोड़ेपर चढ़ कर युद्धके लिए तैयार होगए। तब उन्होंने जयन्ती और श्रीसे कहा—तुम लोग बाहर क्यों हो? इसी व्यूहके भीतर आ जाओ।

जयन्ती और श्रीने हँसकर कहा—हमलोग संन्यासिनी हैं, जीवन-मरणमें हमको कोई भेद नहीं दिखाई पड़ता।

तब सीतारामने और कुछ न कहकर केवल "जय जगदीश्वर, जय, लक्ष्मीनारायणजीकी जय!" कहकर दुर्गके फाटककी ओर बढ़े। वह छोटा सा सूचिव्यूह उनके पीछे-पीछे चलने लगा। तब वे दोनों संन्यासिनियाँ भी घोड़के आगे आकर अपने-अपने त्रिशूल ऊँचे करके गाने लगीं—

जय शिवशंकर! त्रिपुर निधन कर!
रणे भयंकर! जय जय रे!
चक्र गदाधर! कृष्ण पिताम्बर!
जय जय हरिहर! जय जय रे!

इसी प्रकार जय-ध्वनि करते हुए वे आगे-आगे चलीं। राजाने विस्मित होकर कहा—यह क्या? अभी शत्रु-सेनासे पीसी जाकर मरोगी क्या?

श्री—महाराज! राजाओंकी अपेक्षा संन्यासिनियोंको क्या मरनेका भय अधिक है? परन्तु जयन्तीने कुछ नहीं कहा। जयन्ती अब घमंड नहीं करती। राजाने भी यह सोचकर कि यह मेरी वात न मानेंगी, और कुछ नहीं कहा।

दुर्गके द्वारपर पहुँच राजाने अपने हाथोंसे ताला खोलकर साँकल खोली। लोहेकी साँकल झनझना उठी। सिंहद्वारके ऊँचे गुम्बजके भीतर उसकी घोर प्रतिध्वनि होने लगी। घोड़ोंके टापोंकी आवाज भी गूँजने लगी। तब पवन-सेनारूपी समुद्रके तरंगोंके आघातसे वह वज्रतुल्य फाटक आप-से-आप खुल गया। खुला द्वार देखकर सूचिव्यूहके घोड़े वीर रससे नाचने लगे।

इधर जैसे बाँध टूटनेपर वर्षाका जल, पर्वतके जल-प्रपात-

की तरह भीषण वेगसे प्रवाहित होता है, वैसे ही यवनोंकी सेना दुर्ग-द्वार खुला पाकर बड़े वेगसे आगे बढ़ी। परन्तु सामने ही जयन्ती और श्रीको देखकर वह सेना सहसा मंत्र-मुग्ध सर्पकी तरह निश्चल हो गयी। जैसी विश्व-विमोहिनी उनकी मूर्त्ति थी, वैसा ही अद्भुत उनका वेष और साहस था। उनकी सर्वजन्य मनोमुग्धकारी जय-गीत सुनकर मुसलमानी सेनाने समझा कि यह नगर-अधिष्ठात्री देवी हैं, मारे डरके उन लोगोंने रास्ता छोड़ दिया। वे दोनों त्रिशूल घुमाती हुईं रास्ता साफ करके, यवनको चीरती हुईं आगे बढ़ीं। उसी उन्मुक्त मार्गसे सीतारामका सूचिव्यूह बड़ी आसानीसे मुसलमानी सेनाको चीरता हुआ आगे बढ़ा। अब सीताराम-के हृदयमें भगवान्‌के अतिरिक्त और कोई नहीं है। इस समय उनकी यही इच्छा है कि परमात्माका स्मरण करते हुए उनकी आज्ञासे प्राण-त्याग करें। इसीलिए सीताराम इस समय चिन्ता-रहित अविचलित, प्रफुल्ल और प्रसन्न दिखाई पड़ते थे। सीतारामने भैरवीके मुखसे परमात्माका नाम सुनकर और उन्हें स्मरण करके, अपनी आत्माको जीत लिया है। अब उसके आगे भला मुसलमान किस गिनतीमें हैं। उनकी प्रफुल्ल कांति और थोड़ी सी शत्रु-विजयिनी सेनाको देखकर मुसलमानी सेना 'मार-मार' का शब्द करके गरज उठी। उन दोनों स्त्रियोंसे किसीने कुछ नहीं कहा, सबने उनके लिए रास्ता छोड़ दिया। सीताराम और उनके सिपाहियोंपर वे चारो ओरसे आक्रमण करने लगे। किन्तु सीतारामके सैनिक उनके आज्ञानुसार कहीं क्षण भर भी ठहरकर लड़ते नहीं थे—केवल वे आगे बढ़ते जाते थे। कुछ सिपाही मुसलमानों-के हाथसे मारे गये, कुछ घायल होकर घोड़ेसे गिर पड़े। पर

तुरन्त उनकी जगह दूसरे सिपाही आगये। इस प्रकार सीता-रामका सूचिव्यूह ज्यों-का-त्यों धीरे-धीरे मुसलमानी सेनाको चीरता हुआ आगे बढ़ने लगा। आगे जयन्ती और श्री रास्ता करती हुई चलीं। सिपाहियोंपर जो आक्रमण हो रहा था, वह बड़ा भयंकर था। परन्तु सीतारामके अदम्य उत्साह और शिक्षाके कारण, वे सब विघ्न-बाधाओंको हटाते हुए आगे बढ़ते ही गये। इधर-उधर न देखकर सामने जो कोई उनकी गति रोकता था, उसीको मारकर उसके ऊपरसे घोड़ा दौड़ाते हुए वे आगे बढ़ रहे थे। यह अद्भुत वीरता देखकर, मुसलमान सेना-पतिने सीतारामकी गति रोकनेके लिये एक तोप सूचिव्यूहकी ओर भेज दिया। इसके पहले ही मुसलमानोंने किलेकी दीवार तोड़नेके लिए अपनी तोपें जगह-जगह उचित स्थानोंपर लगा दी थीं। इसलिये सूचिव्यूहके सामने अबतक वे तोप नहीं भेज सके थे। अब यह देखकर कि राजा और रानी भागे जा रहे हैं, बड़े कष्ट और यत्नसे एक तोप उस सूचिव्यूहके सामने भेज दिया। स्वयं उस ओर न जा सके, क्योंकि दुर्ग-द्वार खुला पाकर अधिकांश सेना, लूटनेके लोभसे वहाँ जा रही थी। इस-लिए उनको वहाँ जाना पड़ा कि सूबेदारके पानेका राज-भंडार कहीं सिपाही लूट न लें। तोप सीतारामके सूचिव्यूहके सामने आ पहुँची। उसे देखकर सबने समझ लिया कि अब कुशल नहीं है। परन्तु श्री तनिक भी विचलित नहीं हुई। श्री और जयन्ती दोनों आगे बढ़कर तोपके सामने आईं। श्रीने जयन्तीकी ओर देखकर हँस दिया और तोपके मुखपर अपनी छाती लगाकर चारो ओर देखती हुई, तनिक-तनिक जय-सूचक हँसीसे हँसने लगी। जयन्ती भी श्रीके मुखकी ओर देखकर और फिर गोलन्दाजकी ओर देखकर उसी प्रकार हँसने लगी।

मानो दोनों आपसमें कह रही थीं कि "तोप तो हमने जीत लिया" यह देखकर गोलन्दाजने अपने हाथका पलीता फेंक दिया और विनीत भावसे तोपसे हटकर खड़ा हो गया। इसी समय कूदकर सीतारामने उसका सिर काटनेके लिये तलवार उठाई। जयन्तीने चिल्लाकर कहा—क्या करते हो, क्या करते हो, महाराज! रक्षा करो। 'शत्रुकी रक्षा कैसी?' यह कहकर सीतारामने उसी खींची हुई तलवारसे गोलन्दाजका सिर काटकर फेंक दिया और तोपपर अधिकार कर लिया। अधिकार करते ही अद्वितीय रण-दक्ष सीताराम तोपका मुँह फेरकर अपने सूचिव्यूहके लिये बड़ी शीघ्रतासे रास्ता साफ करने लगे! सीतारामके हाथसे वह तोप प्रलयके बादलकी तरह लगातार घोर-गर्जना करने लगी। उससे छूटते हुए गोलोंसे मुसलमानी सेना छिन्न-भिन्न होकर भागने लगी। सूचिव्यूहका रास्ता साफ हो गया। तब सीताराम सहजमें ही अपनी रानी और पुत्र-कन्या तथा बची-खुची सेनाको लेकर निरापद स्थानमें पहुँचे। इधर मुसलमानी सेना दुर्ग लूटने लगी।

इस प्रकार सीतारामके राज्यका नाश हो गया।

चौबीसवाँ परिच्छेद

श्रीने सन्ध्या समय जयन्तीसे पूछा—जयन्ती? वह गोलन्दाज कौन था?

जयन्ती—जिसको महाराजने काट डाला?

श्री—हाँ, तुमने महाराजको काटनेसे मना क्यों किया था?

जयन्ती—तुम यह जानकर क्या करोगी। तुम तो संन्यासिनी हो।

श्री—जाननेसे यदि दो बूँद आँसू गिर जायगा तो उससे मेरा संन्यास भ्रष्ट नहीं हो सकता।

जयन्ती—दो बूँद आँसू क्यों गिरेगा?

श्री—जीवित अवस्थामें मैं उसे चीन्ह न सकी थी। परन्तु तुम्हारे मना करनेपर मैंने उसका मृत मुख एक बार देखा था। मुझे कुछ सन्देह हो रहा है। वह व्यक्ति चाहे जो हो, मैं ही उसकी मृत्युकी कारण हूँ। मैं यदि तोपके मुँहपर छाती न रखती, तो वह अवश्य तोप दागता। ऐसा होनेसे महाराजका नाश भी अवश्य हो जाता। तब गोलन्दाजको फिर कौन मारता?

जयन्ती—वह मर गया, महाराज बच गये, यह तुम्हारे लिए अच्छा ही हुआ। अब अधिक जानकर क्या करोगी?

श्री—मनका सन्देह मिटा लेना उचित है।

जयन्ती—संन्यासिनीको यह उत्कंठा क्यों?

श्री—चाहे संन्यासिनी हो चाहे कोई और, मनुष्य सदा मनुष्य ही रहता है। मैं तुम्हें देवी समझती हूँ, परन्तु जब तुम उस दिन लोगोंके सामने लज्जासे व्याकुल हो गयी थी, तब मेरे संन्यास नष्ट होनेकी बात क्यों कहती हो?

जयन्ती—तब चलो, चलकर सन्देह मिटा आवें। मैं वहाँ एक चिह्न रख आई हूँ, रात्रिमें भी उस स्थानका पता ठीक-ठीक लग जायगा। परन्तु रोशनी ले चलना होगा।

यह कहकर दोनों मसाल जला करके रण-भूमि देखने चलीं चिह्न देखकर जयन्ती ठीक स्थानपर पहुँची। वहाँ मसालकी रोशनी रखकर-खोजते खोजते उस गोलन्दाजकी मृत देह मिल गयी। उसे देखकर श्रीका सन्देह दूर न हुआ। तब जयन्तीने उस मुर्देका पका बाल पकड़कर खींचा, वह निकल आया। अब श्रीको कुछ भी सन्देह न रह गया। वह गंगाराम था। श्रीकी

आँखोंसे आँसूकी धारा बहने लगी। जयन्तीने कहा—बहिन यदि तुम शोकसे इस प्रकार कातर होती हो तो, फिर संन्यास धर्म क्यों ग्रहण किया था।

श्री—महाराज मेरा व्यर्थ ही तिरस्कार किया करते थे। मैं उनकी प्राण-हंत्री नहीं हुई, अपने सगे भाईकी ही प्राण-घातिनी हुई। अदृष्ट इतने दिनों बाद फलीभूत हुआ।

जयन्ती—ईश्वर किसको किसके द्वारा दंड देते हैं, यह नहीं कहा जा सकता। तुम्हारे ही द्वारा गंगारामने दो बार प्राण-दान पाया था, और अंतमें तुम्हारे ही द्वारा उसका नाश हुआ। जो हो, गंगारामने पाप किया था, इस बार भी वह पाप करने-के ही लिए आया था। जान पड़ता है कि वह नहीं जानता था कि रमाकी मृत्यु हो गयी है, वह बनावटी वेष धारण करके उसीको प्राप्त करनेके लिए, मुसलमान सेनाका गोलन्दाज बनकर आया था। क्योंकि उसने सोचा था कि रमा यदि उसे पहचान लेगी, तो कभी भी उसके साथ न जायगी। जान पड़ता है कि यह सोचकर कि पालकीमें रमा है, वह तोप लेकर उसका मार्ग रोकनेके लिये यहाँ आया था। जो हो, उसके लिये व्यर्थ रुदन न करके, चलो, उसकी दाह-क्रिया करें।

तब उन दोनोंने गंगारामके शरीरको उपयुक्त स्थानमें ले जाकर, क्रिया की।

जयन्ती और श्रीने सीतारामके साथ फिर भेंट नहीं की। उसी रातको वह दोनों न जाने कहाँ अंधकारमें विलीन हो गयीं, कोई जान न सका।

परिशिष्ट

हमारे पूर्वपरिचित रामचन्द्र और श्यामचन्द्र पहले ही भागकर नलडाँगामें एक घरमें बैठकर बातचीत कर रहे थे।

रामचन्द्र—क्या तुमने महम्मदपुरका कुछ समाचार सुना है?

श्यामचन्द—हाँ, वह तो जानी हुई बात थी। किला-उला सब मुसलमानोंने दखल करके लूट लिया।

रामचन्द्र—राजा-रानीका क्या हुआ?

श्यामचन्द—सुना है कि उन लोगोंको बाँधकर यवनोंने मुर्शिदाबाद भेज दिया है। वहाँ शायद उन्हें शूली दी जायगी।

रामचन्द्र—मैंने भी ऐसा ही सुना है। पर यह भी सुनता हूँ कि वे जहर खाकर मार्गमें ही मर गये। उसके बाद उनके मृत देहको ले जाकर मुसलमानोंने शूलीपर चढ़ा दिया।

श्यामचन्द्र—कोई-कोई यह भी कहते हैं कि राजा-रानी पकड़े नहीं गये—उन्हीं देवियोंने आकर उन्हें वहाँसे बाहर निकाल दिया। उसके बाद मुसलमानोंने नकली राजा-रानी बनाकर उन्हें मुर्शिदाबादमें ले जाकर शूलीपर चढ़ा दिया।

रामचन्द—ये बातें हिन्दुओंकी दंत-कथाएँ हैं, उपन्यास हैं।

श्यामचन्द्र—यह उपन्यास है, या वह, इसका क्या निश्चय? कौन जानता है कि वह मुसलमानोंकी बनाई दंतकथा नहीं है। जो हो हम लोग—"आदीके व्यापारी हैं, जहाजको खबरसे हमें क्या काम?" अपनी-अपनी जान लेकर हम लोग जो यहाँ भाग आये हैं, यही बहुत है। अब तम्बाकू चढ़ाओ।

रामचन्द और श्यामचन्द्र जबतक तम्बाकू चढ़ाकर पीते हैं, तबतक हम अपने ग्रन्थको समाप्त करें।
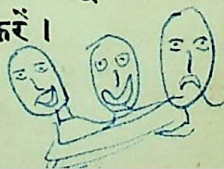
साहित्य-सेवा-सदन, काशी

की

सुप्रसिद्ध पुस्तकें

बिहारी-सतसई सटीक

(सम्पूर्ण)

काव्य-ग्रन्थ-रत्न-माला—रत्न १

बिहारी-सतसईकी हिन्दी-संसारमें काफी धूम मच चुकी है। आज २५० वर्षोंमें इस पुस्तकपर कोई ३५—३६ टीकाएँ बन चुकी हैं। लेकिन वे सभी या तो प्राचीन ढंग की हैं जो समझमें ही मुश्किलसे आती हैं, या अधूरी हैं।

इसी लिये साहित्य-संसारके सुपरिचित कविवर लाला भगवानदीनजीने अर्वाचीन ढंगकी पूरी टीका तैयार की है। इसमें बिहारीके प्रत्येक दोहेके नीचे उसके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, वचन-निरूपण, अलंकार आदि सभी ज्ञातव्य बातोंका समावेश किया गया है। स्थान-स्थानपर कविके चमत्कारका निदर्शन कराया गया है। जगह-जगह पर सूचनायें दी गई हैं। मतलब यह कि सभी जरूरी बातें इस टीकामें आ गई हैं। सरस्वती, शारदा, सौरभ आदि पत्रिकाओंने तथा बड़े बड़े दिग्गज विद्वानोंने इस टीकाकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। प्रथम संस्करण हाथोहाथ बिक गया। द्वितीय परिवर्द्धित तथा संशोधित संस्करण छपकर तय्यार है। मूल्य १।=) सचित्र १॥)

काव्य-ग्रन्थ-रत्न-माला—रत्न २

श्रीकृष्ण–जन्मोत्सव

लेखक—श्रीयुत देवीप्रसाद 'प्रीतम'। यह ग्रन्थ भगवान श्रीकृष्णकी जन्म–सम्बन्धिनी पौराणिक कथाओंका एक खासा दर्पण है। घटना–क्रम, वर्णन-शैली तथा विषय–प्रतिपादनमें लेखकने कमाल किया है। तिसपर भी विशेषता यह है कि कविताकी भाषा इतनी सरल है, कि एक बार आद्योपान्त पढ़नेसे सभी घटनायें हृदय-पटलपर अङ्कित हो जाती हैं। साहित्य-मर्मज्ञोंके लिए स्थान-स्थानपर अलंकारोंकी छटाकी भी कमी नहीं है। यह पुस्तक भगवद्भक्तोंके पढ़ने तथा बालकोंको उपहारमें देने योग्य है। मुख-पृष्ठपर एक चित्र भी है। मूल्य केवल ।-), एँटीक कागज़के सचित्र संस्करण का ।≡)

काव्य-ग्रन्थ-रत्न-माला—रत्न ३

रामचन्द्रिका

हिन्दी साहित्य–शिरोमणि रामचन्द्रिकाका परिचय देना तो व्यर्थ ही है, क्योंकि शायद ही हिन्दीका कोई ऐसा ज्ञाता होगा जो इस ग्रन्थके नामसे अपरिचित हो। हिन्दी-साहित्यमें यह बेजोड़ ग्रन्थ है। एक अच्छे साहित्यज्ञ होनेके लिये जितनी भी सामग्रियोंकी आवश्यकता है वे सभी इसमें मौजूद हैं। यह ग्रन्थ बड़े बड़े विश्व-विद्यालयों, यूनिवर्सिटियों, साहित्य-सम्मेलनों आदिमें पाठ्य-पुस्तक भी नियत किया गया है। इसमें अर्थ–सरलताके लिए शब्द–कोष–युक्त टिप्पणी भी भरपूर दी गई है। हमारी रामचन्द्रिकाका पाठ अन्य सभी संस्करणोंकी अपेक्षा अधिक शुद्ध है (छप रही है)।

काव्य-ग्रन्थ-रत्न-माला—रत्न ४

केशव-कौमुदी

इस पुस्तकमें रामचन्द्रिकाके मूल छंदोंके नीचे उनके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, नोट, अलङ्कारादि दिये गये हैं। यथास्थान कविके चमत्कार-निदर्शनके साथ ही साथ काव्य-गुण-दोषोंकी पूर्ण रूपसे विवेचना की गई है। छन्दोंके नाम तथा अप्रचलित छन्दोंके लक्षण भी दिये गये हैं। पाठ भी कई हस्तलिखित प्रतियोंसे मिलाकर संशोधित किया गया है। इसके टीकाकार हिन्दीके सुप्रसिद्ध विद्वान तथा हिन्दू-विश्व-विद्यालयके प्रोफेसर लाला भगवान दीनजी हैं। यह पुस्तक दो भागोंमें समाप्त हुई है। मूल्य साढ़े पाँच सौ पृष्ठोंकी पुस्तक-का जिसमें रंग-विरंगे चित्र भी हैं मूल्य२॥।), सजिल्द ३), द्वितीय भाग २।), सजिल्द २॥)

काव्य-ग्रन्थ-रत्न-माला—रत्न ५

रहिमन-विलास

यों तो रहीमकी कविताओंका संग्रह कई स्थानोंसे प्रका-शित हो चुका है, किन्तु हमारे इस संग्रहमें कई विशेषताएँ हैं। इन विशेषताओंके कारण इस पुस्तकका महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। इसका पाठ भी बड़े परिश्रमसे संशोधित किया गया है। अभी तक ऐसा अच्छा और इतना बड़ा संग्रह कहींसे भी प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें शृङ्गार-सोरठा, मदनाष्टक, रहीम काव्य, पाठान्तर तथा भरपूर टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। यह पुस्तक बड़ी ही उपादेय है। हमारा अनुरोध है कि एक बार इसे अवश्य देखिये। द्वितीय संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्क-रण छप रहा है।

काव्य-ग्रन्थ-रत्न-माला—रत्न ६

विनय-पत्रिका सटीक

टीकाकार—वियोगी हरि। इसमें भी मूल पदोंके नीचे शब्दार्थ, प्रसंग आदि देकर खूब सरल भाषामें भावार्थ दिया गया है। भावार्थके नीचे टिप्पणी देकर वेदान्तकी बारीकियोंको खूब ही समझाया गया है। संस्कृत तथा हिन्दी-कवियोंके चुने हुए अवतरण भी प्रसंग-पुष्टिके लिए दिये गये हैं। मूल्य ७०० पृष्ठोंकी पुस्तकका २॥), सजिल्द २॥।), कपड़ेकी बढ़िया जिल्द ३)

काव्य-ग्रन्थ-रत्न-माला—रत्न ७

गुलदस्तए-बिहारी

लेखक—देवीप्रसाद 'प्रीतम'। यह गुलदस्तए बिहारी उसी बिहारी-सतसईके दोहोंपर रचे हुए उर्दू शेरोंका संग्रह है। इन शेरों की पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंह शर्म्मा, मिश्र-बन्धु, लाला भगवानदीन, वियोगी हरि आदि उद्भट विद्वानोंने मुक्तकंठसे प्रशंसाकी है। मूल्य ॥।=), सचित्र राजसंस्करणका १॥)। यही अंतमें उर्दू लिपिमें शेरों सहित क्रमसे १।), २), केवल शेर उर्दू लिपिमें ।=) और ॥=)

काव्य-ग्रन्थ-रत्न-माला—रत्न ८

तुलसी-सूक्ति-सुधा

जो लोग समयाभाव या अन्य कारणोंसे गो० तुलसीदास-जीके सभी ग्रन्थोंके अवलोकनसे वञ्चित रहते हैं। उन लोगों को इस एक ही पुस्तकके पढ़नेसे गोस्वामीजीकी सभी पुस्तकों के पढ़नेका आनन्द मिल जायगा। पाद-टिप्पणीमें कठिन शब्दों के अर्थ भी दे दिये गये हैं। (छप रही है)

भारतेन्दु-स्मारक-ग्रन्थ-मालिका—संख्या १

कुसुम-संग्रह

सम्पादक-पं० रामचन्द्र शुक्ल, प्रो० हिन्दू-विश्व-विद्यालय तथा लेखिका हिन्दी-संसारकी चिरपरिचित श्रीमती बङ्गमहिला। इस पुस्तकमें बङ्गभाषाके रवीन्द्रनाथ ठाकुर, देवेन्द्र कुमार राय, रामानन्द चट्टोपाध्याय आदि धुरन्धर विद्वानोंके छोटे छोटे उपन्यासों तथा लेखोंका अनुवाद है। कुल पुस्तक बड़ी ही रोचक तथा शिक्षाप्रद है। खासकर भारतीय महिलाओंके लिए बड़े कामकी है। इसे संयुक्त प्रान्तकी गवर्नमेण्टने पुरस्कार पुस्तकों तथा पुस्तकालयों (Prize-books and libraries) के लिये स्वीकृत किया है। कुछ स्कूलोंमें पाठ्य-पुस्तक भी नियत की गई है।

पुस्तककी सुन्दरतामें भी किसी प्रकारकी कोर-कसर नहीं की गई है। विविध प्रकारके सात रंग-विरंगे चित्रोंसे विभूषित ऐंटीक पेपरपर छपी लगभग २२५ पृष्ठवाली इस पुस्तकका मूल्य सर्वसाधारणके हितार्थ केवल १॥) रखा गया है।

भारतेन्दु-स्मारक-ग्रन्थ-मालिका संख्या २

मुद्राराक्षस

भारत-भूषण भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीके मुद्राराक्षसका अभीतक कोई शुद्ध तथा विद्यार्थियोंके लिये उपयोगी संस्करण नहीं निकला था। जो संस्करण आजकल बाजारमें बिक रहा है वह अत्यंत अशुद्ध है। इसमें आलोचनात्मक भूमिकाके साथ ही साथ भरपूर टिप्पणी भी दी गई है। सं० व्रजरत्न दास, संशोधक-बा० श्यामसुन्दरदास तथा पं० रामचन्द्रशुक्ल। लगभग साढ़े तीन सौ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य १)

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला के अनूठे और सस्ते ग्रंथ।

बांकिम-ग्रन्थावली

प्रथम खंड

सरस, सरल, मनोरंजक, शिक्षा-प्रद और उच्च कोटि के उपन्यास लिखने में बंकिम बाबू के टक्कर के बहुत थोड़े लोग मिलेंगे। आपकी अद्वितीय रचनाओं से हिन्दी भाषा-भाषी-जन भी यथेष्ट लाभ उठावें, इस उद्देश्य से आप के कुल ग्रंथों का सुन्दर और सरल हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित करना हमने निश्चय किया है। उनके प्रचार की अभिलाषा से मूल्य भी कम से कम रखा जायगा। यह पुस्तक आप के तीन ग्रंथों—अर्थात् आनन्दमठ लोक-रहस्य और देवी चौधरानी का अविकल अनुवाद है। आकार प्रकारके ५१२ पृष्ठ का मूल्य केवल १)

गोरा

रवीन्द्र बाबू की कृतियों में 'गोरा' का जो स्थान है, वह किसी से छिपा नहीं है। जिन्हें हिन्दू धर्म और बाह्य धर्म के सिद्धान्त उनका महत्व और उनकी विशेषताएँ देखनी हों, जिन्हें इन धर्मों पर रवीन्द्र बाबू के स्वतंत्र और विवेचनापूर्ण विचार जानते हों, उन्हें तो यह पुस्तक अवश्य ही पढ़नी चाहिए। यह वह ग्रन्थ-रत्न है, जिसे जितनी ही बार पढ़िएगा, उतना ही अधिक आनन्द मिलेगा, और उतना ही अधिक आप का ज्ञान-भण्डार भी बढ़ेगा। यह भी मोटे कागज़ पर बड़ी ही सफ़ाई के साथ छापी गई है। आकार वही। पृष्ठ-संख्या लगभग ६८८। मूल्य केवल १।-)॥ सजिल्द १॥=)

पुस्तक-भवन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

पुस्तक-भवन सीरिज संख्या १

एम० ए० बनाके क्यों मेरी मिटी खराब की ?

गुजरातीके सुप्रसिद्ध लेखक अमृतकेशव नायककी, इसी नामकी, पुस्तकका यह अनुवाद है। जिस समय यह गुजरातीमें निकली थी, उस समय बड़ा हलचल मच गया था और इसके कई संस्करण हाथोहाथ बिक गए। हिन्दीमें शिक्षाप्रद होनेके साथ ही साथ रोचक भी हों, ऐसे उपन्यासोंकी बड़ी कमी है। इस पुस्तकमें ये दोनोंही गुण हैं। बड़े बड़े विद्वानों और पत्र-पत्रिकाओंने इसकी बड़ी तारीफ की है। उपन्यास-प्रेमियोंको एक बार इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। पृष्ठ-संख्या ४०० चार सौके लगभग। मूल्य २)

देखिये चित्रमय-जगत क्या कहता है:—

"यह एक उपन्यास है। इसमें एक एम० ए० पास हुए युवककी करुण कहानी है। इसीके सिलसिलेमें एक पारसी युवक-युवतीका चरित्र भी इसमें है। इसमें एक शायरने कहा

तालीम युनिवर्सिटीकी खाना खराब की।
एम. ए. बनाके क्यों मेरी मिट्टी खराब की॥

बस इसी शेरको सब रीतिसे चरितार्थकर बतानेवाला यह एक घटनापूर्ण, मनोरंजक और हृदय-द्रावक उपन्यास है। वास्तवमें इसके पढ़नेमें दिल लगता है, और कुतूहल पैदा होता है। आजकल युनिवर्सिटीकी उपाधियोंके लिये लालायित होनेवाले नवयुवकोंको यह पुस्तक एक बार अवश्य पढ़नी चाहिये।"

(चित्रमय-जगत)

पुस्तक-भवन-सीरिज-संख्या २

शैलबाला

यह एक ऐतिहासिक मनोरंजक तथा चित्ताकर्षक उपन्यास है। इसमें कुमार अमरेन्द्र और गोविन्दप्रसादका अत्याचार दृढ़प्रतिज्ञ सुरेन्द्रसिंहकी वीरता, शैलबालाका आदर्श प्रेम और सतीत्व रक्षा, योगिनीकी अद्भुत लीला इत्यादि पढ़ते-पढ़ते कभी आपको हँसी आवेगी तो कभी रुलाई, कभी घृणा उत्पन्न होगी तो कभी आसक्ति। इस उपन्यासके पढ़नेसे आपको पता चलेगा कि अन्तमें धर्मात्माओंकी, अनेक कष्टोंके सहनेपर कैसी जीत होती है और दुरात्माओंकी कैसी दुर्दशा। मूल्य २०० पृष्ठोंकी सचित्र पुस्तकका केवल १)

पुस्तक-भवन-सीरिज-संख्या ३

महाकवि रविंद्रनाथ ठाकुर लिखित विसर्जन

जगन्मान्य रवीन्द्रबाबूकी पुस्तकको उत्तमताके सम्बन्धमें मुझे कुछ कहना नहीं है। यह एक अहिंसात्मक करुणारस-पूर्ण नाटक है। इसमें जीव-बलि निषेध किया गया है, और उससे उत्पन्न हानियोंका दिग्दर्शन कराया गया है। पुस्तकके भाव बड़े ऊँचे दर्जेके हैं। मूल्य ॥)

बाल-हितैषी-पुस्तकमाला संख्या १—२

बाल-मनोरंजन

इसमें बालकोंके लिये शिक्षाप्रद मनोरंजक कहानियोंका संग्रह है। पुस्तककी भाषा बड़ी ही सरल है। दो भागोंमें समाप्त हुई है। मूल्य प्रत्येक भागका ।=)